October to December 2020
E-Journal
Volume I, Issue XXXII

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 5.610 (2018)

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

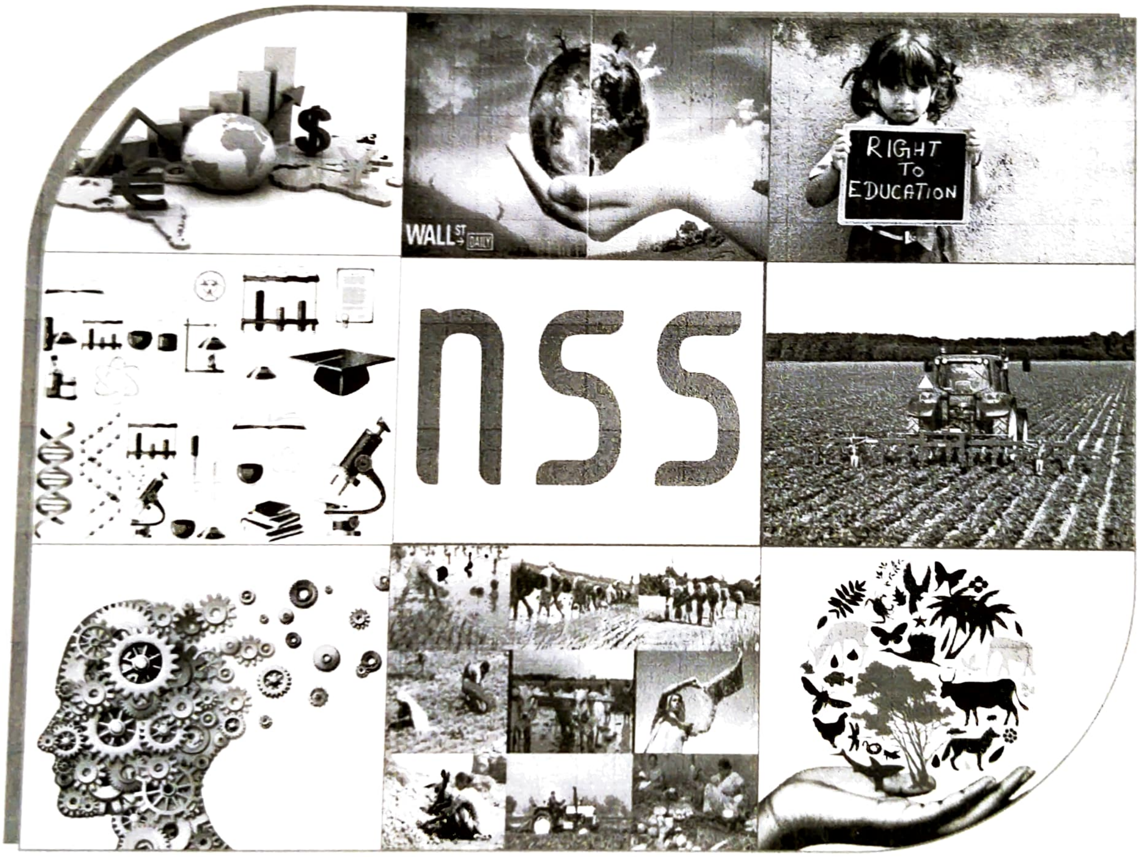

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

Index/अनुक्रमणिका

01. Index/ अनुक्रमणिका 02

02. Regional Editor Board / Editorial Advisory Board 06/07

03. Referee Board 08

04. Spokesperson 10

05. Floristic Analysis of Weed Apecies in Crops Fields of Tribal District Dhar, M.P. India 12
(SL Muwel, SC Mehta)

06. Trends in Indian Food Processing Industry: Issues, Challenges and Ways Forward 19
(Dr. Kiran Kumar P)

07. Synthesis and Biological Evaluation of some new Acid Hydrazones derived from 5 -Aldehydo ... 26
Salicylic Acid (Malti Dubey (Rawat))

08. Uncertain Historiography of Ajivakas (Dr. Ashish Kumar Chachondia) 29

09. Significance of SAARC (Dr. Shrikant Dubey) 32

10. Analysis of Women Empowerment in India (Dr. Indresh Pachauri) 34

11. Awareness and Attitude on Effects of Substance Abuse Among Adolescents (Dr. Usharani B.) 37

12. Zinc Oxie Nanoparticles in Cosmetic Products (Renuka Thakur, Dr. S.K. Udaipure) 40

13. Effects of COVID 19 on Indian Agriculture (Dr. Savita Gupta) 44

14. Linear, Instantaneous and Compound Growth Rates of Major Food-Grain Crops 47
in India (Suresh Kumar,Sanjeev Kumar)

15. Dalchini and Its Benefits (Dr. Rajesh Masatkar) 51

16. Fixed Point Theorems for Quasi- Ontraction with Applications 53
(Dhansingh Bamniya, Basanti Muzalda)

17. Study of Zooplankton density and physico-chemical parameters in Man dam district Dhar 55
(M.P.) India (Dr. D. S. Waskel, Dr. K.S. Alawa)

18. चम्बल संभाग में बाल लिंगानुपात - एक तुलनात्मक विश्लेषण (पूनम वासनिक) 59

19. महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन 61
(कोरोना वायरस के विशेष संदर्भ में) (डॉ. फरहत मंसूरी)

20. वर्तमान समय में हिन्दी नाटक (एन.आर. साव, डॉ. (श्रीमती) बसंत नाग) 64

21. आधुनिक पुस्तकालय प्रबंधन में गुणवत्ता : अवधारणा, उपादेयता एवं महत्व (ओमप्रकाश चौरे) 69

22. शिक्षित जनजाति राजनीतिक चेतना का आकलन (डॉ. भूरेसिंग सोलंकी) 71

23. पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी एवं चुनौतियां (धार जिले के कुक्षी तहसील के 73
विशेष सन्दर्भ में) (डॉ. रेशम बघेल)

24. मध्यस्थम् एवम् सुलह अधिनियम, 1996 के अन्तर्गत विवाद समाधान (रतन सिंह तोमर) 76

25. भारत में तृतीय लिंग की प्रस्थिती (डॉ.पूजा तिवारी) 78

26. कोरोना काल में मानव मुक्ति के मसीहा - गांधी जी (डॉ. वसुधा अग्रवाल) 80

भारत में तृतीय लिंग की प्रस्थिती

डॉ. पूजा तिवारी *

शोध सारांश – भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय का पौराणिक गाथा काल से एक लंबा इतिहास रहा है। महाभारत में भी शिखंडी एवं अर्जुन के बृहनलल्ला रूप का वर्णन मिलता है। ट्रांसजेंडर शब्द उन लोगों के लिए प्रयोग किया जाता है जिनकी एक लैंगिक पहचान या अभिव्यक्ति उस लिंग से अलग होती है ,जो उन्हें उनके जन्म के समय दी गई होती है । भारतीय संस्कृति और न्यायपालिका तीसरे लिंग को मान्यता देती है । इन्हें 'हिजड़ा' कहा जाता है । भारत में 15 अप्रैल 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने एक तीसरे लिंग को मान्यता दी ,जो न पुरूष है और न ही स्त्री,यह कहते हुए कि 'तीसरे लिंग के रूप में ट्रांसजेंडर्स की मान्यता एक सामाजिक या चिकित्सा मुद्दा नहीं है ,बल्कि यह एक मानवाधिकार मुद्दा हैं।'

शब्द कुंजी – किन्नर ,सामाजिक , मानवाधिकार ,लिंग प्रस्थिति।

प्रस्तावना – ' किन्नर' शब्द का अर्थ क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर अलग – अलग विद्धानों के द्वारा अलग–अलग तरह से दिए गए है। रिसर्च टी.पी.शर्मा के अनुसार शरीर एवं मन का तालमेल न होना ही किन्नर है। अर्थत यदि किसी व्यक्ति का शरीर स्त्री का है किंतु मन 'पुरूष' का है ,तो उम्र बढ़ने के साथ –साथ उसमें मानसिक द्वंद प्रारंभ हो जाता है ,और वह 'किन्नर' बन जाता है।

Transgender शब्द दो शब्दों से बना है – Trans + gender शब्द Trans का अर्थ के (उस) पार ,के परे ,दूसरी अवस्था में होता है है एवं gender का अर्थ 'लिंग' होता है । अर्थात् 'दूसरी अवस्था में लिंग'। यदि किसी व्यक्ति का जन्म स्त्रीलिंग माना गया है किंतु वह स्वयं को 'पुरूषों' के रूप में देखता है तो ऐसे व्यक्ति को ट्रांसमैन कहते है ,इसके विपरीत अवस्था में उसे ट्रांसवुमन कहते है।

अप्रैल 2014 में भारत के सुप्रीम कोर्ट ने भारतीय कानून में ट्रांसजेंडर को 'तीसरा लिंग' अर्थात् Third gender घोषित किया। न्यायमूर्ति के.एस.राधाकृष्णन ने अपने फैसले में कहा कि 'शायद ही कभी ,हमारे समाज को उस आपात,पीड़ा और दर्द का एहसास होता है ,जिससे ट्रांसजेंडर समुदाय के सदस्य गुजरते हैं ,और न ही लोग ट्रांसजेंडर समुदाय के सदस्यों को जन्मजात भावनाओं की सराहना करते है ,विशेष रूप से जिनके मन और शरीर ने उनके जैविक लिंग को अपनाने से इंकार कर दिया है।'

भारत में किन्नरों की स्थिति – भारत में किन्नरों को सामाजिक तौर पर बहिष्कृत ही कर दिया जाता है। उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल नहीं किया जाता है। क्योंकि समाज में लैंगिक आधार पर विभाजन की पुरातन व्यवस्था चली आ रही है ,जिसके अनुसार केवल स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग अर्थात् स्त्री एवं पुरूष समाज के अभिन्न अंग हो सकते है। किन्नरों को कई प्रकार के द्वंद से जूझना पड़ता है यथा मानसिक द्वंद सामाजिक द्वन्द ,परिवार के लोगों से द्वन्द ,पड़ोसियों से उपेक्षा,स्कूल –कॉलेज में उपहास आदि। द्वितीयक स्त्रोतो से ज्ञात होता है कि भारत में 95 प्रतिशत किन्नर बाल्यकाल में यौनशोषण का शिकार होते है जिसमें उनके पारिवारिक सदस्य चचेरे भाई, अंकल, पड़ोसी आदि शामिल होते है ,लगभग 80 प्रतिशत किन्नर अपने जीवनकाल में आत्महत्या का प्रयास भी करते है। किन्नर स्कूल के उपेक्षापूर्ण वातावरण के कारण स्कूल का त्याग कर देते हैं ,ट्रांसजेंडर मितवा संकल्प समिति की विद्या राजपूत मैडम के अनुसार किन्नरों में से केवल 2 प्रतिशत किन्नर ही समाज द्वारा स्वीकार किये जाते है ,40 प्रतिशत किन्नर हाईस्कूल से ड्राप आऊट हो जाते है ,मात्र 1 प्रतिशत ही विवाह कर पाते है तथा शत प्रतिशत मौखिक शोषण का शिकार बनते है। इनका परिवार नहीं होता है। लगभग 1000 बच्चों में से एक बच्चा जन्मजात किन्नर होता है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नर को मान्यता देने वाला भारत सातवाँ देश बन गया है।

किन्नर के प्रकार – किन्नरों के मुख्य प्रकारों में 'सखी संप्रदाय' एवं 'शिवशक्ति संप्रदाय' होते है। जो क्रमश : मंदिर में किन्नर तथा शिव के उपासक किन्नर होते है। विद्या राजपूत जी के अनुसार जन्म से बच्चा एक लिंग में रहता है किंतु धीरे –धीरे शरीर एवं मन में अलगाव होता है ,और वह किन्नर बन जाता है।

किन्नरों की समस्या – भारत में लगभग पांच लाख किन्नर बसते है ,जिन्हें सबसे बड़ी यातना यह झेलना पड़ता है कि समाज उन्हें स्वीकार्य नहीं करता है। वर्तमान समय में कोरोना संकट के कारण रेलगाड़ी बंद होने,कार्यक्रम न के बराबर ,उत्सव न होने के कारण किन्नर समुदाय गरीबी से जूझ रहा है। किन्नरों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, किन्नर परिवार के साथ नहीं रह सकते है। इनके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, सार्वजनिक स्थानों पर पहुंच समाज द्वारा प्रतिबंधित है। इन्हें समाज की मुख्य धारा में अभी तक शामिल नही किया गया है। इन्हें यौन शोषण ,गंभीर बीमारियाँ उपहास, अशिक्षा, जैसी समस्याओं से जूझना पड़ता है। सबसे मुख्य बात इनकी समाज में कोई प्रस्थिति नहीं होती है, और विवाह नहीं होता है, समाज में विवाह को मान्यता देकर ही प्रस्थिति का आंकलन किया जाता है, मनुष्य अपनी प्रस्थिति बनाने के लिए समाज के सभी नियमों का पालन करता है और प्रस्थिति बनाने कुछ भी कर सकता है।

प्रोफेसर दिवाकर शर्मा के अनुसार किन्नर पैदा नहीं होते, मानसिकता के कारण किन्नर बन जाते है। विवाह न होने के कारण समाज ताने देता है लोग किन्नरों से दूर रहना चाहते है। परिवार जब इन्हें घर से निकाल देते है तब ये 'गुरू' के पास रहने जाते है, जहाँ पर ये लोग अपने ही जैसे लोगों के

* सह प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) शासकीय महाविघालय, बिछुआ, जिला - छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

साथ आजीवन रहते है। म.प्र.की शबनम मौसी किन्नर के पिता पुलिस विभाग के सबसे बड़े अधिकारी थे किंतु उन्होंने समाज के डर से अपनी इस संतान का त्याग कर दिया था । यह घटना किन्नरों की दशा का कड़वा सच को उजागर करने के लिए पर्याप्त हैं।

किन्नर से मुख्य धारा तक आने के लिए कुछ किन्नरों ने कड़ी मेहनत, समर्पण और दृढ़ता दिखाई है और अपनी सफलता की कहानियां लिखी है।

कलकी सुब्रमण्यम - सहोदरी फाउंडेशन की संस्थापक, दो स्नातकोत्तर की डिग्री ,सामाजिक कार्यकर्ता एवं पत्रकार है ।

पद्मिनी प्रकाश - भारत की मिस ट्रांसजेंडर, प्रशिक्षित कथक नर्तकी, गायक कलाकार, पत्रकार, टी.वी. धारावाहिक में भी कार्य किया है ।

मधुबाई किन्नर - छत्तीसगढ़ की लोकनृत्य कलाकार तथा रायगढ़ की प्रथम नागरिक बनी।

भारती - थियोलॉजी में स्नातक डिग्री ,ईसाई धर्म का नामांकरण इंजीलवादी चर्च में पादरी तथा शादियों का आयोजन भी करवाती है ।

मानवी बन्धोपाध्याय - एंडलेस बॉल्डेज उपन्यास की लेखिका ,बंगाली महाविद्यालय में प्रोफेसर।

शबनम मौसी - भारत की प्रथम किन्नर विधायक म.प्र. से बनी तथा 12 भाषाओं की ज्ञाता ।

विद्या राजपूत - मितवा संकल्प समिति की संस्थापक एवं सामाजिक कार्यकर्ता।

लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी - भारत का सर्वाधिक चर्चित चेहरा भरतनाट्यम नर्तकी ,सामाजिक कार्यकर्ता ।

कमला (जान) बुआ - देश की प्रथम किन्नर महापौर सागर में सन् 2009 में बनी।

लीला मनिर्मे कलाई - स्वतंत्र फिल्म निर्माता ,कवि ,अभिनेता ।

पृथिका यशिनि - भारत की प्रथम किन्नर पुलिस सब इंस्पेक्टर ।

जोइता मंडल - देश की प्रथम किन्नर न्यायाधीश बनने का गौरव प्राप्त किया।

गौरी सांवत - मुंबई में साक्षी चार चौघी की निदेशक तथा ट्रांसजेडर कार्यकर्ता जो ट्रांसजेडर लोगों तथा एच.आई.वी/एडस रोग से ग्रसित लोगों की मदद करती हैं।

किन्नरों के संवैधानिक अधिकार - भारत में पहली बार सन् 2014 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नर को तृतीय लिंग/थर्ड जेंडर के रूप में मान्यता प्रदान की गई। तथा 17 दिसम्बर को लोकसभा में ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकार संरक्षण) 2018 विधेयक पारित हो गया। यह बिल ट्रांसजेंडरों के अधिकार के संरक्षण हेतू बनाया गया है किंतु इस बिल का विरोध देशभर में किन्नर समाज द्वारा किया जा रहा है। सुप्रीम कोर्ट के 'नालसा' नेशनल लीगल सर्विस अथॉटी में फैसले के अन्तर्गत ट्रांसजेंडर समुदाय को पुरूष एवं स्त्री के बाद 'थर्ड जेंडर' के रूप में मान्यता मिली। इस नये बिल के अनुसार ट्रांसजेंडर व्यक्ति को ट्रांस अधिकारों के लिए मेडीकल सर्टिफिकेट की जरूरत पडेगी। इसी बात से किन्नर समाज स्वयं को अपमानित महसूस कर रहा है ।

ट्रांसजेंडर अधिकार संरक्षण अधिनियम - ट्रांसजेंडर अधिकार संरक्षण बिल 2019 के अनुसार ट्रांसजेंडर को पढ़ाई करने शैक्षणिक संस्थाओं में जाने का अधिकार है। कोई सरकारी या प्राइवेट संस्था नौकरी देने -प्रमोशन देने में भेदभाव नहीं कर सकता है । ट्रांसजेंडर को समस्त स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का लाभ लेने का अधिकार है। ट्रांसजेंडर को अपने घर में परिवार के साथ रहने का अधिकार है। कोई भी मकान मालिक उसे किराए से घर देने से मना नहीं कर सकता है। उसे प्रापर्टी खरीदने का हक है । ट्रांसजेंडर को पब्लिक एवं प्राइवेट आफिस खोलने का भी अधिकार है। इस बिल एवं कानून के मुताबिक किसी ट्रांसजेंडर को जबरन बंधुआ मजदूर बनाना ,सार्वजनिक स्थानों का इस्तेमाल करने से रोकना ,घर या गांव से निकालना ,शारीरिक हिंसा कर, आर्थिक तौर पर परेशान करना,अपशब्द कहना उपहास करना, मानसिक यातना देना ,अपराध की श्रेणी में आता है ।

दंड का प्रावधान - ट्रांसजेंडर के खिलाफ उपरोक्त सारे अपराध करने वाले को छः माह से दो साल तक की सजा हो सकती है एवं जुर्माना लग सकता है।

समिति का गठन - इस बिल में ट्रांसजेंडर्स के लिए एक कांऊसिल नेशनल काउंसिल फार ट्रांसजेंडर पर्सन बनाने की बात कही गई है जो केन्द्र सरकार को सलाह देना। केन्द्रीय सामाजिक न्याय मंत्री इसके अध्यक्ष, सोशल जस्टिस राज्य मंत्री वाइस चेयर पर्सन तथा सोशल जस्टिस मंत्रालय के सचिव, हेल्थ ,होम अफेंयर्स, ह्यमन रिर्सोस डेवल्पमेंट मंत्रालयों से एक - एक प्रतिनिधि शामिल होंगे । नीति मनोयोग तथा नेशनल ह्यूमन राइटस कमीशन के भी सदस्य इस काउंसिल में शामिल होंगे। साथ ही ट्रांसजेंडर्स कम्यूनिटी से पांच सदस्य और अलग-अलग एन.जी.ओ. से पांच विशेषज्ञ होंगे।

निष्कर्ष - भारत में किन्नरों को कई प्रकार से संवैधानिक कानून का संरक्षण प्राप्त है किंतु हकीकत में आज भी किन्नरों का जीवन अभिशप्त ही है, किन्नरों को सभ्य समाज के लोग समझना नहीं चाहते, आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार माँ बाप अपनी अपंग संतानों को भी लाड़ दुलार से पालन पोषण करते है, उसी प्रकार से किन्नर संतान का पालन पोषण सामान्य तरीके से करे,समाज के भय से, या लोग क्या कहेंगे, इस बात से डर कर अपनी संतान का त्याग न करें। आज सुप्रीम कोर्ट ने भी किन्नरों को तृतीय लिंग अर्थात् थर्डजेंडर के रूप से मान्यता दे दिया है तो सामयिक रूप से भी उन्हें मान्यता देना ही किन्नर की सामाजिक प्रस्थिति को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. त्रिपाठी लक्ष्मी नारायण - मैं हिजरा मैं लक्ष्मी।
2. सक्सेना आकांक्षा ब्लागर - किन्नर दिवस - एक अश्रु कथा
3. सिंग विजेन्द्र प्रताप - Katha aur kinner (story collection)
4. इंटरनेट पर उपलब्ध - विभिन्न ब्लॉग
5. भीष्म महेन्द्र - किन्नर कथा

****

July to September 2020
E-Journal
Volume I, Issue XXXI

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 5.610 (2018)

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

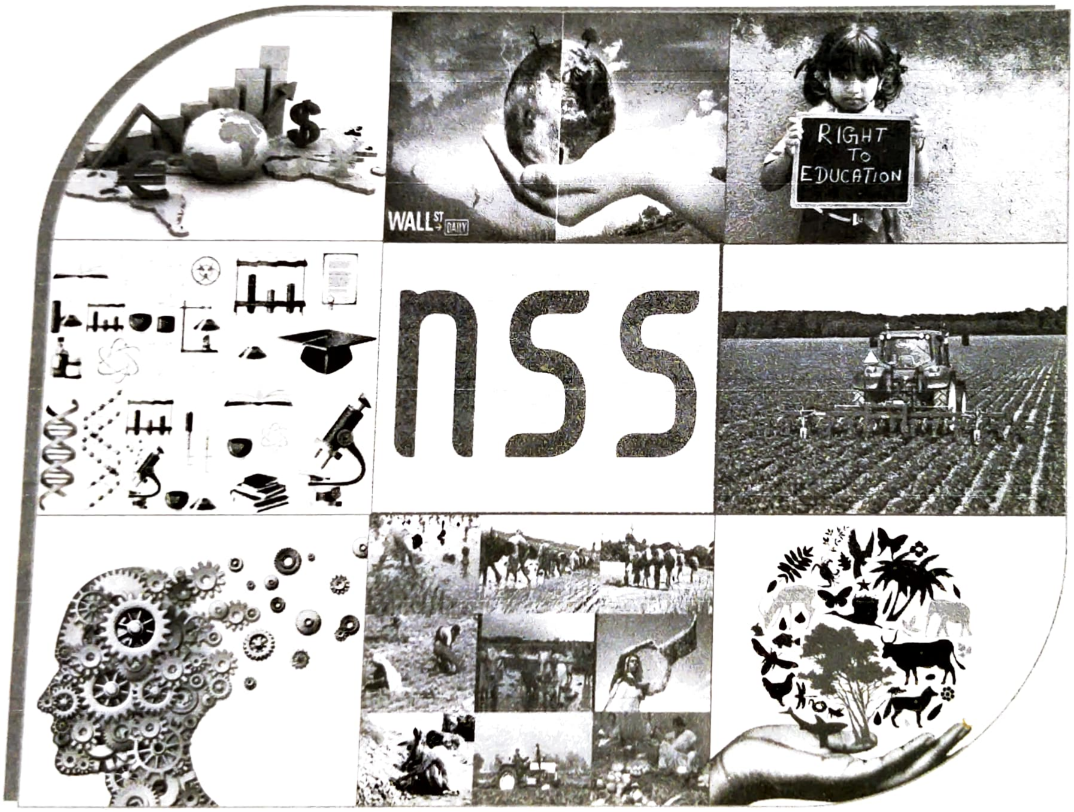

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

Index/अनुक्रमणिका

01. Index/ अनुक्रमणिका 02

02. Regional Editor Board / Editorial Advisory Board 07/08

03. Referee Board 09

04. Spokesperson 11

05. Environmental Pollution- Its Effects On Life And Public Health - A Case Study Of Bhopal City Area , M.P. (Manisha Singh) 13

06. Risk Factors Associated With Diabetes Mellitus During COVID19 (Varsha Mathur, Dr. Divya Dubey) 16

07. A Study of Madhya Pradesh State Co-operative Marketing Federation (MARKFED) (Ms. Meenakshi Shrivastava, Dr. Basanti Mathew Merlin) 20

08. Bioactive Entrapment and Targeting Using Nanocarrier Technologies (Renuka Thakur, Dr. S.K. Udaipure) 23

09. A Study of Customer's Perception with respect to Life Insurance Services of State Bank of India Life Insurance In Ujjain Division (Jitendra Sharma) 27

10. The Role of Professional Ethics in Teacher Education (Asmita Bhattacharya) 30

11. Synthesis And Photocatalytic Activity of $ZnO/H_3PW_{12}O_{40}$ – Supported Mordenite Composite (Renuka Thakur, Dr. S.K. Udaipure) 34

12. Effect of *Pterocarpus marsupium* (Vijayasaar) on Lipid Profile and Diabetic Quality of Life in Recent onset Type1 Diabetes (Dr. Bharti Taldar, Dr. Rohitashv Choudhary, Dr. Ritvik Agrawal, Dr. R.P. Agrawal) 37

13. वर्तमान परिदृष्य में साहित्य का अवदान (डॉ. वन्दना अग्निहोत्री) 45

14. ग्रामीण महिला सशक्तिकरण एवं सूचना प्रौद्योगिकी (डॉ.पूजा तिवारी) 48

15. कोराना काल (कोविड–19) में मानव स्वास्थ्य पर धूम्रपान (स्मोकिंग) का प्रभाव (डॉ. बसंती जैन) 50

16. छत्तीसगढ़ के पारंपरिक लोक गीतों का सामाजिक संदर्भ (आदिवासी अंचल के तंत्र-मंत्र गीत) (एन.आर. साव, डॉ. (श्रीमती) बसंत नाग) 52

17. महिला सशक्तिकरण चुनौतियां और संभावनाएं (श्रीमती नीतिनिपुणा सक्सेना, श्रीमती ज्योति पांचाल मिस्त्री) 54

18. मीडिया और बाजारवाद (डॉ. सुनीता शुक्ला) 57

19. भारत में बढ़ती जनसंख्या एवं उसका आर्थिक प्रभाव (डॉ. ए. के. पाण्डेय) 58

20. जनजातियों का भौगोलिक विवरण (डॉ. डी.पी. शार्मे) 61

21. शिक्षा एवं शैक्षणिक पर्यावरण का सामाजिक पर्यावरण पर प्रभाव एक अध्ययन (अपराध के विशेष संदर्भ में) (डॉ. ओंकार सिंह मेहता) 63

22. मुगलकालीन आर्थिक परिवेश (डॉ. सुनीता शुक्ला) 66

23. कक्षा आठ के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं विभिन्न रूचियों का तुलनात्मक अध्ययन (आगरा जनपद के जगनेर शहर के सन्दर्भ में) (मनीष कुमार, डॉ. प्रमिला दुबे) 68

nss Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal) ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Impact Factor - 5.610 (2018) July to September 2020, E-Journal, Vol. I, Issue XXXI

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण एवं सूचना प्रौद्योगिकी

डॉ.पूजा तिवारी*

शोध सारांश – महिला सशक्तिकरण से आशय महिलाओं की उस क्षमता से है जिससे उनमें ये योग्यता आ जाती है, जिससे वे अपने जीवन से जुडे सभी निर्णय ले सकती है। साधारण शब्दों में महिला सशक्तिकरण का मतलब है कि महिलाओं को अपनी जिंदगी का फैसला करने की आजादी देना,या उनमें ऐसी क्षमताएं विकसित करना ताकि वे समाज में अपना सही स्थान स्थापित कर सके। विश्व को आधी आबादी महिलाओं की है तथा वे कार्यकारी घंटों में दो तिहाई का योगदान करती है, किन्तु विश्व आय का मात्र दसवां हिस्सा वे प्राप्त कर पाती है तथा उन्हें विश्व संपत्ति में सौंवे हिस्से से भी कम हिस्सा प्राप्त हैं। दूसरी ओर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी संचार क्रांति के फलस्वरूप इलेक्ट्रानिक संचार सहित एक उद्योग के तौर पर एक उभरता हुआ क्षेत्र है। सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरी धरती को एक गांव बना दिया है ,वर्तमान में सूचना क्रांति से समाज में शिक्षा ,स्वास्थ्य ,व्यापार ,प्रशासन ,सरकार ,उद्योग , ग्रामीण क्षेत्रों में कायापलट हो गया है। आज का समाज सूचना समाज कहलाने लगा है। वर्तमान में महिलाओं की संख्या रोजगार में लगातार बढ़ रही है किंतु उन्हें कम वेतन ,असंतोषजनक हालात में काम करना पड़ता है। इस शोध पत्र के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका एवं महत्व पर प्रकाश डाला जायेगा।

शब्द कुंजी – सूचना प्रौद्योगिकी ,महिला सशक्तिकरण ,ग्रामीण सामाजिक , स्वास्थ्य।

उद्देश्य :-

1. ग्रामीण क्षेत्र में निवासरत महिलाओं की वैयक्तिक ,पारिवारिक वैवाहिक दशा ज्ञात करना।
2. ग्रामीण महिला सशक्तिकरण में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका ज्ञात करना।
3. ग्रामीण क्षेत्र में संचालित महिला विकास कार्यक्रम की जानकारी एकत्र करना।
4. ग्रामीण महिलाऐं को संचार सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न साधनों की जानकारी है की नहीं।

उपकल्पना :-

1. नवीन सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों द्वारा ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन किया जा सकता है।
2. सूचना तकनीक की सहायता से निर्धनता एवं बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है।
3. जनसंख्या नियंत्रण पर विशेष बल देकर ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है।

समग्र एवं निर्दशन – अध्ययन का क्षेत्र छिन्दवाड़ा जिले की बिछुआ तहसील के गांव गांव में निवासरत महिलाओं पर अध्ययन केन्द्रित है। बिछुआ के ग्राम गोनी, मजियापार, जाखावाड़ी, उल्हावाड़ी एवं लोहार बतरी गांव में उद्देश्यपूर्ण निर्देशन पद्धति से 300 महिलाओं का चयन कर उनसे तथ्य संकलित किये गए है।

संकलन का स्रोत – मुख्य रूप से साक्षात्कार ,अनुसूची, अवलोकन द्वारा आंकड़ों का संकलन किया गया। इसके अतिरिक्त पूर्व लेख, पुस्तक, पत्र पत्रिकाऐं एवं समाचार पत्र से भी जानकारी ली गई।

विश्लेषण – जनसंचार साधनों के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र,पत्रिकाऐं आदि शामिल है। कृषक समाज पर रेडियो का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। वर्तमान में आकाशवाणी द्वारा कृषि चर्चा तथा महिलाओं से संबंधित अनेक कार्यक्रम प्रसारित किये जाते है। रेडियो एवं टी.वी.के द्वारा ग्रामीण महिलाओं के मानसिक विचारों में सशक्तिकरण,आर्थिक सशक्तिकरण तथा सामाजिक सशक्तिकरण दिखाई दे रहा है। वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में भी साक्षर, शिक्षित महिलाओं की संख्या बहुतायत में है , अत: पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से भी ग्रामीण महिलाएं विश्व से जुड़ जाती है। जनसंचार के साधनों से उन्हें नवीन ज्ञान की प्राप्ति होती है एवं वो अद्यतन रहती है।

सारणी क्रमांक 01 : महिला सशक्तिकरण पर जनसंचार साधनों के प्रभाव के विषय में उत्तरदाताओं के विचार

	प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
1.	महिलाओं के विचारों में परिवर्तन	84	28
2.	महिलाओं की आर्थिक स्थिति में मजबूती	36	12
3.	नवीन कृषि तकनीक का ज्ञान	42	14
4.	नवीन योजनाओं की जानकारी	33	11
5.	कृषि के प्रति सकारात्म सोच का विकास	33	11
6.	कृषि उत्पादन में निरंतर वृद्धि	33	11
7.	अन्य	39	13

इस सारणी से स्पष्ट होता है कि 28 फीसदी उत्तरदाता यह मानते है कि जनसंचार साधनों के प्रभाव के कारण महिलाओं के विचार में परिवर्तन आया है। 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार आर्थिक स्थिति में मजबूती आई है। 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार कृषकों को नवीन कृषि तकनीकी का ज्ञान प्राप्त हुआ है। 11 प्रतिशत ने यह माना कि नवीन योजनाओं की जानकारी हुई है। 11 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार कृषि के प्रति सकारात्मक सोच का विकास हुआ है। 11 प्रतिशत ने माना कि

* सह प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला -छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है तेरह प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार जनसंचार के साधनों का ग्रामीण समाज पर अन्य प्रभाव भी पडे है।

सारणी क्र. 02 : वैज्ञानिक अविष्कारों का ग्रामीण समाज पर पड़ने वाले प्रभाव

	प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि उत्पादन में वृद्धि	93	37
2.	आर्थिक निर्भरता में सहायक	69	23
3.	महिलाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक स्थिति में सुधार	36	12
4.	कृषि संबंधों में परिवर्तन एवं महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण	60	20
5.	कृषि कार्य संस्कृति में परिवर्तन	24	08
6.	अन्य	18	06

सारणी से स्पष्ट है कि 31 प्रतिशत ने माना कि वैज्ञानिक अविष्कारों से ग्रामीण समाज में कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार 23 उत्तरदाताओं के अनुसार आर्थिक निर्भरता उत्पन्न हुई है। 12 फीसदी के अनुसार महिलाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा बड़ी है। 20 प्रतिशत ने माना कि कृषि संबंधों में बदलाव आया है एवं महिलाए आत्मनिर्भर हुई है ,8 फीसदी के अनुसार कृषि कार्य संस्कृति में परिवर्तन आया है तथा 6 प्रतिशत उत्तरदायित्वों के अनुसार महिलाओं पर अन्य प्रभाव भी पडे हैं।

सारांश एवं निष्कर्ष – स्वतंत्रता पश्चात् सर्वाधिक बड़ा परिवर्तन वर्तमान में देश के प्रत्येक गांव में टेलीफोन सुविधा पहुंच गई है। संचार क्रांति लाने का पूरा श्रेय पूर्व प्रधानमंत्री स्व.श्री राजीव गांधी को जाता है। संचार क्रांति आने से गांवों में भी रोजगार के संसाधन बढे हैं एवं महिलाओं को भी रोजगार मिल रहा है आज लगभग हर परिवार में मोबाइल है ,टी.वी.है ,आज लगभग प्रत्येक महिला निश्चित रूप से मोबाइल रखना चाहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी सायबर कैफे खुल रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं भी अब कम्प्यूटर एवं इंटरनेट का प्रयोग कर नयी नयी जानकारियाँ प्राप्त कर रही है। इससे उनका ज्ञान बढ़ रहा है एवं उन्हें रोजगार भी मिल रहा है साथ ही उनकी शैक्षणिक एवं आर्थिक उन्नति भी हो रही है जो महिला सशक्तिकरण का परिचायक हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आहुजा राम – भारतीय सामाजिक व्यवस्था – रावत पब्लिकेशन्स जयपुर
2. शर्मा सुभाष – भारतीय महिलाएं दशा एवं दिशा
3. स्वाति के. – महिला सशक्तिकरण में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका (दि इन साइड)

****

ISSN : 2349-638X
IMPACT FACTOR : 7.149

Aayushi International
Interdisciplinary Research Journal

E-mail : [illegible] Website : [illegible]

Peer Reviewed & Indexed Journal

Special issue No. 84

Dr. Babasaheb Ambedkar an Architect of India

Chief Editor
Mr. PRAMOD TANDALE

Editor
Ms. MEGHAVEE G. MESHRAM
Mr. NARESH W. PATIL

Impact Factor – 7.149 ISSN-2349-638x

2/1599

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

PEER REVIEWED & INDEXED JOURNAL

April - 2020

Theme of the Special Issue

Dr.Babasaheb Ambedkar : An Architect of India

Chief Editor

Pramod P. Tandale

Editor

Prof. Meghavee G. Meshram

Prof. Naresh W. Patil

IMPACT FACTOR

SJIF 7.149

For details Visit our website

www.aiirjournal.com

PR Mauki

Dr. Babasaheb Ambedkar And Social Reformation

Dr. Monika Bramhne
Asst. Prof.,
Govt. College Bichhua District Chhindwara

We are also known as Babasaheb Ambedkar was an Indian jurist, economist, politician and social reformer, who inspired the Dalit Buddhist movement and campaigned against social discrimination towards the untouchables (Dalits). He was a member of the Constituent Drafting committee. He was independent India's first Minister of Law and Justice, and considered the chief architect of the Constitution of India.

In 1990, the Bharat Ratna, India's highest civilian award, was posthumously conferred upon Ambedkar. Ambedkar's legacy includes numerous memorials and depictions in popular culture.

As Ambedkar was educated by the Princely State of Baroda, he was bound to serve it. He was appointed Military Secretary to the Gaikwad but had to quit in a short time. He described the incident in his autobiography, Waiting for a Visa. Thereafter, he tried to find ways to make a living for his growing family. He worked as a private tutor, as an accountant, and established an investment consulting business, but it failed when his clients learned that he was an untouchable. In 1918, he became Professor of Political Economy in the Sydenham College of Commerce and Economics in Mumbai. Although he was successful with the students, other professors objected to his sharing a drinking-water jug with them.

Ambedkar went on to work as a legal professional. In 1926, he successfully defended three non-Brahmin leaders who had accused the Brahmin community of ruining India and were then subsequently sued for libel. Dhananjay Keer notes that 'The victory was resounding, both socially and individually, for the clients and the doctor'.

While practising law in the Bombay High Court, he tried to promote education to untouchables and uplift them. His first organised attempt was his establishment of the central institution Bahishkrit Hitakarini Sabha, intended to promote education and socio-economic improvement, as well as the welfare of "outcastes", at the time referred to as depressed classes. For the defence of Dalit rights, he started many periodicals like Mook Nayak, Bahishkrit Bharat, and Equality Janta.

He was appointed to the Bombay Presidency Committee to work with the all-European Simon Commission in 1925. This commission had sparked great protests across India, and while its report was ignored by most Indians, Ambedkar himself wrote a separate set of recommendations for the future Constitution of India.

By 1927, Ambedkar had decided to launch active movements against untouchability. He began with public movements and marches to open up public drinking water resources. He also began a struggle for the right to enter Hindu temples. He led a satyagraha in Mahad to fight for the right of the untouchable community to draw water from the main water tank of the town. In a conference in late 1927, Ambedkar publicly condemned the classic Hindu text, the Manusmriti (Laws of Manu), for ideologically justifying caste discrimination and "untouchability", and he ceremonially burned copies of the ancient text. On 25 December 1927, he led thousands of followers to burn copies of Manusmriti.

Thus annually 25 December is celebrated as Manusmriti Dahan Din (Manusmriti Burning Day) by Ambedkarites and Dalits. In 1930, Ambedkar launched the Kalaram Temple movement after three months of preparation. About 15,000 volunteers assembled at Kalaram Temple satygraha making one of the greatest processions of Nashik. The procession was headed by a military band and a batch of scouts; women and men walked with discipline, order and determination to see the god for the first time. When they reached the gates, the gates were closed by Brahmin authorities.

In 1936, Dr.Babasaheb Ambedkar founded the Independent Labour Party, which contested the 1937 Bombay election to the Central Legislative Assembly for the 13 reserved and 4 general seats, and secured 11 and 3 seats respectively.

Dr.Babasaheb Ambedkar published his book Annihilation of Caste on 15 May 1936. It strongly criticised Hindu orthodox religious leaders and the caste system in general, and included "a rebuke of Gandhi" on the subject. Later, in a 1955 BBC interview, he accused Gandhi of writing in opposition of the caste system in English language papers while writing in support of it in Gujarati language papers.

Ambedkar served on the Defence Advisory Committee and the Viceroy's Executive Council as minister for labour.

After the Lahore resolution (1940) of the Muslim League demanding Pakistan, Ambedkar wrote a 400 page tract titled Thoughts on Pakistan, which analysed the concept of "Pakistan" in all its aspects. Ambedkar argued that the Hindus should concede Pakistan to the Muslims. He proposed that the provincial boundaries of Punjab and Bengal should be redrawn to separate the Muslim and non-Muslim majority parts. He thought the Muslims could have no objection to redrawing provincial boundaries. If they did, they did not quite "understand the nature of their own demand". Scholar Venkat Dhulipala states that Thoughts on Pakistan "rocked Indian politics for a decade". It determined the course of dialogue between the Muslim League and the Indian National Congress, paving the way for the Partition of India.

In his work Who Were the Shudras?, Ambedkar tried to explain the formation of untouchables. He saw Shudras and Ati Shudras who form the lowest caste in the ritual hierarchy of the caste system, as separate from Untouchables. Ambedkar oversaw the transformation of his political party into the Scheduled Castes Federation, although it performed poorly in the 1946 elections for Constituent Assembly of India. Later he was elected into the constituent assembly of Bengal where Muslim League was in power.

Dr.Babasaheb Ambedkar contested in the Bombay North first Indian General Election of 1952, but lost to his former assistant and Congress Party candidate Narayan Kajrolkar. Ambedkar became a member of Rajya Sabha, probably an appointed member. He tried to enter Lok Sabha again in the by-election of 1954 from Bhandara, but he placed third (the Congress Party won). By the time of the second general election in 1957, Ambedkar had died.

Ambedkar also criticised Islamic practice in South Asia. While justifying the Partition of India, he condemned child marriage and the mistreatment of women in Muslim society.

No words can adequately express the great and many evils of polygamy and concubinage, and especially as a source of misery to a Muslim woman. Take the caste system. Everybody infers that Islam must be free from slavery and caste. [While slavery existed], much of its support was derived from Islam and Islamic countries. While the prescriptions by the Prophet regarding the just and humane treatment of slaves contained in the Koran are praiseworthy, there is nothing whatever in Islam that

Bb
12.01.21
DR Monika Soni

lends support to the abolition of this curse. But if slavery has gone, caste among Musalmans [Muslims] has remained.[68]

Drafting India's Constitution

Dr Babasaheb Ambedkar, chairman of the Drafting Committee, presenting the final draft of the Indian Constitution to Rajendra Prasad on 25 November 1949.

Upon India's independence on 15 August 1947, the new Congress-led government invited Ambedkar to serve as the nation's first Law Minister, which he accepted. On 29 August, he was appointed Chairman of the Constitution Drafting Committee, and was appointed by the Assembly to write India's new Constitution.

The social justice beings of justice which derivatives from concept of ethical morality. The issues of social justice is affected various developmental policy as well as whole development of social welfare programme. Kelsen observed social justice is that what does it really mean to say that a social order is just? It means that this order regulates the behavior of men in a way satisfactory to all men so that all men find their happiness in it. Social justice is social happiness. It is happiness guaranteed by a just social order. Just social system seeks to remove social disability by birth resulting in social and economic inequality. Social Justice means equal social opportunities shall be available to everyone to develop their personalities which is associated with equality and social rights. According to Ambedkar, his Justice is based on moral values and self respective. Justice ensures through social, political and economic justices which regulated by the Indian constitution.

Dr Babasaheb Ambedkar says that caste is an artificial chopping off of the population into fixed and definite units each one prevented from fusing into another group through the custom of endogamy (Jaffrelot 2005:32). He quotes ,Caste is the monster that crosses your path, you cannot have political reform, and you cannot have economic reform, unless you kill this monster. (Keer 1988: 7). He believed that the root of untouchability is the caste system, the roots of the caste system is religion attached to Varnashram, the root of Varnashram is the Brahminical religion, and the root of Brahminical religion is authoritarian of power.

Ambedkar's Notion of Social Justice

Injustice is everywhere not only western countries and India also. At present one of the contemporary issues is that injustice and caste discrimination. Ambedkar did a movement amongst marginalized communities. His concept of justice generated from the French Revolution of 1789.

Ambedkar's perspective of social justice is based on social democracy which consists of three concept of justice namely liberty, equality and fraternity. Ambedkar addressed in constituent assembly that „the third thing we must do is not to be content with mere political democracy. We must make our political democracy a social democracy as well. Political democracy cannot last unless there lies at the base of it social democracy. What does social democracy mean? It means a way of life which recognizes liberty, equality and fraternity as the principles of life.

These principles of liberty, equality and fraternity are not to be treated as separated items in a trinity. They form a union of trinity in the sense that to divorce one from the other is to defeat the very purpose of democracy'

These principles are fundamental rocks of Just Society

His concept of liberty is a fundamentalism among political and philosophy thought. According to Ambedkar, liberty has divided into two categories namely Civil Liberty and Political Liberty. Ambedkar's notion of civil liberty deals with three basic opinions are; Liberty of movement, Liberty of speech and Liberty of action. Civil liberties are often formally guaranteed in Indian constitution but ignored in practice which came from Bill of Rights. Civil right is often used to refer to one or more of these liberties or indirectly to the obligation of government to protect dalits from violations of one or more of their civil liberties.

He believed that democracy offers every individual achieve social equality, economic and political justice guaranteed in the preamble of the constitution. Liberty, equality and fraternity should be the only alternative to abolition caste society. He argued that, liberty cannot be divorced from equality; equality cannot be divorced from fraternity. With equality, liberty would produce would kill individual initiative. Without fraternity, liberty and equality could not become a natural course of things. It would require a constable to enforce them. We must begin by acknowledging the fact that there is complete absence of two things in Indian society, One of these is equality'.

Social and economic democracies are the tissues and the fiber political democracy. The social and economic problem of our society seeks to envisage. Whole-heartedly supports the system of fundamental rights of man in the constitution of free India. According to B.R.Ambedkar, combine individualism and socialism through the introduction of state socialism, by means of the law of the constitution, Liberty retains the modified capitalist system of social economic, while it gives greater concessions to the poor, the fallen and the weak, under a parliamentary form of government.

Dr Babasaheb Ambedkar's concept of State Socialism is based on following point.

1. State ownership of agricultural and key industries to meet the demands of the poorer strata of society,
2. Maintenance of productive resources by the state and
3. A just distribution of the common produce among the different people without any distinction of castes or creed (Jadhav 1991; 986)

Dr Babasaheb Ambedkar believed that all men have value capacities, which can be measured easily by their contributions. Everyone has some value contribution in the civic order, in which he lives. Therefore, everyone must have an equal voice or share in the determination of the law of his land. He demands that the protection of law, equality and ethically, status be accorded to every member, without any regard to groups morally status. State should allow participating in all democratic institutions and be given their legal rights. Ambedkar believed that the rights are equal and common to all humans. He says that ,we are demanding equal rights which are the common possession of the entire humanity but due to inhibitions created by the shastras we have been denied these human rights (Larbeer2003: 69).

He further says that ,rights are protected not by law but the social and moral conscience of society. If social conscience is such that it is prepared to recognize the rights, which law chooses to enact, rights will be safe and secure. But if the fundamental rights are opposed by the community, no law, no parliament, no judiciary can guarantee them in the real sense of the word.' (Larbeer2003: 71).

Vol. XI
Number 7
(ISSN 2229-5755)
(Special Issue) January-December 2021

EDUCATION TODAY

A Multidisciplinary International Peer Reviewed/Refereed Journal

APH PUBLISHING CORPORATION

Scanned By Scanner Go

CONTENTS

A Literature Review on Machine Learning and Deep Learning for Gene Regulatory Networks of Bioinformatics — 1
M. Kasipandi and C. P. Chandran

Artificial Intelligence Robots of AI Human Intelligence — 22
Dr. Amarjeet Kaur

The Medicinal Importance of Nagarmotha — 27
Dr. Nasreen Anjum Khan

Coping With Stress in Life — 31
Dr. Jatinder Kaur Juneja

Swift's Misanthropy in *Gulliver's Travels* and Theme of Political Satire — 36
Dr. Wilson Rockey

Standard Form Contract with Special Reference to, E-Contracts: An Overview — 40
Dr. Absarul Hasan Kidwai

Authorship Pattern in the Journal of Occupational Therapy: A Bibliometric Analysis — 46
Dr. Senthil Kumar V.

Growth of Education in Tamilnadu Since Independence — 53
Mr. M. Yuvaraj and Dr. G. Rangaraju

Feminine Perspectives in the Novels of Anita Desai and Shashi Deshpande — 60
Dr. Ganesh Kumar Srivastav

Writ of Habeas Corpus in India — 65
Dr. R. K. Pandey

Higher Education Learners' Approaches Towards Fake Information on Social Media — 72
Dr. Garima Singh

Environment (Protection) Act, 1986 : A Critical Analysis — 80
Dr. Kiran Sharma

Review of Irrigation System Performance in Agriculture Sector — 85
Dr. Sreeja S. and Smt. Sumi K. S.

Scanned By Scanner Go

The Medicinal Importance of Nagarmotha

Dr. Nasreen Anjum Khan*

Abstract

Nagarmotha a cosmopolitan weed, is found in all tropical, subtropical and temperate regions of the world. In India, it is commonly known as Nagarmotha and it belongs to the family Cyperacea. The major chemical components of this herb are essential oils, flavonoids, terpenoids, sesquiterpenes, cyprotene, cyperene, aselinene, rotundene, valencene, cyperol, gurjunene, trans-calamenene, cadalene, cyperotundone, mustakone, isocyperol, acyperone, etc., Research studies have shown that it possesses various pharmacological activities such as diuretic, carminative, emmenagogue, anthelminthic, analgesic, anti-inflammatory, anti-dysenteric, antirheumatic activities. An extensive review of the ancient traditional literature and modern research revealed that the drug has numerous therapeutic actions, several of which have been established scientifically, which may help the researchers to set their minds for approaching the utility, efficacy and potency of nagarmotha..

Keywords: Cyperus rotundus , cyprotene, flavonoids, Nagarmotha

INTRODUCTION

Nagarmotha (*Cyperus rotundus*) commonly known as Nagarmotha is found throughout India. It belongs to the family Cyperacea. The genus name *Cyperus* is derived from *Cypeiros,* which was the ancient Greek name for the genus, *rotundus* is Latin word for round and refers to the tuber. [1] The family comprises about 104 genera and more than 5000 species world-wide, although number vary greatly due to differing taxonomic concepts of individual researchers. The largest genus is *Carex* with about 2000 species world-wide, followed by *Cyperus* with about 550 species. [2] It is a pestiferous perennial weed with dark green glabrous culms, arising from underground tubers. It is actually a field weed known in all the Southern States as nut grass. The plant produces rhizomes, tubers, basal bulbs and fibrous roots below ground and rosettes of leaves, scapes and umbels above ground.

Nagarmotha, also known as Nutgrass, is a plant-based ayurvedic herb. Its scientific name is Cyperus Rotundus. It tastes bitter and gives a pungent smell. Nagarmotha is a riverbed plant found in the state of Madhya Pradesh in India. It helps with digestion, manages appetite issues, helps in lung and liver diseases, obesity, diabetes, and problems related to the uterus.

Distribution Nagarmotha (*C. rotundus*) is a cosmopolitan weed found in all tropical, subtropical and temperate regions of the world. In India, it is common in open, disturbed habitats to an elevation of about 1800 m.[3]

PHYTOCHEMISTRY

Phytochemical studies has shown that the major chemical components of this herb are essential oils, flavonoids, terpenoids, and mono sesquiterpenes. The rhizomes are scraped and pounded with green ginger mixed with honey prescribed in dysentery, gastric and intestinal troubles. Fresh tubers are applied to the breast as a galactagogue. [4] Seeds in the form of trigonous nuts, flowers

*Government College Bichhua, District Chhindwara.

Scanned By Scanner Go

and fruits almost throughout the year, but chiefly during rainy season. [5] The plant contains the following chemical constituents; cyprotene, acopaene, cyperene, aselinene, rotundene, valencene, cyperol, gurjunene, trans-calamenene, dcadinene, gcalacorene, cadalene, amuurolene, gmuurolene, cyperotundone, mustakone, isocyperol, acyperone, [6] 4,11-selinnadien-3-one and 1,8-cineole. [7] The oil of *C. rotundus* was mainly composed of cyperol, α-cyperene, rotundine, α-cyperone, α-copaene, valerenal, myrtenol, β-pinene, α-pinene and α-Selinene, sesquiterpene hydrocarbons (Caryophyllene). [8],[9]

THERAPEUTIC USES

The essential oil (0.5-0.9%) from the tuber is used in perfumery, soap making and insect repellent cream. [10] Decoction of rhizome with stem bits of *Tinospora cardifolia* and dried ginger is given to treat malarial fever. Decoction of rhizome with leaves of *Fuaria indica*, *Swertia chirayita*, black pepper and ginger was used to treat typhoid fever. Rhizome juice is given in the dose of 25 ml thrice daily for 3 days to treat constipation. [11] The rhizomes are scraped and pounded with green ginger mixed with honey prescribed in dysentery, gastric and intestinal troubles. Fresh tubers are applied to the breast as a galactagogue. [12]

Figure 1: Nagarmotha Plant

Figure2: Nagarmotha root

Nagarmotha for skin diseases

Nagarmotha helps with inflammation, itchiness, blisters, eczema, etc., due to its cooling and astringent properties.

Nagarmotha for stress and anxiety

The essential oil of Nagarmotha has an earthy smell that builds a soothing effect on your body. It reduces pain and regulates the level of serotonin in the body Nagarmotha increases your appetite and the pungent aroma helps to cure indigestion.

Nagarmotha for high blood sugar

Nagarmotha has been used in the treatment of high blood sugar for ages. Consuming the root powder of this plant regularly helps block the excess sugar from getting absorbed by the body. Thus, it manages high blood sugar levels.

Nagarmotha for Menstrual complaints

One of the main uses of Nagarmotha in Ayurveda is in the treatment of menstrual complaints. Using Nagarmotha regularly regulates menstruation, overdue periods and also provides relief from painful cramps due to menstruation.

Scanned By Scanner Go

Nagarmotha for obesity

Nagarmotha root power has anti-obesity properties. Regular consumption of this powder reduces the accumulation of fat in the body and helps reduce obesity. It also burns and improves the process of fat metabolism.

Although Nagarmotha is considered one of the worst weeds known to man, Ayurveda has found an effective way to use this plant for the benefit of mankind. Thus, Nagarmotha can benefit our health in numerous ways.

Fights Respiratory Issues

Blessed with powerful anti-inflammatory, anti-biotic, and anti-asthmatic properties, Nagarmotha is considered to be a well-known traditional remedy for all sorts of respiratory troubles. It is extensively used for treating the common cold, sore throat, cough and flu symptoms. It also thins and loosens catarrh particles within the chest and nasal cavities and hence eases breathing and helps the body to get rid of mucus. It is also beneficial in treating bronchitis and asthmatic conditions. Grind dried roots of both nagarmotha and Beetle Killer in equal quantity and make a paste by adding water in it. Take 5 gm paste with lukewarm water and have it twice a day to improve respiratory anomalies.

Shields Against Infections

The biochemical compounds present in Nagarmotha has been used since the ancient times to combat germs and shield the body against various infections. Thanks to its strong anti-viral, anti-bacterial, and antifungal properties, mustak is not only used for removing bacteria and germs from the body but also used for recurring fever conditions. It also helps in reducing general debility, weakness, and fatigue and improves the vitality of the body.

CONCLUSION

Nagarmotha (C. *rotundus*) is a perennial plant and is one of the most invasive weeds known, having spread out to a world-wide distribution in tropical and temperate regions. The plant is mentioned in the ancient ayurvedic medicine Charaka Samhita. Ayurvedic physicians uses the plant, known as musta or musta moola churna, for treating fevers, digestive system disorders, dysmenorrhea and other maladies. Modern alternative medicine recommends using the plant to treat nausea, fever and inflammation; for pain reduction; for muscle relaxation and many other disorders.

REFERENCES

1. David WH, Vernon VV, Jason AF. Purple nutsedge, *Cyperus rotundus* L. Florida (U.S.A): *Institute of Food and Agricultural Sciences,* University of Florida; 2012. p. 02-15.
2. Family: *Cyperaceae.* Available from: *http://www.plantzafrica.com/plantcd/cyperaceae.htm.* [Last cited on 2013 Apr 10].
3. Parotta JA. *Healing Plants of Peninsular India. New York:* CABI Publishing; 2001. p. 02-66.
4. Kirtikar KR, Basu BD. *Indian Medicinal Plants.* 2nd ed., Vol. IV. Dehradun: International Book Distributors; 2007. p. 580-878.
5. Chatterjee A, Pakrashi SC. *The Treatise on Indian Medicinal Plants.* Vol.VI. New Delhi: National Institute of Science Communication (CSIR); 2009. p. 809-1250.
6. Meena AK, Yadav AK, Niranjan US, Singh B, Nagariya AK, Verma M. *Review on Cyperus rotundus- A potential herb. Int J* Pharm Clin Res 2010;2:20-2.

Scanned By Scanner Go

7. Visetson S, Milne M, Milne J. *Toxicity of 4,11-Selinnadien-3-one from nutsedge* (**Cyperus rotundus** L *tuber extracts to diamondback moth larvae (Plutella xylostella L.), detoxification mechanisms and toxici to non tarqet species*. Kasetsart J Nat Sci 2001;35:284-92.
8. Nima ZA, Jabier MS, Wagi RI, Hussain HA. *Extraction, identification and antibacterial activity of* **Cyperus** *from Iraqi C. rotundus*. Eng Technol 2008;26:1156-9.
9. Bisht A, Bisht GR, Singh M, Gupta R, Singh V. *Chemical composition and antimicrobial activity of essenti oil of tubers of Cyperus rotundus Linn. collected from Dehradun (Uttarakhand)*. Int J Res Pharm Biome Sci 2011;2:661-5.
10. Hashmat I. *Evaluation of mosquito larvicidal effect of waj turki, saad kufi and mia saila [Dissertatior Bangalore (India): Rajiv Gandhi University of Health Sciences*; 2002. p. 54-61.
11. Anonymous. *Medicinal Plants of Folklores of Northem India. 1 st ed.. New Delhi*: CCRUM Press; 2001. 150-533.
12. Nagaraian A.,Sooranqkattan S.Campus- *Wide floristic Diversity of medicinal plants in Indian institu Technology*- Madras (IIT-M), Chennai, American Journal of Plant Science. 2017; 08(12);2995

Scanned By Scanner Go

ISSN (P) ... Vol.-5 * Issue-7* September-2020

Innovation

The Research Concept

Multi-disciplinary Bi-lingual International Journal
Peer Reviewed / Refereed

Impact Factor
SJIF = 6.122
SJIF = 4.112

S R F

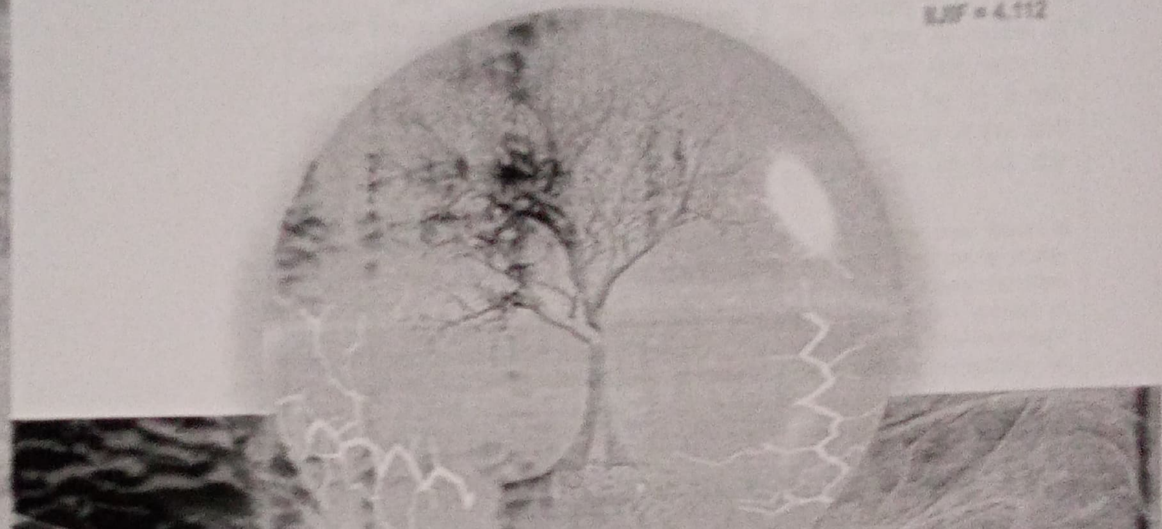

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-7* September- 2020
Innovation The Research Concept

विवाह पर लॉक डाउन का प्रभाव एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

A Sociological Study of The Effect of Lock Down on Marriage

Paper Submission: 12/09/2020, Date of Acceptance: 25/09/2020, Date of Publication: 26/09/2020

फरहत मंसूरी
सहायक प्राध्यापक,
समाज शास्त्र विभाग,
शासकीय महाविद्यालय,
बिछुआ, छिन्दवाड़ा,
म0प्र0, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र से स्पष्ट होता है कि भारत में हुए लॉक डाउन के कारण विवाह के आयोजन में परिवर्तन आया है यह परिवर्तन मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग के परिवारों के लिए सकारात्मक है क्यूंकि शासन के आदेश के कारण विवाह के आयोजन में अनावश्यक भीड़ को एकत्रित नही करना है जिसके कारण विवाह समारोह बहुत ही सादगी से सम्पन्न किये जा रहे है यदि ये सादगी भविष्य में भी अपनाई जाती है तो सादगी से विवाह करना आगे चलकर एक परम्परा बन जाएगी जिसके कारण कोई भी पिता को बेटी बोझ नही लगेगी।

It is clear from the presented paper that there has been a change in the organizing of the marriage due to the lock-down in India, this change is positive for the middle class and lower class families because the order of the government gathered unnecessary crowd in organizing the marriage. Do not have to, because of which the marriage ceremonies are being done with great simplicity. If this simplicity is adopted in future also, then marrying with simplicity will become a tradition in the future due to which no father will be burdened by the daughter.

मुख्य शब्द : विवाह, लॉक डाउन, कोरोना वायरस, वर, वधु।
Marriage, Lock Down, Corona Virus, Groom, Bride.

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध–पत्र में विवाह पर लॉक डाउन का प्रभाव एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। वर्तमान समय में नोवल कोरोना वायरस जिसको विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोविड 19 का नाम दिया है के कारण सम्पूर्ण भारत में 22 मार्च 2020 को जनता कर्फ्यू और उसके बाद लॉक डाउन कर दिया गया है। यह लॉक डाउन चार चरणों में किया गया है, वर्तमान समय में भारत में चतुर्थ श्रेणी का लॉक डाउन 31 मई 2020 तक है। इस लॉक डाउन में समाज की विभिन्न महत्वपूर्ण संस्थाओं को प्रभावित किया है जैसे धार्मिक संस्था, परिवार, नातेदारी, विवाह। हमने इस शोध–पत्र के माध्यम से केवल समाज की वैवाहिक संस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है। लॉक डाउन ने जहाँ कई नुकसान किये है वही कुछ जगह में सकारात्मकता भी दिखाई दी है जैसे भारत में हुए इस लॉक डाउन के कारण संपन्न होने वाले विवाहों में परिवर्तन आया है जहां पर पहले विवाह में भव्य आयोजन किये जा रहे थे वहां अब केवल 20 से 50 लोगों में या इटरनेट के माध्यम से विवाह को सम्पन्न किया जा रहा है, जिससे समाज में रहने वाले एक बड़े वर्ग से आर्थिक बोझ कम हुआ है। लॉक डाउन समाप्त होने के बाद समाज इस रीति से विवाह सम्पन्न करवाता है, तो यह आगे चल कर परम्परा बन जाएगी।

शोध की अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध–पत्र में अध्ययन से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करने के लिए फोन के माध्यम से 50 उत्तरदाताओं से संपर्क कर साक्षात्कार लिया गया एवं द्वितीयक स्त्रोतो का भी प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. विवाह से तात्पर्य,

2. जिन वर वधु का विवाह लॉक डाउन में हुआ है उनसे जानकारी प्राप्त करना,
3. लॉक डाउन के कारण स्थगित हुए विवाह की जानकारी प्राप्त करना,
4. लॉक डाउन के कारण विवाह पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी प्राप्त करना।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा सामाजिक संस्थाएं, व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक पक्षों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है मानवीय इच्छाओं की पूर्ति ने ही विवाह नामक संस्था को जन्म दिया और विवाह ने ही परिवार तथा नातेदारी को बनाया। कुछ समाजों में विवाह एक धार्मिक संस्था है, तो कुछ में कानूनी एवं सामाजिक समझौता। अतः विवाह दो विषम लिगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, धार्मिक एवं कानूनी स्वीकृति है।

कोलापुर के रहने वाले संजय शेलार की बेटी की शादी 18 मार्च को थी उन्होंने बी0बी0सी0 मराठी को बताया–हम दोनो ही लड़के और लड़की वालो ने मिलकर 3000 के करीब आमंत्रण पत्र बाटे थे और हमने जोर दे कर सभी को कहा था कि वे शादी में जरूर आए लेकिन कोरोना वायरस के खतरे को देखते हुए हमने सारे आयोजन स्थगित करने का फैसला लिया और जिन लोगो को आमंत्रित किया था उनसे क्षमा मांगते हुए अपील की कि मेरी बेटी के विवाह के आयोजन में न आए।

मुम्बई के रिज़वान शेख ने बी0बी0सी0 को बताया – शादी और रिसेप्शन दोनों ही 1 अप्रैल को था, वलीमा 3 अप्रैल को तय था लेकिन कोरोना वायरस के कारण लॉक डाउन के चलते सरकार की गाईडलाइन पर हमने बहुत कम लोगों की मौजूदगी में यह शादी की तथा रिसेप्शन और वलीमें का आयोजन रद्द कर दिया।

सिंगापुर के एक दम्पत्ति ने विडियों कॉल के जरिए शादी की क्योंकि वो कुछ दिनों पहले ही चीन के वूहान से लौटे थे।

पटना के फूलवारी शरीफ में दुल्हन बनी सदफ नसरीन ने उत्तर प्रदेश के साहिबाबाद में दुल्हा बने दानिश रजा के साथ ऑनलाईन निकाह किया।

तालिका क्र. 1

लॉक डाउन के कारण स्थगित विवाह की जानकारी प्राप्त करना

क्र.	विवरण	हां	नही	योग
1	क्या आप का विवाह लॉक डाउन में स्थगित हुआ है	60 प्रतिशत	40 प्रतिशत	100 प्रतिशत

अध्ययन के दौरान फोन के माध्यम से लिए गए साक्षात्कार से जानकारी प्राप्त हुई है कि लॉक डाउन के कारण 60 प्रतिशत लोगों का विवाह स्थगित किया गया है। साक्षात्कार में उत्तरदाताओं ने उत्तर दिया कि देश में होने वाले लॉक डाउन के कारण हमने हमारे समस्त विवाह के आयोजन को स्थगित कर दिया है।

वर्तमान समय में भारत में लॉक डाउन है अतः इस लॉक डाउन के कारण समाज में सादगी से 20 से 50 लोगों की उपस्थिति में विवाह सम्पन्न हो रहे है, जिसकी वजह से विवाह में होने वाले अनावश्यक खर्च से बचा जा रहा है, लेकिन साथ ही साथ विवाह से जुड़े व्यवसायों का बड़ा नुकसान हुआ है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध–पत्र से स्पष्ट होता है कि भारत में हुए लॉक डाउन के कारण विवाह के आयोजन में परिवर्तन आया है यह परिवर्तन मध्ययम वर्ग एवं निम्न वर्ग के परिवारों के लिए सकारात्मक है क्योंकि शासन के आदेश के कारण विवाह के आयोजन में अनावश्यक भीड़ को एकत्रित नही करना है जिसके कारण विवाह समाहरो बहुत ही सादगी से सम्पन्न किये जा रहे है यदि ये सादगी भविष्य में भी अपनाई जाती है तो सादगी से विवाह करना आगे चलकर एक परम्परा बन जाएगी जिसके कारण कोई भी पिता को बेटी बोझ नही लगेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ओझा, एस. के, "यू.जी.सी.नेट, समाजशास्त्र", अरिहन्त पब्लिकेशन लिमिटेड, मेरठ।*
2. *बघेल डी .एस, "नातेदारी, विवाह और परिवार का समाजशास्त्र", कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।*
3. *तोमर, देवेन्द्रपाल सिंह, 2005–"सामाजिक शोध एवं साख्यिकी", विश्व भारती पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली।*
4. *शर्मा, विरेन्द्र प्रकाश, 2013–रिसर्च मेथाडालॉजी, 8वां संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।*
5. *के.एम. कपाडिया, भारत में विवाह एवं परिवार, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।*
6. *कपाडिया, भारत में विवाह एवं परिवार, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।*
7. *htts://www.bbc.com*

IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429
ISSN (Print) 2581-XXXX

IJARSCT
Impact Factor: 4.819

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Volume 1, Issue 1, January 2021

पर्यावरण संतुलन एवं धारणीय कृषि–'भारत के भौगोलिक सामरिक संदर्भ में

श्रीमति मीना ठाकरे

(सहायक प्राध्यापक, भूगोल)

शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा, म.प्र (भारत)

डॉ. मनीता कौर विरदी

(सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान),

शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा,म.प्र (भारत)

शोध सारांशः

पृथ्वी के चारो ओर के आवरण को पर्यावरण कहते है, और यही पर्यारण पृथ्वी को चारों ओर से ढककर हमारी रक्षा करता है। इस तरह प्रकृति हमारी हर छोटी–बड़ी आवश्यकताओं को पूरा करती है। प्रकृति इस बात का भी ध्यान रखती है कि पृथ्वी पर हो रही हर छोटी बडी प्रकिया में संतुलन बना रहे। यदि प्रकृति के स्वरूप के साथ छेडछाड की जाती है, तो इसका परिणाम हमें पर्यावरण में साफ तौर पर दिखाई देता है। ढोस बर्फ पिघलकर जल का रूप धारण कर लेती है। जल वाष्प बनकर बादल बन जाता है,फिर बादलों से वर्षा होकर पुनः जल धरती में आ जाता है इसी तरह प्रकृति एक सुदंर संतुलन बनाए रखती है। प्रकृति के ऐसे ही वरदानो और रहस्यों का कृषि क्षेत्र में उपयोग कर उत्पादन को उचित स्तर पर टिकाऊ रूप से प्राप्त करना है। इसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार की खादें, जैव उर्वरक हरि खाद ,कम्पोस्ट खाद, गोबर की खाद आदि का प्रयोग किया जाता है। टिकाऊ खेती वह है जो कि हमारी मिट्टी और जलवायु के अनुसार हो और हमारे पास उपलब्ध संसाधनों द्वारा हो तथा जिसमें सभी साधनों का संतुलित प्रयोग कर सदुपयोग हो, ताकि वे लम्बें समय तक उपलब्ध हो सके।

पारिभाषिक शब्दावली–पर्यावरण, उर्वरक संतुलन, टिकाऊ विकास

प्रस्वावना–

सतत् कृषि, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं जीवों और उनके पर्यावरण के बीच संबंधों के अध्ययन की समझ पर आधरित है। कृषि उत्पादकता को सतत् बनाना प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा एवं जल की गुणवत्ता और उपलब्धता पर निर्भर करता है। कृषि विकास को, समुचित स्थिति विशिष्ट उपायों के माध्यम से इन दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सतत प्रयोग को बढावा देकर संधारणीय बनाया जा सकता है। भारतीय कृषि का 60 प्रतिशत वर्षा सिंचित क्षेत्र का कुल खाघान्न उत्पादन में 40 प्रतिशत का योगदान है। इस प्रकार वर्षा सिंचित कृषि जोतों के विकास के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण देश में खाघान्नों की बढती हुई मांग को पूरा करने की कुंजी है।

उदेश्य–

- समुचित मृदा और नमी संरक्षण उपायों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना।
- एकीकृत/संयुक्त कृषि प्रणाली को बढ़ावा देना ताकि अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके।
- जेव उर्वरकों के प्रयोग आदि के आधार पर मृदा को स्वस्थ बनाना।
- कुशल जल प्रबंधन के माध्यम सेजल संसाधनों का इष्टतम उपयोग करना।
- फसल चकण को अपनाना।
- वर्मीकम्पोस्ट व हरित खाद के प्रयोग को बढ़ावा देना
- कृषि वानिकी जैसी उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाना।

अध्ययन का क्षेत्र– प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र भारत के भोगोलिक सामरिक संदर्भ में पर्यावरण संतुलन एवं धारणीय कृषि के विश्लेषण पर आधारित है।

आंकडो का संकलन– प्रस्तुत शोधपत्र द्वितीयक संमकों पर आधारित है। इस शोध पत्र को पुस्तकालय अध्ययन, समाचार पत्र–पत्रिकाओ, इंटरनेट, भारत सरकार के विभिन्न संस्थाओं के प्रकाशन द्वारा आंकडे प्राप्त कर तथ्य परक बनाया गया है।

शोध प्रविधि–प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रंथालय पद्धति का उपयोग किया गया।

टिकाऊ/सतत/धारणीय कृषि की आवश्यकता– द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए है। जिसमें नई प्रौघोगिकी, सरकार की अच्छी नीतियां, रासायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग, मशीनीकरण आदि मुख्य आधार है। आज किसान ज्यादा उत्पादन के लिए अधिककीमती बीज, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग कर रहे है। किसानों द्वारा उन्नत विधियों को प्रयोग में लाने से कृषि उपज में वृद्धि हु है तथा लागत में कमी आई है और अनेक लाभदायक परिणाम सामने आए है। जैसे भारत के पंजाब–हरियाणा मैदानी क्षेत्रों में गेंहु उत्पादन में आई अचानक वृद्धि ने हरित कांति का रूप ले लिया है। इसी तरह राजस्थान का गंगानगर जिला, उत्तरप्रदेश का पश्चिमी क्षेत्र में भी अचानक उत्पादन वृद्धि हुई, परंतु लाभदायक परिणामों के साथ ही कृषि के क्षेत्र में अनेक हानियां भी हुई ।

उर्वरकों के अधिक प्रयोग से फसल में अधिक पानी की आवश्यकता बढी है। अतः फसल में जलापूर्ति के लिए ट्यूबेल खोदे गये, नहरें बनाई गई । इससें समय पर सिंचाई तो हुई,लेकिन कई क्षेत्रों में भू–जल स्तर अत्यधिक नीचे पहुंच गया। उर्वरकों के प्रयोग से कीट नाशक के अत्यधिक उपयोग से किसान कर्ज के बोझ में दबते चले गए। मशीनीकरण के दौर में बार –बार सूखी भूमि में टैक्टर की जुताई से भूमि में उपलब्ध ह्यूमसभी नष्ट होते चले गए। तथा मृदा अपरदन की समस्या से उपरी उपजाऊ मृदा का विनाश भी हुआ हैद्य ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक असमानताओं में वृद्धि हुई है। अतः इन समस्याओं से उबरने हेतु कृषि में जैविक विधियोंका प्रयोग एवं संसाधनों का प्रबधन कर कृषि को धारणीय बनाने की आवश्यकता है।

टिकाऊ कृषि प्रबंधन पिछले कुछ सालों में पूरे विश्व में कृषि क्षेत्र में हुए आधुनिकीकरण एवं उर्वरकों के उपयोग से मृदा का प्राकृतिक स्वास्थ्य खराब हो रहा है। अतः रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक खाद जैसे–गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, हरि खाद,खल्ली की खाद, शैवाल की खाद आदि के प्रयोग पर बल दिया जाना चाहिए। धारणीय कृषि के लिए खेतों से अलग किए गए खरपतवारों कों जमीन पर फैलाकर पलवार बनाया जाना चाहिए। मृदा प्रबंधन हेतु मृदा को कूषि का कीमती घटक माना जाता है अतः धारणीय खेती हेतु इसकी सुरक्षा व पोषकता को बनायें रखना अति आवश्यक है। जिससे दीर्घकाल तक उत्पादन प्राप्त हो सके। समेकित कीट प्रबंधन द्वारा रसायनों का प्रयोग तभी किया जाए, जब आवश्यक हो। उन्नत व टिकाऊ कृषि के लिए फसल चक को भी अपनाना आवश्यक है जिसमें आधीफसलें अधिक जल प्राप्त करने वाली व आधी फसलें कम जल चाहने वाली है। इस धरती में जल का संतुलन भी बना रहेगा और कृषि को धारणीय आधार भी प्राप्त होगा।

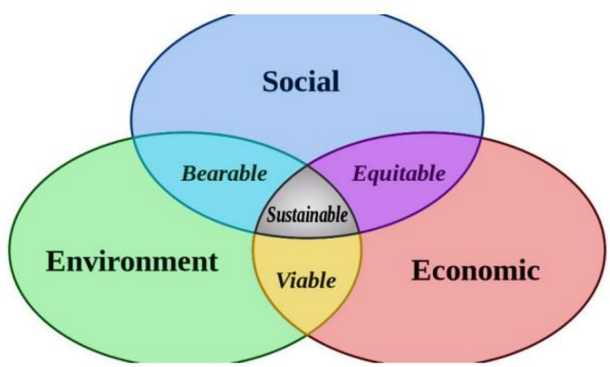

निष्कर्व– अततः आज के युग में कृषि कार्य हेतु जरूरी खाद्य व उर्वरकों तथा कीटनाशकों के बढतें प्रभाव ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया। पिछलें कुछ वर्षो की घटनाओं पर दृष्टि डालें तों कूषि में कीटनाशक व खरपतवारनाशक रासायनों के प्रयोग से वर्तमान कृषि उत्पदान तो बड़ा है, किन्तु मानवीय स्वास्थ, जलवायु, पर्यावरण, मृदा आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है, जिससे पर्यावरण खतरा बढ़ गया है। अतः जैविक विधियों को अपनाकर पर्यावरण एवं कृषि को सुरक्षित व संरक्षित कियाजा सकता है। तथा कृषि में निवेश–लागत को कम करके आने वाली भावी पीढियों के लिए धारणीय बनाया जा सकता है।

सुझाक–

1. धारणीय कृषि हेतु सर्वप्रथम अपनी पंरम्पराओं पुराने अनुभवों एवं तरीकों को पुनः एक बार समझना होगा, और उसमें वैज्ञानिक ज्ञान को शामिल कर कृषि उत्पादकता बढानी होगी।
2. वर्तमान में खाद्य उत्पादन के पर्याप्त संसाधनों की खोज करना चाहिए।
3. पृथ्वी के संसाधनों का दोहन किये बिना स्वस्थ आहार तक सबकी पहँच सुनिश्चित करना आवश्यक है।
4. खाद्य फसलों को पर्यावरण हितैषी बनाकर गरीबी उन्मूलन की दिशा में आगे बढाना चाहिए।
5. कम खर्चीले और प्रभावी साधन अपनाए जाए तथा पर्यावरण एवं वातावरण को दूषित होने से रोका जाए।
6. उर्जा के नवीनीकरणीय स्त्रोतों को अपनाते हुए सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जाए।

संदर्भ–

- के. यनिकंदन 'भारतीय वानिकी' जेन फबरिलशर्स, नई दिल्ली
- हुसैन गाजिद, 'पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी'' एक्सेस पब्लिकेशन
- तिवारी दीनानाथ 'पर्यावरण सतत विकास एवं जीवन"
- पत्रिका 'भूगोल और आप'

नाट्यशास्त्र में वर्णित अवनद्ध वाद्यों का विस्तृत परिचय

ऋतु सोनी
शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

भारतीय संगीत एवं अवनद्ध वाद्यों का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से प्रारंभ होता है। मानव को सर्वप्रथम (स्वर ज्ञान की अपेक्षा) लय का ही ज्ञान हुआ था। प्रागैतिहासिक एवं वैदिक काल से ही चर्माच्छादित ताल वाद्यों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है किन्तु उन वाद्यों की बनावट तथा उनके वादन संबंधी विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं है। शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त सबसे प्रथम अवनद्ध वाद्य के रूप में मृदंग का ही उल्लेख मिलता है। भरत मुनि कृत ''नाट्यशास्त्र'' यह ग्रंथ भारतीय शास्त्रीय संगीत में ऐतिहासिक दृष्टि में सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में तथा समय के सम्बन्ध में संगीताचार्यों में मतभेद हैं तथापि प्राप्त जानकारी के आधार पर इस ग्रंथ का रचनाकाल दूसरी तीसरी सदी माना जाता है। इस ग्रंथ के 33 वे अध्याय (अवनद्धातोद्य विधानाध्याय) में अवनद्ध वाद्यों के उत्पत्ति, बनावट, वादन एवं अन्य आवश्यक परिभाषाओं का विस्तृत विवेचन किया है। भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में जिन वाद्यों का उल्लेख एवं वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं – त्रिपुष्कर, मृदंग (आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्य) पणव तथा दर्दुर।

पुष्कर :– नाट्यशास्त्र में भरत ने पुष्कर का विस्तृत विवेचन किया है। इस वाद्य के उत्पत्ति के संबंध में भरतमुनी लिखते हैं –

''किसी अनध्याय के दिन जब आकाश में बादल छाये हुए थे तभी स्वाति मुनि जल लाने के लिए एक सरोवर पर गये । जब सरोवर में जल लेने उतरे तो (इन्द्र ने पृथ्वी को एक बड़ा सागर बना डालने के लिए) जोरों से मूसलाधार वृष्टि आरंभ हुई। तब उस सरोवर में वायु वेग से गिरने वाली मेघवृष्टि के जलबूंदों के द्वारा (सरोवर के) कमल पत्रों पर जोरदार एवं मधुर ध्वनि को सुनते हुए (जो वर्षा की बूदों से उद्भुत थी, एक आश्चर्य मानकर) उस पर ध्यानपूर्वक विचार आरम्भ किया। पत्तों पर होने वाली उस सुन्दर और हृदयग्राही ध्वनि के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रकारों में विभाजन का गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए अपने आश्रम को लौट आये। आश्रम में लौटकर विश्वकर्मा की सहायता से मुनि ने मृदंगों का और फिर पुष्कर, पणव और दर्दर, वाद्यों का निर्माण कर डाला। फिर देवगणों के दुंदुभी वाद्य को देखते हुए मुरज आलिंग्य, आंकिक, उर्ध्वक जैसे वाद्यों का निर्माण किया (33/5 से 11) पुष्कर शब्द का मुनि ने अलग–अलग अर्थों में उल्लेख किया है। पुष्कर का मृदंग के रूप में, पुष्कर का वामपुष्कर एवं दक्षिण पुष्कर कहकर बाये एवं दाये मुख के रूप में एवं मर्दल–मुरज का भी पुष्कर रूप में उल्लेख किया है। इस कारण वास्तव में पुष्कर वाद्य क्या था यह स्पष्ट नहीं हो पाता है। तथापि ''त्रिपुष्कर'' के रूप में भरत ने जिन तीन अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है उससे उन तीन मृदंग प्रकारों, जो भरत ने बताये हैं – हरीतकी, यवाकृति, गोपुच्छाकृति का वर्णन प्राप्त होता है। ये तीन वाद्य आंकिक (हरीतकी). उर्ध्वक (यवाकृति) तथा आलिंग्य (गोपुच्छाकृति) थे। इन तीन अथवा इनमें से दो वाद्यों का वादन मार्जना के अनुसार एक साथ किया जाता था। इन (त्रि) पुष्कर वाद्यों का वर्णन इस प्रकार है –

आंकिक :– यह वाद्य वर्तमान के मृदंग या पखावज के अनुसार होकर उसे भी लिटाकर बजाया जाता था। यह अधिकतर लकड़ी का बनाया जाता था। भरतकाल में मृदंग माटी के भी बने होते थे। इसकी लम्बाई 3½ बिलात होकर यह मध्य में अधिक चौड़ा रहता था। बीच में से खोखला होकर इसके दो मुख होते थे। दोनों मुखो का व्यास 12 अंगुल होता था।

दोनों मुखों पर चमड़े (पुड़ी) मड़े रहते थे। यह चमड़ा गाय या बैल का दोषरहित, सफेद, चमकदार होता था। पुड़ी के चमड़े में छेद करके डोरी या बद्धी को इनमें से डालकर दोनों पुड़ियों को कसा जाता था। बद्धी को दो के बाद तीसरी को बीच में से निकाला जाता था। डोरिया संख्या में 10 होती थी। नये आंकिक वाद्य के पुड़ी (चमड़े) पर गाय के घी के साथ तिल को पीसकर उस मसाले का लेपन किया जाता था। आंकिक के दोनों मुखों पर आवश्यकतानुसार अलग–अलग स्वर स्थापना की जाती थी। इसके साथ ही उर्ध्वक के ऊपर आंकिक के स्वर स्थापना के आधार पर स्वर स्थापना की जाती थी जिन्हें मार्जना कहते थे।

उर्ध्वक :– यह वाद्य भी लकड़ी का बना होकर बीच में से खोखला होता था। इसके एक ही मुख होता था।

इसको खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊंचाई 4 विलात तथा मुख का व्यास 14 अंगुल होता था। वर्तमान बाये के अनुसार इसके मुख पर लगे चमड़े (पुड़ी) को डोरी से कस दिया जाता था। पुष्कर वाद्य के स्वर स्थापना में इसकी यह विशेषता थी कि इसे पंचम स्वर में मिलाया जाता था। अन्य बनावट चमड़ा, लेपन आदि आंकिक के अनुसार ही होती थी।

आलिंग्य :– यह वाद्य भी लकड़ी का बना होकर बीच में से खोखला होता था। इसके एक ही मुख होकर इसे खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊंचाई 3 बिलात तथा मुख का व्यास आठ अंगुल का होता था। इसके ऊपर चमड़े की पुडी लगाई जाती थी जिसे (बाये के अनुसार) डोरी या वादी से कस दिया जाता था। इस वाद्य को खर्ज स्वर में मिलाया जाता था। अन्य बनावट चमड़ा, डोरी, लकड़ी लेपन आदि आंकिक के समान ही होती थी।

शारंगदेव ने भरत कालीन पुष्कर वाद्य को अव्यवहारिक बताकर इसका वर्णन नहीं किया है। (रत्नाकर 6/1027)

मृदंग :– भरत ने अपने ग्रंथ (नाट्यशास्त्र) में मृदंग का अलग वर्णन न करके त्रि–पुष्कर के रूप में वर्णन किया है। भरत कालीन आंकिक वाद्य (मृदंग), शारंग देव कालीन मृदंग तथा वर्तमान मृदंगम् या पखावज के समान ही था। अतः भरत कालीन आंकिक के वर्णन को हम मृदंग का वर्णन ही कहेंगे।

शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' के वाद्याध्याय (6ठा अध्याय) के श्लोक 1026 में मर्दल को ही मृदंग तथा मुरज कहा है।

पणव :– पणव भी भारत का अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिससे कि पणव को वैदिक कालीन वाद्य समझा जा सकता है। पणव का वर्णन शारंगदेव के ग्रंथ रत्नाकर में नहीं है। महर्षि भरत ने मृदंग के बाद अवनद्ध वाद्यों में पणव को ही महत्वपूर्ण वाद्य बताया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पणव का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में हुआ है। वाल्मिकी रामायण के सुंदरकाण्ड (11–43) और युद्ध–काण्ड (44–92), उसी प्रकार महाभारत के अरण्यपर्व (132/19) तथा आद्योतपर्व (7/16) में पणव वाद्य का कई स्थानों पर उल्लेख है। महर्षि भरत ने तो इस वाद्य की रचना स्वाति मुनि द्वारा बताई है। इस प्रकार पणव की प्राचीनता मृदंग के समान सिद्ध होती है।

महर्षि भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र के अध्याय 33 श्लोक 247–249 में पणव की रचना (बनावट) का विवेचन किया है। इसके अनुसार पणव की लम्बाई 16 अंगुल थी। यह लकड़ी से बना होकर बीच में से खोखला रहता था। इसके दो मुख होकर उनका व्यास 5 अंगुल रहता था। खोड़ के बीच का व्यास 8 अंगुल होता था। खोड़ को पोला करने के बाद मुखो पर काठ की मुटाई 1/2 अंगुल होती थी। खोड़ बीच में 4 अंगुल व्यास में पोला रहता था। पणव के दोनों मुखो को बारीक, शुद्ध, साफ चमड़ी द्वारा ढक दिया जाता था। इन चमड़ियों में छेंद करके दोनों मुखो की चमड़ियों को सूत की डोरी द्वारा आपस में कसकर बाँध दिया जाता था। इन डोरियों का बन्धन इस प्रकार किया जाता था कि इन्हें ऊंचे या नीचे स्वर के अनुसार बजाने के लिये तनाव या ढील मिल सके।

दर्दुर या दर्दर :– महर्षि भरत ने दर्दुर को अवनद्ध वाद्यों में अंग–वाद्य मानकर इसे पर्याप्त महत्व दिया है। भरत के पूर्ववर्ती आचार्यों ने इस वाद्य की महत्ता स्वीकार नहीं की थी। यह वाद्य घट के अनुसार होता था। घट का व्यास 16 अंगुल प्रमाण का तथा मुख का व्यास 12 अंगुल प्रमाण बताया है। घट के परत की मुटाई तथा मुख की किनार मोटी बताई है। मुख पर चमड़े की पुडी लगाई जाती थी जिसका विस्तार मुख की अपेक्षा बड़ा होता था। पुडी के चमड़े में किनार पर छेद किये जाते थे। चमड़े को सुतली द्वारा, बने छेदों से पिरो कर घट से कस दिया जाता था। इसमें विलेपन (स्याही) होने का प्रमाण नहीं मिलता है। चमड़ा अन्य वाद्यों के समान ही नया, दोष रहित, चिकना, कमाया हुआ, स्वच्छ, सफेद, चमकदार बताया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. डॉ. मनोहर भालचन्द्रराव मराठे – 'ताल–वाद्य शास्त्र'
2. डॉ. अजय कुमार – 'पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियाँ'
3. प्रो. डॉ. जमुना प्रसाद पटेल – 'ताल वाद्य परिचय'
4. डॉ. शोभा कुदेशिया – 'प्राचीन ताल के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान तबला वादन'
5. डॉ. सुनीता श्रीवास्तव – 'तबला वादन कला की तकनीकी एवं सौन्दर्य पक्ष।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020
2020

पंचकोषों का आध्यात्मिक व वैज्ञानिक स्वरूप

रचना जैन
शोध छात्रा, दर्शन विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)

मानव अस्तित्व को दो भागो शरीर और चेतना से बना है। शरीर पंच तत्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि) से निर्मित है। दूसरा पक्ष चेतना जो शरीर की अपेक्षाकृत अधिक सामर्थ्यवान एवं सूक्ष्म है। मनुष्य की चेतना पाँच आवरणों से लिपटी हुई है ये आवरण चेतना के पाँच दिव्य कोष है।

ये पंच कोष हैं :–

1. अन्नमय 2. प्राणमय 3. मनोमय 4. विज्ञानमय
5. आनंदमय

(1) अन्नमय कोष

(अ) आध्यात्मिक स्वरूप :– प्रथम कोष अन्नमय कोष है। अन्न का तात्विक अर्थ है – पृथ्वी का रस। पृथ्वी से पैदा होने वाली जल, अनाज, फल, सब्जी, घास आदि के रस से रज वीर्य बनते है और इन्ही से इस शरीर का निर्माण होता है। अन्न द्वारा ही शरीर की वृद्धि और पुष्टि होती है और अंत में यह पृथ्वी में ही मिल जाती है। इसी प्रधानता के कारण अन्नमय कोष कहलाता है।

''पहला कोष या अनुभूति का स्तर भौतिक शरीर या अन्नमय कोष है। अन्नमय का अर्थ है अन्न से बना हुआ। यह अस्तित्व का स्थूल स्तर है और अन्न जल एवं वायु पर इसकी निर्भरता के कारण इसका उल्लेख अन्नमय कोष के रूप में किया जाता है. यह कोश प्राण पर भी निर्भर रहता है। जहां भोजन के बिना छः दिन और वायु के बिना छः मिनट जीवित रहा जा सकता है वहीं प्राण के निकलते ही जीवन समाप्त हो जाता हैं।''[1]

''मनुष्य शरीर की उत्पत्ति का क्रम : सबकी आत्मा अन्तर्यामी परमात्मा से पहले आकाश तत्व उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु तत्व, वायु से अग्नि तत्व, अग्नि से जल तत्व, जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई, फिर पृथ्वी से नाना प्रकार की औषधियाँ अनाज के पौधे हुए, उन औषधियों से मनुष्यों का आहार अन्न उत्पन्न हुआ। उस अन्न से यह स्थूल मनुष्य शरीर रूप पुरूष उत्पन्न हुआ।''[2]

(ब) वैज्ञानिक स्वरूप – वैज्ञानिक भाषा में अन्नमय कोष को 'मैटर' कहा जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार अन्नमय कोष हार्मोन्स एवं एन्जाइम के रूप में क्रियाशील रहता है। मानव चेतना का स्थूल शरीर अन्नमय कोष इन्द्रियों, हड्डी व मॉंस आदि से निर्मित होता है। मृत्युपरांत यह शरीर तो नष्ट हो जाता है, परन्तु अन्नमय कोष नष्ट नही होता है। अन्नमयकोश शरीर का संचालक, कारण, उत्पादक, उपभोक्ता आदि से पृथक सूक्ष्म रूप है। अन्नमय कोष की इसी सूक्ष्मता के कारण चिकित्सा पद्धितियाँ द्वारा केवल हाड़मॉंस, त्वचा आदि के विकारों के कारण उत्पन्न रोग ठीक तो हो जाते है, परन्तु अन्नमय कोष के गहन अवयवों की विकृति से उत्पन्न रोगों को ठीक नही कर पाती है।

मानव चेतना के प्रत्यक्ष स्थूल शरीर का रूप, रंग व आकृति अन्नमय कोष की स्थिति के अनुसार ही होती है। शरीर अन्न से ही निर्मित होता है तथा वृद्धि को प्राप्त करता है। अन्न का अन्नमय कोष पर स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीनों रूपों में प्रभाव पड़ता है। स्थूल में स्वाद और भार, सूक्ष्म में प्रभाव व गुण, कारण में संस्कार आते है।

अन्नमय कोष के विकारो को उचित आहार, संयम, चिकित्सा, शल्यक्रिया, व्यायाम, मालिश आदि से स्वस्थ रखा जाता है। इसकी परिष्कृति के लिए उपवास, आसन, सत्वशुद्धि और तपश्चर्या आदि मुख्य साधन है।

''पृथ्वी लोक का आश्रय लेकर रहने वाले जो कोई भी प्राणी है वे सब अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। फिर अन्न से ही जीते है और अंत में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अतः अन्न ही सब भूतों में श्रेष्ठ है। इसलिए ये सर्वोशध रूप कहलाता है। जो साधक अन्न की ब्रह्म भाव से उपासना करते हैं वे अवश्य समस्त अन्न को प्राप्त कर लेते है। क्योंकि अन्न ही भूतों में श्रेष्ठ है। इसलिए ये सर्वोशध नाम से कहा जाता है। अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर अन्न से ही बढ़ते हैं। वह प्राणियों द्वारा खाया जाता है तथा स्वयं भी प्राणियों को खाता है। इसलिए "अन्न" इस नाम से जाना जाता है। उक्त वर्णन का तात्पर्य यह हैं कि समस्त प्राणियों के जन्म, जीवन एवं मरण स्थूल शरीर के सम्बन्ध से होते है। स्थूल शरीर की उत्पत्ति

अन्न से ही होती है, वही अन्न से वृद्धि प्राप्त करता है, जीवित रहता है और अन्न के उद्‌गम स्थान पृथ्वी में ही विलीन हो जाता है। पर शरीरों में रहने वाला जीवात्मा विलीन नही होता है। प्रत्युत् मरण–काल में प्राणों के साथ इस शरीर से उत्क्रमण कर दूसरे शरीर में चला जाता है। इस प्रकार अन्न की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है।''[3]

(2) प्राणमय कोष

(अ) आध्यात्मिक स्वरूप :– प्राणमय कोष आत्मा का द्वितीय आवरण है। जो ऊर्जा, स्फूर्ति, उत्साह का कार्य करता है। वह जीवन शक्ति व सामर्थ्य का प्रतीक है। स्थूल अन्नमय कोष के कण कण में प्राण ऊर्जा संव्याप्त है।

''अन्न के रस से बनें, स्थूल शरीर से भिन्न उस स्थूल शरीर में रहने वाला एक और शरीर है जिसको "प्राणमय" भी कहा जाता है। उस प्राणमय से अन्नमय शरीर पूर्ण है। स्थूल अन्नमय शरीर की अपेक्षा प्राणमय शरीर सूक्ष्म होने के कारण यह अन्नमय शरीर के अंग–अंग में व्याप्त है। अतः इसी कारण से प्राणमय शरीर पुरूष के आकार का ही है। यह स्वतः पुरूषाकार नहीं है। प्रत्युत् अन्न रसमय पुरूषाकार के अनुरूप साँचे में ढली हुई प्रतिमा के समान यह प्राणमय कोष भी पुरूषाकार हैं।''[4]

अन्नमय कोष के भीतर प्राणमय कोष विद्यमान है इस प्राणमय कोष में पाँच कर्मेन्द्रियाँ वाक्, पाणि, पाद, पायु व उपस्थ और पाँच प्राणो का मिलित संगठन है। इसमें पाँच उपप्राणों का भी समावेश है।

पाँच प्राणो का कार्य

1. **प्राण** :– इस का स्थान मुख से हृदय तक है। इसका कार्य नासिकारंध्रो के द्वारा वायु को अंदर व बाहर ले जाना।
2. **अपान** :– इस का स्थान नाभी से पाद तल तक होता है। गुह्यद्वार से मल को, मूत्राशय से मूत्र को, शुक्राशय से शुक्र को ढकेल कर बाहर निष्कासित करना इसी का कार्य है। स्त्रियों में मूत्र तथा शोणित एवं गर्भस्थ शिशु को ढकेल कर बाहर कर देना इसी का कार्य है।
3. **समान** :– इस का स्थान नाभी से हृदय तक है। इसका मुख्य कार्य अन्न को पचाना और उससे बने रक्त को शरीर के सभी भागो में पहुंचाना हैं।
4. **उदान** :– इसका स्थान कण्ठ से मस्तक तक है। इसका मुख्य कार्य शरीर को उन्नत बनाये रखना, अमाशय से विकृत अन्न को वमन द्वारा बाहर निकाल देना, शब्दोच्चारण संगीत गायन आदि है।
5. **व्यान** :– संपूर्ण शरीर में व्याप्त है। सूक्ष्म ज्ञान वाहक, क्रियावाहक, वातवाही एवं रक्तवाही नाड़ी तंतुओं को कार्यक्षम बना देना, उसे सक्रिय बनाऐ रखना, इसका कार्य है।

उपप्राणों के कार्य

1. **नाग वायु** :– इस का स्थान कंठ से मुख तक हैं। डकार और छींक लाना आदि इसका कार्य है।
2. **कूर्मवायु** :– इसका स्थान नेत्र है तथा पलको को खोलना व बंद करना कार्य है।
3. **कृकलवायु** :– इसका स्थान कण्ठ है तथा इसका कार्य है क्षुधा, तृशा, उत्पादक, संवर्द्धक व जृम्भा लाना।
4. **देवदत्त वायु** :– मस्तक स्थानीय है। यह तंद्रा व निद्रा उत्पादक है।
5. **धनंजय वायु** :– संपूर्ण शरीर व्यापी है। यह शरीर को पुष्ट व कार्यक्षम बनाये रखता है। मृत्यु के बाद भी यह शरीर में रहता है और मृत्यु के पश्चात शरीर को फुला देना इसी का कार्य है।

तैतिरीय उपनिषद की ब्रम्हानन्द वल्ली में कहा गया है

तस्माह्वाएतस्मादन्नरसमयात। अन्योअन्तर प्राणमय।
तेनैश पूर्ण। स वा एश पुरूषविध एव।
तस्य पुरूषविधताम। अन्वयं पुरूषविधः।।

वस्तुतः भोजन के तत्व से बने इस भौतिक शरीर के अतिरिक्त एक अन्य स्वनिर्मित आंतरिक प्राण उर्जा है जो इस भौतिक शरीर में व्याप्त है। जिस प्रकार मांसल शरीर का आकार एक व्यक्ति के समान होता है ठीक उसी प्रकार इस प्राणिक शरीर का आकार भी एक व्यक्ति के समान होता है।

प्राण की महिमा :– जितने भी मनुष्य, देवता, पशु आदि शरीरधारी प्राणी है, वे सब प्राण के आधार पर ही

जीवित हैं। प्राण के बिना किसी के शरीर का कोई अस्तित्व ही नहीं है। प्राण ही सबका जीवन है। प्राण केवल परिच्छिन्न रूप से अन्नमय कोष से ही आत्मवान नहीं है, प्रत्युत् मनुष्यादि जीव उसके अन्तर्वर्ती सम्पूर्ण पिण्ड में व्याप्त प्राणमय कोष से भी आत्मवान हैं। प्राण को सर्वायुश कहा जाता है क्योंकि प्राण–प्रयाण के अनन्तर मृत्यु हो जाना ही है। प्राण की उपासना एवं फल – अतः जो लोग इस बाह्य असाधारण व्यावृत रूप से अर्थात बाँटे हुयें अन्नमय कोष से आत्म बुद्धि को हटाकर इसके अन्तवर्ती (सम्पूर्ण इन्द्रियों में अनुगत अर्थात व्याप्त) प्राणमय कोष अर्थात प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना करते हैं वे इस लोक में पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। अर्थात प्रारब्ध वश प्राप्त हुई आयु से पूर्व अपमृत्यु से नही मरते। प्रश्नोपनिषद् के तीसरे प्रश्न के ग्यारहवें मंत्र में भी कहा गया हैं कि "जो मनुष्य इस प्राण के तत्व को जान लेता है, वह स्वयं अमर हो जाता है और उसकी प्रजा नष्ट नही होती।"[5]

(ब) वैज्ञानिक स्वरूप :– ''आचार्य श्रीराम शर्मा प्राणमय कोष के आधारभूत तत्व प्राण को ऐसी सजीव विद्युत शक्ति मानते है, जो समस्त संसार में वायु, प्रकाश, तथा ईश्वर की भांति व्याप्त है। उन्होने प्राणमय कोष की संरचनात्मक विवेचना करते हुए कहा है कि ''मनुष्य शरीर जिन सूक्ष्म कणों से विनिर्मित है, उन्हे कोशिका कहते है। संपूर्ण शरीर में कोशिकाओं का जाल है। कोशिका को दो भागो में बॉटा गया है एक को कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) तथा दूसरे को नाभिक (Nucleus) कहा गया है। कोशिका द्रव्य को कोशिका का रसायन और नाभिक को संस्कार भाग कह सकते है'', जीवन की प्रमुख चेतना इसी नाभिक में प्रकाश, ताप, चुम्बकत्व, विद्युत, ध्वनि, और गति के रूप में विद्यमान है। इस तरह शरीर के स्थूल अणुओं में व्याप्त इस दूसरे जाल की सम्मिलित इकाई का नाम ही सूक्ष्म शरीर है।''[6]

भारतीय योग विज्ञान के अनुसार इस तत्व को प्राण और उससे निर्मित सूक्ष्म शरीर को प्राणमय कोष कहा गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार ''प्राणमय कोष मानवीय जैव विद्युत के रूप में क्रियाशील होता है। उनके अनुसार यह सूक्ष्म शरीर ऐसे पदार्थो से निर्मित है जो इलेक्ट्रानो से ठोस पदार्थो से भिन्न स्तर है और गतिशील भी। किर्लियान फोटोग्राफी की सहायता से इसकी सत्ता को वैज्ञानिक रूप से अनुभव किया जा सकता है।''[7]

सूक्ष्मदर्शी प्राणिक शरीर को रंगीन चमकीले बादल या आभा के समान शरीर के चारों ओर भौतिक शरीर के अन्दर से निकलता हुआ दिखता है। उच्च वोल्टेज वाले किर्लियन कैमरे द्वारा इसके फोटो लिए जा सकते है। प्राणिक शरीर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है अतः इसके विखण्डन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता हैं। इसीलिए काटे गये अंग के उर्जा क्षेत्र को कुद्द देर बाद तक भी अनुभव किया जा सकता है। उर्जा का यह स्रोत क्षतिग्रस्त हुए अंगो को स्वस्थ होने के बाद अपने मूल आकार मे वापस आने में मदद करता हैं।

''प्राणमय कोष जो व्यक्ति का उर्जा क्षेत्र होता हैं। इसमें अनुभूति का स्तर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है। यह शरीर में व्याप्त होकर उसका सम्भरण करता है। इस कोष का पोषण इससे अधिक सूक्ष्म कोष करते है। भौतिक एवं प्राणिक शरीर मिलकर मानव शरीर की रचना करते हैं जिसे आत्मपुरी या आत्मा की नगरी कहा जाता है। ये उच्चतर शरीरों की अनुभूति के लिए पात्र का दूसरा है प्राणमय कोष जो व्यक्ति का उर्जा क्षेत्र होता हैं।

मनुष्य में जो चेतना, स्फूर्ति, तत्परता आदि दृष्टिगोचर होते है, वह उसमें विद्यमान प्राणशक्ति की ही प्रतिक्रियाएँ है। इसके कम होने पर व्यक्ति निस्तेज व दुर्बल पड़ने लगता है। ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी एवं तपस्वी व्यक्तियों की प्रखरता की संरचना अन्य मनुष्यों की ही भांति होती है, परन्तु प्राणायाम, बंध, मुद्रा आदि योग साधनों के अभ्यास से प्राणमय कोष का जागरण व परिष्कार किया जा सकता है।

(3) मनोमय कोष

(अ) आध्यात्मिक स्वरूप :– पंच कोषो में तीसरा 'मनोमय कोष' है। तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है कि अन्नमय कोष और प्राणमय कोष दोनों ही क्रिया प्रधान है। प्राणमय कोष से प्रेरित अन्नमय कोष के समस्त व्यापारों का संचालक मनोमय कोष है इसलिए इसे प्राणमय कोष की 'शारीरिक आत्मा' कहा गया है।[9]

ज्ञानेन्द्रियों तथा मन मिलकर मनोमय कोष का निर्माण होता है। यह शरीर में अहंता व देह आदि में ममता–बुद्धि की कल्पना करता है।

''मनोमय काष जो मानसिक आयाम है। इसकी अनुभूति का स्तर चेतन मन है जो दो स्थूल

कोषों अन्नमय एवं प्राणमय को एक साथ एक इकाई के रूप में धारण करता है। यह बाहय एवं आन्तरिक जगत के बीच एक सेतु है। इसके माध्यम से बाहय जगत की अनुभूतियां और संवेदनाएं अन्तर्ज्ञात शरीर को और कारण एवं अंतर्ज्ञात शरीर के प्रभाव स्थूल शरीर को प्रेषित होते है।''[10]

(ब) **वैज्ञानिक स्वरूप** :– वैज्ञानिक भाषा में मनोमय कोष को जैव चुम्बकत्व के रूप में क्रियाशील कह सकते है। वातावरण में गामा, बीटा, लेसर, अल्ट्रावायलेट, इन्फ्रारेड आदि शक्ति किरणे भिन्न भिन्न रूपो में क्रियाशील रहती है। मानव शरीर में इन सबका समुच्चय जैव चुम्बकत्व (Biomagnetism) के रूप में विद्यमान होता है, जो प्रभा मंडल, आध्यात्मिक मनोचिकित्सा, शक्ति संचार आदि के रूप में रहता है। मूलतः यह जैव चुम्बकत्व मानव शरीर के दो ध्रुवो–स्थायी इलेक्ट्रोमेग्नेटिक डायपोल की भांति सुषुम्ना के मूलाधार रूपी दक्षिणी एवं सहस्त्रार रूपी उत्तरी ध्रुव के रूप में विद्यमान रहती है।

''यह अनेक क्रियाओं को एक साथ सम्पन्न करता है तथा दो स्थूल कोषों–अन्नमय एवं प्राणमय कोषों को एक समन्वित ईकाई के रूप में बनाये रखता है। यह इन शरीरों के मध्य संदेशवाहक की भूमिका निभाता है। यह बाह्य जगत के अनुभवों एवं संवेदनाओं को अन्तर्दर्शी शरीर तक पहुँचाता है तथा कारण एवं अन्तदर्शी शरीरों के प्रभावों को स्थूल शरीर तक पहुँचाता है। मन के भीतर सर्वाधिक तीव्र गति को प्राप्त करने की क्षमता होती है। विचार इस गति की अन्तिम अभिव्यक्ति है। मन समय के साथ आगे और पीछे जा सकता है। समय मन के मार्ग में अवरोध नहीं है और ध्यान के समय इसका अनुभव भी किया जा सकता है कि गहन अवस्था में समय का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।[11]

मनोमय कोष की महिमा :– ''जिस ब्रह्य के आनन्द की अनुभूति में मन के साथ वाणी भी असमर्थ रहती हैं। वह मनोमय शरीर अपने परवर्ती प्राणमय शरीर की आत्मा अर्थात् आधार है। क्योंकि ब्रह्य को पाने के लिए साधन करने वाले मनुष्य को यह ब्रह्य के पास पहुँचाने में विशेष सहायक है। ब्रह्य के आनन्दमय स्वरूप को जान लेने वाला विद्वान कभी भयभीत नहीं होता।''[12]

मनोमय कोष के जागरण से मनुष्य का मन एकाग्र होकर विचार, सम्प्रेषण, दूरदर्शन, दूरश्रवण व सम्मोहन आदि में सक्षम हो जाता है। मन ही बंधन व मोक्ष का कारण है। जब मन परिष्कृत होकर मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति कराता है। भगवान श्रीकृष्ण ने मन को वश में करने हेतु अभ्यास और वैराग्य का निरूपण किया है। मनोमय कोष के परिष्कार हेतु जप, त्राटक व ध्यान आदि साधन प्रमुख है।

(4) विज्ञानमय कोष

(अ) आध्यात्मिक स्वरूप :– आत्मा का चौथा आवरण विज्ञानमय कोष है। विज्ञान का अर्थ है–''विशेष ज्ञान''। यह साधारण ज्ञान नही है। विज्ञान का तात्पर्य है एक ऐसा ज्ञान जो यह बोध करा दे कि मै शरीर नहीं, वस्तुतः आत्मा हूँ। ''शंकराचार्य के शब्दों में, 'चित्त इंद्रिय आदि का अनुगमन करने वाली चेतना की प्रतिबिंब शक्ति (जो प्रकृति का विकार है) विज्ञान कहलाती है।''[13]

''वेदों के अर्थ के विषय में जो निश्चयात्मिका बुद्धि है, उसी का नाम विज्ञान है। यह अन्तःकरण का निश्चय धर्म हैं। प्रमाण स्वरूप निश्चय विज्ञान से अर्थात बुद्धि से निष्पन्न या पूरा होने वाला आत्मा विज्ञानमय है। यह विज्ञानमय शरीर मनोमय शरीर से भी सूक्ष्म है। अतः मनोमय शरीर इस विज्ञानमय शरीर से पूर्ण हैं। वह इस मनोमय शरीर में सर्वत्र व्याप्त है। मनोमय अपने से पहले वाले प्राणमय एवं अन्नमय में व्याप्त है अतः यह विज्ञानमय जीवात्मा समस्त शरीर में व्याप्त है। विज्ञानमय पुरूष बुद्धिमय गुफा में निवास करने वाला और उसमें तदाकार से बना हुआ आत्मा ही है। गीता के 13.32 में भी स्पष्ट कहा गया है कि जीवात्मा रूप क्षेत्र शरीर रूप क्षेत्र में सर्वत्र स्थित है। मनोमय पुरूष में व्याप्त होने के कारण विज्ञानमय आत्मा भी निश्चय ही पुरूषाकार है। उस विज्ञानमय पुरूष के अंगो की भी पक्षी के रूप में कल्पना की गई है। श्रद्धा को विज्ञानमय पुरुष का सिर कहना उचित ही है।''[14]

''विज्ञानमय कोष जो चित्त के स्तर पर अवचेतन और अचेतन मन को जोडता है। यह मनोमय कोष में व्याप्त रहता है लेकिन उससे सूक्ष्म है। विज्ञानमय कोष वैयक्तिक एवं सार्वभौमिक मन के बीच की कडी है। आंतरिक ज्ञान इसी स्तर से चेतन मन में आता है। जब यह कोष जाग्रत हो जाता है तब व्यक्ति को जीवन के अनुभव अन्तर्ज्ञान के रूप में होने लगते हैं उसे दृश्यजगत के पीछे छिपे सत्य का बोध होने लगता हैं। इससे प्रज्ञा की जागति होती हैं।''[15]

(ब) वैज्ञानिक स्वरूप :– मस्तिष्क में रहकर कार्यरत्

रहने वाले मन के भाग को विज्ञान अथवा बुद्धि कहते है। मन का प्रकाशित लोक ही बुद्धि तत्व है। विज्ञानमयकोष बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों से मिल कर बनता है। आनंदमय कोष के बाहर अहंकार व बुद्धि का आवरण विज्ञानमय कोष है। विज्ञानमय कोष के जागृत होने पर मानव चेतना स्वयं को आत्म चेतन मानती है, तथापि अविद्या व अहंकार विद्यमान रहते है। ज्ञान व क्रियावान होने का अभिमान निरंतर रहता है। यह अहं स्वभाव वाला विज्ञानमय कोष ही अनादिकाल से जीव व संसार के समस्त व्यवहारों का निर्वाह करने वाला है। यह अपनी पूर्व वासना से अनुसार पुण्य–पापमय अनेक कर्म करता है व उनके फल भोगते हुए अनेक योनियों में भ्रमण करता है। इस कोष में जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाएँ, सुख–दुख आदि भोग, देह से संबंधित कर्म गुणों का अभिमान व ममता आदि रहते है। यह आत्मा की अति निकटता के कारण अत्यन्त प्रकाशमय है। इस कोष का संबंध ब्रह्याण्डीय चेतना से होता है वस्तुतः मानवीय चेतना में यह अतीन्द्रिय सामर्थ्य गुप्त रूप से विद्यमान रहता है। उसे ही साधनाओं द्वारा जाग्रत कर मनुष्य अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न बनते है।

''अन्तर्ज्ञान का यह शरीर मनोमय कोष में व्याप्त है और इससे भी अधिक सूक्ष्म है। जब यह कोष जाग्रत होता है तो व्यक्ति को अन्तर्ज्ञान के स्तर पर जीवन का अनुभव होने लगता है, वह अभिव्यक्त जगत् के पीछे छुपी वास्तविकता को समझने लगता है। इससे प्रज्ञा की जाग्रति होती है।''[16]

विज्ञानमय कोष के परिष्कार हेतु सों हं साधना, स्वर योग व ग्रंथि भेद साधनाओं आदि का वर्णन किया गया है। विज्ञानमय कोष के जागरण से उत्पन्न सिद्धियों के संबंध में शिव संहिता में उल्लेख किया गया है कि आत्म साधना से शरीर में उत्तम कांति उत्पन्न होती है, तथा सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। यदि विज्ञानमय कोष की चेतना को जागृत किया जा सके तो सूक्ष्म जगत से संबंध जोड़ कर उस क्षेत्र में व्यापक रूप से उपस्थित विभूतियों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(5) आनंदमय कोष

(अ) आध्यात्मिक स्वरूप :– यह मानवीय चेतना का पाँचवा व अन्तिम आवरण और सबसे अधिक सूक्ष्म कोष है। अतः इसे अनुभवातीत शरीर भी कहते है। यह सबसे सूक्ष्म प्राणों का निवास स्थल है। इसे आनंदमय कोष के नाम से पुकारा जाता है अर्थात जिस आवरण में आत्मा को आनंद मिलता है, जहाँ उसे शान्ति, सुविधा, स्थिरता, निश्चितता, एवं अनुकुलता की स्थिति प्राप्त होती है। विज्ञानमय कोष की जागृति से प्राप्त ज्ञान से समाहित चित्त में एक मधुर सा रस बहाने वाली लहरियाँ उठ–उठकर जो हर्षयुक्त भाव उत्पन्न करती है, वह है – आनंद। साधक जब गुणातीत, स्वारूप्युक्त, जीवन्मुक्त अवस्था में प्रवेश करने पर आनन्द की अनुभूति विशेष रूप से होती है। 'आनन्दमय कोष' का आधार आनन्द की अनुभूति है। इस कोष की जागृति के उपरांत मानव चेतना वेदान्तोक्त वाक्य 'अयमात्मा ब्रह्य', तत्वमसि, सोऽहमस्मि, शिवोऽहं आदि की अनुभूति कर लेता है।

''गीता में इस अवस्था को प्राप्त मनुष्य को 'स्थितप्रज्ञ' कहकर संबोधित किया है। और उसके संबंध में कहा गया है कि जब व्यक्ति मन में आने वाली समस्त कामनाओं को त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। इस स्थिति में मानव चेतना सुख–दुख में समान रहती है, न प्रिय से राग करती है न अप्रिय से द्वेष। ऐसी मानसिक स्थिति वाला व्यक्ति ही समाधिस्थ कहलाता है। आनंदमय कोष का केन्द्र स्थान या प्रवेश द्वार ब्रह्मरंघ्र में अवस्थित सहस्त्रार चक्र को माना गया है। मस्तिष्क के मध्य भाग को ब्रह्मरंघ्र माना गया है। ब्रह्मरंघ्र की संरचना कमल–पुष्प के सदृश्य है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से इस स्थान पर एक 'अणु–गुच्छक' पाया जाता इसमें कमल पुष्प के सदृश्य अर्थात सहस्त्रों पंखुडीयों वाली सूर्यप्रकाश की ज्योति का आभास होता हैं।''[17]

बुद्धि के साथ तय हुआ विज्ञानात्मा (जीवात्मा) ही श्रद्धादिपूर्वक यज्ञ अर्थात शुभ कर्मो का अनुष्ठान करके उनका विस्तार करता है। जीवात्मा से ही सम्पूर्ण कर्मों की प्रेरणा मिलती है, अतः अनेकानेक लौकिक कर्मों का भी विस्तार करता है। सम्पूर्ण देवगण अर्थात इन्द्रियाँ एवं मन उस विज्ञानमय जीवात्मा की ही सर्वश्रेष्ठ ब्रह्य के रूप में सेवा करते हैं तथा अपनी–अपनी वृत्तियों के द्वारा सभी प्रकार से सुख पहुँचाने का सतत् प्रयत्न करते हैं। जो साधक इस विज्ञानात्मा को ब्रह्य स्वरूप में जानते हैं उसी प्रकार के चिन्तन में सर्वदा रत रहते हैं तो वे इसी शरीर में अनेकानेक जन्मों में संचित पापों से मुक्त होकर सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करते हैं अर्थात समस्त दिव्य भोगों का अनुभव करते हैं।

आनन्दमय परम पुरूष :– ''विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न उसके अन्दर रहने वाला जो एक अन्य आत्मा है

वही आनन्दमय परमात्मा है यही विज्ञानमय पुरूष में पूर्ण रूप से व्याप्त है। वे विज्ञानमय पुरूष में व्याप्त होने के कारण पुरूषाकार कहे जाते हैं। इस प्रकरण में विज्ञानमय का तात्पर्य जीवात्मा से और आनन्दमय का परमात्मा से है। जिस समय अन्तःकरण तमोगुण को नष्ट करने वाले तप, उपासना, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा के द्वारा जितना निर्मलता को प्राप्त होता है। उतने ही स्वच्छ एवं प्रसन्न हुये उस अन्तःकरण में विशेष आनन्द का उत्कर्ष होता है। यह आनन्द ही परमात्मा का मध्य अंग है जो प्रकृति ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और आनन्द रूप है, जिसकी प्राप्ति के लिये पाँच कोषों का विचार किया गया है जो उन सबकी अपेक्षा अन्तर्वर्ती है और जिसके द्वारा वे सब आत्मवान हैं वह ब्रह्म ही उस आनन्दमय की पूँछ एवं प्रतिष्ठा है, अर्थात आधार है।''[18]

(ब) **वैज्ञानिक स्वरूप** – ''इस संस्थान में भाव संवेदना को कमल पुष्प एवं प्रखरज्ञान को प्रकाश ज्योति कहा गया है। वैज्ञानिको की सम्मति के अनुसार इस क्षेत्र को रेटीकुलर एक्टिवेटिंग सिस्टम, डिफ्यूज थैलेमिक प्रोजेक्शन सिस्टम, स्पेसीफिक थैलेमिक प्रोजेक्शन सिस्टम जैसे नाम दिये गये है।''[19]

''आनंदमय कोष के जागरण के लिए नाद साधना, बिंदु साधना एवं कला साधना आदि प्रमुख है। इस कोष के जागरण के पश्चात् मनुष्य अपनी गरिमा को देवात्मा स्तर तक अनुभव करता है। पाँचवा आनन्दमय कोष है जो आनन्द का स्तर है। यह कारण या अतीन्द्रिय शरीर सूक्ष्मतम प्राण का निवास हैं।''[20]

''अन्नमय से मनोमय से विज्ञानमय विज्ञानमय, से आनन्दमय कोष में विचरण करने के लिए प्राणमय कोष न्यूटल का कार्य करता है। व्यक्ति को एक से दूसरी अवस्था में जाने के लिये प्राण शक्ति की क्षमता का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार गियर बॉक्स में न्यूटल का जो स्थान होता है वही स्थान व्यक्ति के जीवन में ऊर्जा के आयाम का है। प्राण के सक्रिय होने पर व्यक्ति की पहुँच भौतिक मानसिक आत्मिक और आध्यात्मिक आयामों तक हो जाती है।''[21]

कोष चेतना के जिन विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं वे इस प्रकार हैं– 1. शरीर 2. जीवन 3. मन 4. चित्त और 5. आत्मा। प्रत्येक साधक विकास क्रम में अपनी स्थिति के आधार पर चेतना के इन पाँच स्तरों में से मुख्यतः किसी एक में स्थित होता हैं। यदि चेतना मुख्यतः अन्नमय कोष में है तो व्यक्ति की स्थिति निश्चित रूप से शरीर में ही होगी। जिस प्रकार अनेक भोगवादी एवं सुखवादी जीते हैं। यदि चेतना प्राणमय कोष में है तो व्यक्ति खिलाड़ियों की तरह शक्ति और उर्जा से सम्बन्ध जोड़ेगा। चेतना यदि मनोमय कोष में है तो विश्लेषणात्मक मन के साथ व्यक्ति का तादात्म्य होगा। ज्यों ही विज्ञानमय कोष शुद्ध होता है रचनात्मकता प्रेरित होती है व अंतर्ज्ञान के साथ स्पष्टता आ जाती है। इस अवस्था में मन वास्तव में रिक्त होकर आनन्दमय कोष की अनुभूति के लिये तैयार हो जाता है। कोषों के द्वारा क्रमिक आरोहण की इस प्रक्रिया को कुछ बिरले योगी जिन्हें ईश्वर अनुग्रह प्राप्त है, आनन्दमय कोष का अनुभव प्राप्त करते है। अंततः चेतना आत्मिक सजगता के स्तर से एकरूप सजगता के स्तर पर उतरती है। इस अवस्था में अचेतन मन, जहाँ पर सारे मानसिक विक्षेप एवं वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, प्रकाशित हो उठता है तथा अचेतन या पराचेतन जगत् की आधारभूत सामंजस्यता दिक् काल व व्यक्तिगत उपलब्धियों की सीमाओं को तोड़कर उजागर होती है। यही सर्वोच्च अनुभूति अचेतन मन को प्रकाशित कर समाधि की अवस्था को प्राप्त कराती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, प्रथम संस्करण, 2012, पेज न 20
2. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दबल्ली पहला अनुवाक, श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 8
3. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद्, दूसरा अनुवाक – अन्न की महिमा एवं प्राणमय कोष का वर्णन, श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 8
4. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद्, श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 8
5. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद्, तीसरा अनुवाक (प्राण की महिमा एवं मनोमय कोष का वर्णन), श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 14
6. पंडित श्री राम शर्मा, पाँच प्राण पाँच देव, युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, पुनरावृत्ति

2013, पृ. 31

7. डॉ. उषा खंडेलवाल, वैज्ञानिक मान्यताओं का आध्यात्मिक प्रतिपादन, युनिवर्सल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.11

8. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, प्रथम संस्करण, 2012, पेज न 20

9. तस्यैष एवं शरीर आत्मा यः पूर्वस्थ। तैत्तिरीय उपनिष्द 2/4/1

10. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, प्रथम संस्करण, 2012, पेज न 20

11. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, घेरण्ड संहिता, बिहार योग भारती, मुंगेर, बिहार, प्रथम संस्करण, 1997, पेज न 394

12. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद् चौथा अनुवाक श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 70

13. आदि शंकराचार्य, विवके चूडामणि, भारतीय विद्या भवन, मुंबई,1910, पृ. 187

14. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद् श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. 70

15. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, प्रथम संस्करण, 2012, पेज न 20

16. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, घेरण्ड संहिता, बिहार योग भारती, मुंगेर, बिहार, प्रथम संस्करण, 1997, पेज न 394

17. अखंड ज्योती वर्ष 40 अंक 4 पृ. 58

18. व्याख्याकार स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, तैत्तिरीयोपनिषद, पाँचवा अनुवाक – विज्ञान की महिमा एवं आनन्दमय कोष का वर्णन, श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 312, प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

19. उषा खंडेलवाल, आध्यात्मिक मान्यताओं का वैज्ञानिक प्रतिपादन, युनिवर्सल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ.270

20. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, प्रथम संस्करण, 2012, पेज न 20

21. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, प्रथम संस्करण, 2012, पेज न 20

गांधीवादी अर्थव्यवस्था

डॉ. आर.के. आचार्य
प्राचार्य, एम.जी.पी.जी. कॉलेज, करेली, अधिष्ठाता, वाणिज्य विभाग, रा.दु.वि.वि., जबलपुर

मानव इतिहास के किसी अन्य युग से कहीं अधिक वर्तमान में, आर्थिक व्यवस्था हमारी अधिकांश गतिविधियों को ज्यादा प्रभावित करती है। आज हम ऐसे संसार में रह रहे हैं जिस पर आर्थिक शक्तियां एवं आर्थिक विचार हावी हैं। वस्तुतः आर्थिक व्यवस्था ही इतिहास की धारा को मोड़ने वाला प्रमुख कारण रही है। प्रोफेसर मार्शल ने कहा है "धार्मिक आदर्श को छोड़कर अन्य किसी भी प्रभाव से अधिक अपने दैनंदिन कार्य द्वारा एवं उससे प्राप्त होने वाले भौतिक साधनों द्वारा मानव चरित्र गठित होता रहा है। विश्व इतिहास के निर्माण के 2 प्रधान अभिकरण रहे हैं धर्म एवं आर्थिक व्यवस्था।" बीच–बीच में कुछ समय के लिए कहीं कहीं सैनिक व्यवस्था या कलात्मक चेतना अधिक प्रमुख हो उठी है किंतु कहीं भी धार्मिक एवं आर्थिक प्रभाव उस समय के लिए भी गोंड नहीं बनाए जा सके हैं, एवं अन्य समस्त प्रभावों के समुद्र से ही वे दोनों प्रायः सर्वदा अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं निसंदेह धार्मिक प्रेरणा आर्थिक परिणामों की तुलना में अधिक उत्कट रही है किंतु उनका प्रत्यक्ष प्रभाव जीवन के इतने बड़े अंश पर कभी ही पड़ता है।

मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया साधनों का प्रयोग मानसिक एवं शारीरिक क्रियाकलाप में परिलक्षित होता है। इन क्रियाकलापों के नियंत्रण हेतु ही नियम आवश्यक होते हैं और यह नियम ही आर्थिक सिद्धांत की रचना करते हैं। इसी कारण मनुष्य किसी भी सामाजिक, दार्शनिक एवं अर्थ नीतिक विचारों का अध्ययन करने में प्रवेश होता है गांधीजी का अर्थ चिंतन भी भारतीय पृष्ठभूमि को लेकर अत्यंत मौलिक था। वास्तविक में वह देश की माटी को समर्पित था।

गांधीवादी अर्थ नीति की विशेषताएं :– गांधी जी का चिंतन यद्यपि सर्वव्यापी था लेकिन अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि गांधीजी के समस्त क्रियाकलापों के मूल में नैतिक चिंतन होता है और उसी के कारण आधारभूत नैतिक मूल्य उनके आर्थिक विचारों पर हावी है अतएव अर्थशास्त्र के अध्ययन में इस बात को दृष्टिगत रखना चाहिए। गांधीजी आर्थिक विचारों में जान रस्किन से सर्वथा प्रभावित थे उन्होंने उसकी कृति "अंटू दिस लास्ट" का सर्वोदय के नाम से अनुवाद किया। और यही उनके आर्थिक सिद्धांत की आधारशिला है रस्किन की दृष्टि में "मनुष्य" ही सर्वोपरि विचारणीय तत्व है गांधीजी उसका अनुगमन करते हैं रविंद्र नाथ टैगोर की आलोचना का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था :–

मुझे अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि मैं अर्थशास्त्र एवं नीति शास्त्र में बदल या कुछ भी अंतर नहीं करता। किसी व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को क्षति पहुंचाने वाला अर्थशास्त्र अनैतिक है। अतएव पापपूर्ण है। इसी प्रकार जो अर्थशास्त्र एक देश को दूसरे देश की लूट करने की अनुमति देता है, वह अनैतिक है। अमेरिकन गेहूं खाकर अपने पड़ोसी अनाज के व्यापारी को ग्राहक के अभाव में भूखे मरने देना पीड़ादायक है।वैसे ही रीजेंट स्ट्रीट की नवीनतम तड़क–भड़क दार पोशाक पहनना मेरे लिए पापपूर्ण है जबकि मैं जानता हूं कि यदि मैंने अपने पड़ोसी जिलों की बुनी पोशाक पहनी होती तो ना केवल मेरा तन ढकता बल्कि उनके तन भी ढकते और पेट भी भरते।

श्रम, क्रय विक्रय के किसी भी नियम को आधार मानकर धन संचय करना ही युक्तियुक्त है। इसके चलते अर्थशास्त्री मनुष्य को धन संचय का यंत्र मानने लगे एवं उनका एकमात्र उद्देश्य धन संचय के उपाय ढूंढ ना ही रह गया। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने पूर्ति एवं मांग का नियम बनाया। रस्किन ने इस व्यापारिक अभिलेख की उग्र आलोचना की थी इसी बात को गांधी जी ने कहा कि मांग एवं पूर्ति के सिद्धांत को हम किसी विज्ञान का आधार नहीं बना सकते। उनका मत है कि किसी नए सस्ते कम वेतन भोगी व्यक्ति के लिए अपने पुराने वेतन पाने वाले विश्वासी नौकर को निकालना मेरे लिए पाप कर्म होगा। अपनी आर्थिक विचारों की व्याख्या में उन्होंने कहा है, खद्दर का अर्थशास्त्र साधरण अर्थशास्त्र के बिल्कुल भिन्न है खादी चेतना का अर्थ है पृथ्वी के प्रत्येक मानव के प्रति बंधुत्व भाव। अर्थात ऐसी प्रत्येक वस्तु का परित्याग जिनसे हमारे साथियों को क्षति पहुंच सकती है। खादी मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है मिल का वस्त्र अधिक धात्विक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

जीवन निर्वाह स्तर और सुख :– पश्चिमी राष्ट्रों के अर्थ चिंतन पर ध्यान देने में आता है कि उनकी अर्थ नीतिक संरचना का लक्ष्य है, आवश्यकताओं की वृद्धि।अर्थात जितनी अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग हम करते हैं हमारे जीवन निर्वाह का स्तर उतना ही ऊंचा होता है और भौतिक रूप से हम उतने ही सभ्यऔर सुखी होते हैं। गांधी जी इस से पूर्ण अवगत थे हिंद स्वराज में लिखते हैं कि आधुनिक सभ्यता की वास्तविक कसौटी इस तथ्य में निहित है कि इसके अतिरिक्त जीवन धारण करने वाले शारीरिक कल्याण को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। भारतीय आदर्श के प्रति आस्था रखते हुए गांधी जी इसका प्रतिवाद करते हुए तर्क करते हैं, देख पाते हैं कि मन चंचल पक्षी के समान हैं जितना अधिक इसको मिलता है। उतना ही अधिक यह चाहता है और फिर भी असंतुष्ट रहता है जितना ही हम अपनी बासनाओं में डूबते हैं, उतनी ही बे अनियंत्रित हो जाती हैं। इसलिए हमारे पूर्वजों ने विषय भोग की एक सीमा निर्धारित कर दी कोई व्यक्ति धनी होने के कारण अनिवार्यता सुखी नहीं होता या गरीब होने के कारण ही दुखी नहीं होता। हमारे पूर्वज भोग विलास से दूर रहने का परामर्श देते हैं। ऐसा इसलिए नहीं है कि वह यंत्रों का आविष्कार करना नहीं जानते थे अपितु हमारे पूर्वज जानते थे कि यदि हमने ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के पीछे अपना मन दौड़ाया तो हम उनके गुलाम हो जाएंगे और अपनी नैतिक प्रकृति खो देंगे। अतः पूर्ण चिंतन के साथ गांधीजी ने कहा कि हमें वही करना चाहिए जो हम अपने हाथ और पैरों से कर सकते हैं। आधुनिक सभ्यता की अंधी दौड़ से सचेत रहते हुए बचने का कहते हैं जैसा कि लुई फिशर ने कहा है, "रुको और बचो।" इसी प्रकार गांधीजी कहते हैं "सरल जीवन और उच्च विचार।" और इसलिए भी आवश्यकताओं की अनावश्यक वृद्धि के विरुद्ध है। उनका स्पष्ट कहना है कि मानव शरीर का एकमात्र उद्देश्य सेवा है, भोग कदापि नहीं। सुखी जीवन का रहस्य त्याग में है। त्याग ही जीवन है भोग का अर्थ तो मृत्यू है। लेकिन गांधीजी विकास के विरुद्ध नहीं थी बिजली ,जहाज निर्माण, लोहा उद्योग, यंत्र निर्माण एवं अन्य वस्तुओं के जीवन के लिए उपयोगी मानते थे वे इनके विरुद्ध नहीं थे किंतु दो बातों पर गौर करने के लिए कहते थे प्रथमतः समस्त समाज का अधिकतम कल्याण और द्वितीयतः हमारे जीवन का उद्देश्य। आपाधापी की दौड़ में हम अपने जीवन का वास्तविक उद्देश्य ही ना भूल जाएं इन दोनों शर्तों का निर्वाह करने पर हम वास्तविक एवं कृत्रिम आवश्यकताओं को अलग अलग कर सकते हैं। जैसा कि लुई फिशर कहते हैं गांधीवाद चाहता है कि लोग अच्छी तरह रहे, उसकी है मांग नहीं है कि लोग एकांत में संतों की तरह रहे। उसकी मांग है कि वे कम स्वार्थी हों,कमलोभी हो, कम धन उन्मादी हों, कम स्व केंद्रित हों।

आवश्यकताओं का दर्शन :– गांधीजी ने समय–समय पर यंग इंडिया एवं सर्वोदय तथा हरिजन में भी न केवल आर्थिक जीवन का महत्व स्वीकार कर उसे उचित स्थान दिया है बल्कि वह यह भी मानते थे कि महत्वपूर्ण पदार्थों के उत्पादन एवं वितरण की पद्धतियों का नैतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं पर प्रबल प्रभाव पड़ा है इसलिए उनका लक्ष्य था सत्य एवं अहिंसा पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना। प्रोफेसर मेहता ने अपने ग्रंथ "एडवांस्ड इकनोमिक थ्योरी" मैं आवश्यकताओं के दर्शन के परिच्छेद में लिखा है कि आवश्यकताएं, ऐच्छिक एवं अनैच्छिक होती है। अनैच्छिक आवश्यकता में वह कहते हैं।

यदि किसी व्यक्ति को किसी पदार्थ की आवश्यकता है। तो उसकी प्राप्ति से उसके मन में सुखद अनुभूतियां होनी चाहिए। यदि किसी पदार्थ की प्राप्ति से किसी को सुख होता है तो प्रमाणित होता है कि उसकी आवश्यकता उसे अवश्य रही होगी चाहे इस आवश्यकता का बोध सचेत रूप से उसे ना रहा हो। किंतु एक बार उसकी पूर्ति हो जाने पर भविष्य में सर्वदा ऐच्छिक आवश्यकताओं के रूप में उनकी पुनरावृत्ति होती रहती है अतएव "अनैच्छिक आवश्यकताओं" की सत्ता को कठोरता पूर्वक उपेक्षा करने में निहित है। गांधीजी ने कहा कि श्रम के नैतिक एवं भौतिक शोषण पर टिकी उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत ऐसी समाज व्यवस्था का गठन कठिन है ।इसलिए उन्होंने ऐसी आर्थिक व्यवस्था का प्रतिपादन किया जो उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति को समाप्त कर सकती है।

पूंजीवादी व्यवस्था पर मार्क्स ने लिखा है जिन समाजों में उत्पादनों की पूंजीवादी व्यवस्था प्रचलित है उनका धन पण्य दृव्यों के अपरिमित संचय का रूप ग्रहण करता है। माक्स लिखते हैं कि'' पूंजीपति श्रमिकों को सामाजिक दृष्टि से आवश्यक वेतन न देकर केवल जीवित रहने योग्य वेतन देते हैं और इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य संचित करते हैं।'' अर्थात पूंजीवादी पद्धति में उत्पादन के विकास के सभी साधन उत्पाद को श्रमिकों पर प्रवृति के एवं उनके शोषण के साधन बन जाते हैं। वे श्रमिक को विकृत कर मनुष्य का एक

टुकड़ा भर बना देते हैं ।वे यंत्र की स्थिति में उसे पहुंचा देते हैं गांधी जी ने मार्क्स किस बात पर एवं इस विचार को आत्मसात करते हुए कहा है कि जिस अनुपात में यंत्र का प्रयोग एवं श्रम विभाजन बढ़ता है उसी अनुपात में श्रमिक समग्र बोझ बढ़ता है चाहे कार्यकाल में वृद्धि के कारण या निश्चित समय में अधिकतम काम अदा कर लेने के कारण या यंत्र की बढ़ी हुई गति के कारण।वे मार्क्स कि इस बात से पूर्णता सहमत थे कि निजी स्वामित्व के अंतर्गत पूंजी समाज के लिए खतरा है अतः उत्पादन के उपकरण सबको उसी प्रकार सुलभ होने चाहिए जिस प्रकार वायु या जल सब कुछ सूलभ है, या होना चाहिए। किंतु ना तो श्रमिकों द्वारा पूंजी के हिंसा पूर्ण स्वामित्व हरण के पक्षधर थे और ना भी उत्पादन के समस्त उपकरणों को जिनके स्वामित्व द्वारा पूंजीपति अपरमूल्य का सर्जन एवं श्रमिकों का शोषण करने वाले माने जाते हैं, केंद्रीय कृत समग्र वादी तांत्रिक राज्य के हाथों में सौंप देना चाहते थे बल्कि वे पूंजीवाद को उसकी काटकर उत्पादन के स्तर पर ही विकेंद्रीकरण पद्धति द्वारा नष्ट कर देना चाहते थे। अर्थात उत्पादन एवं उपभोग का स्थानीयकरण।

विकेंद्रीकरण संबंधी गांधीजी की व्याख्या करते हुए प्रोफेसर दांत वाला ने मार्क्स एवं गांधी की तुलना करते हुए लिखा है कि मार्क्स उस युग के हैं जिसका प्रारंभ औद्योगिक क्रांति से हुआ था और गांधीजी प्रौद्योगिकी एवं समाजवाद के युग के हैं। आर्थिक क्षेत्र में अपने को सीमित करते हुए हम कह सकते हैं कि पहले युग की चुनौती "अभाव" की थी तो दूसरे युग की काम (बेरोजगारी) की। मार्क्स ने यंत्र के समाजीकरण की बात रखी थी तो गांधी ने उसके सरलीकरण की बात रखी थी।

आत्मनिर्भरता पर आधारित व्यक्ति की स्वतंत्रता :— आमजन यदि आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं है तो लोकतंत्र निरर्थक है। इसलिए उन्होंने विकेंद्रीकरण अर्थात चरखा अर्थनीति को सामाजिक, आर्थिक, पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक माना। वह कहते हैं यदि भारत को अहिंसा की दिशा में विकास करना है तो इसे बहुत से क्षेत्रों का विकेंद्रीकरण करना होगा ग्रामों की दृष्टि से संगठित भारत को विदेशी आक्रमण का खतरा स्थल, जल एवं वायु सेनाओं से सुसज्जित भारत की तुलना में कम होगा। तथा अहिंसा के आधार पर गठित समाज या राष्ट्र को अपने स्वरूप पर होने वाले बाहरी या भीतरी आक्रमण को झेलने में समर्थ होना ही होगा। मुख्यतः अर्थशास्त्रियों के समक्ष दो बड़ी समस्याएं हैं बेरोजगारी एवं एकाधिकार। क्योंकि इन दोनों का ही संबंध आर्थिक है इन आवृति संकटों के कारण वस्तुतः का आर्थिक राजनीति है, या कुछ और, इस को छोड़कर विश्व अर्थनीति का इतिहास इसे प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि औद्योगिक क्रांति के बाद आर्थिक संकट पूंजीवादी अर्थनीति के अनिवार्य दोस प्रतीत होते हैं। गांधी जी के विचारों के विकास क्रम को देखें तो उनकी आर्थिक नीति के मूर्त रूप का प्रतीक चरखा है। वह मानते थे कि विदेशी यंत्रों के आक्रमण के कारण कुटीर उद्योगों का विनाश ही भारतीय समाज की गरीबी का बड़ा कारण है। उन्होंने हिंद स्वराज में लिखा है कि जब मैंने श्री दत्त की "एकानामिक्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया" पढ़ी तो मैं रोया था और अब भी जब मैं उसकी याद करता हूं मेरा दिल दुखी हो जाता है। यंत्रों ने ही भारत को गरीब बना दिया। उनका निश्चित मत है कि पुराने जमाने में किसान अधिक सुखी थे, क्योंकि अवकाश के छह महीनों में सहायक उद्योग का आश्रय ले सकते थे 1920 में वह कहते हैं कि मिलो से मेरा झगड़ा नहीं है मेरे विचार सरल है भारत में आवश्यकता के वस्त्र प्रतिवर्ष एक व्यक्ति को 13 गज लगते हैं लेकिन उतना उत्पादन नहीं होता जबकि रुई की पैदावार उसकी पूरी आवश्यकता के अनुरूप है कृषि के अलावा भी किसी दूसरे कामों से अपनी आवश्यकता पूर्ति करनी चाहिए। 1924 में उन्होंने कहा कि मेरा कहना है कि आज भारत में जबकि लाखों व्यक्ति दुर्दशा के शिकार हैं विदेशी वस्तुओं का आयात करना बहुत बड़ा पाप है भारत में आयात विदेशी वस्त्र का प्रत्येक आज भूखा मरते गरीबों के मुंह से छीने गए रोटी के टुकड़ों के समान है।

यद्यपि गांधी जी ने बाद में यंत्रों के संबंध में अपने विचारों को संशोधित करते हुए लिखा कि मैं समस्त यंत्रों एवं मिलों को नष्ट करने की भी चेष्टा नहीं कर रहा हूं यंत्र के संबंध में उनके विचार शांतिनिकेतन के श्री रामचंद्रन के साथ हुई वार्ता में वह कहते हैं कि, यह जानते हुए कि यह शरीर अत्यंत उत्कृष्ट यंत्र है मं वैसा कैसे कह सकता हूं यंत्रों के पीछे पागलपन पर मेरी आपत्ति है यंत्रों के प्रति नहीं जटिल यंत्रों की जगह सरल एवं उपयोगी यंत्रों का प्रयोग होना चाहिए। केवल श्रम बचाने के लिए यंत्रों का उपयोग ठीक नहीं है। सर्वोपरि विचार नहीं मनुष्य है यंत्रों के चलते "मनुष्य" के अंग छीण नहीं होने चाहिए। उदाहरणार्थ वह कहते हैं कि विवेकपूर्ण अपवाद करूंगा जैसे सिलाई की सिंगर मशीन।

विकेंद्रीकरण एवं उत्पादन व्यय :— वृहत स्तर के उत्पादकों का तर्क रहता है कि कम लागत पर

अधिकतम उत्पादन हो जाता है और सुविदित वाह्य एवं आभ्यन्तर अर्थव्यवस्थाओं के लाभों द्वारा वे उसकी पुष्टि करते हैं विकेंद्रीकरण का मतलब ही है आदिम औजारों द्वारा उत्पादन। जबकि गांधीजी इसके उलट कहते हैं कि हमें कार्यों में युक्तियुक्त वैज्ञानिक परी संवर्द्धन करते हुए कार्य करना चाहिए। चरखे के संबंध में 1 सितंबर 1944 को अखिल भारतीय चरखा संघ के न्यास धारियों से बात करते हुए कहते हैं कि हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि क्या हम ने चरखे पर यथेष्ठ शोध कार्य किया है हमने इसके लिए बहुत तप किया है और कई आविष्कार किए हैं। हमने कई चरके बनाएं किंतु अब हमें ऐसे वैज्ञानिक उत्पन्न करने हैं जो चरखे के यंत्र विन्यास में सुदक्ष हों। वे ऐसे चरखे बना सके जिनसे आज की तुलना में अधिक और बेहतर सूट का काटना किया जा सके। अर्थात ग्राम उद्योगों के संबंध में उनकी यही धारणा थी तो विकेंद्रीकरण केवल स्थान की दृष्टि से ही प्रस्तावित किया गया है, उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से नहीं। यदि विकेंद्रीकरण में उत्पादन की अद्यतन पद्धति एवं युक्तियुक्त करण की मदद ली जाए तो महंगे उत्पादन का दोष बहुत अंशों तक कम किया जा सकता है। यही बात आर बी ग्रेग ने अपनी पुस्तक "एकानामिक्स आफ खद्दर" मैं विकेंद्रीकृत उत्पादन के लाभों के रूप में भी लिखे हैं मूल्य को केवल धन के आधार पर मापना पूंजीवादी मानक है अतः यदि कोई विकेंद्रीकरण की निंदा उत्पादन की कुछ अधिक लागत के कारण ही करता है तो बुद्धिमत्ता नहीं करता। अमेरिका के प्रसिद्ध उद्योगपति हेनरी फोर्ड स्वयं अपने विशाल कारखानों को ग्रामों में स्थित छोटी विकेंद्रीकृत इकाइयों में विभक्त करने की बात कहते हैं और बाद में उन्होंने इसे कुछ मात्रा तक किया भी। आधुनिक अर्थशास्त्र में एक और विकट समस्या उत्पादित माल की होती है और वह है "वितरण की समस्या" अनेकों अर्थशास्त्रियों द्वारा इस संबंध में अपने अपने सुझाव दिए गए हैं कोई राष्ट्रीयकरण की बात करता है तो कोई संसाधनों की वृद्धि हेतु पूर्ति की बात करता है लेकिन गांधी जी द्वारा कहा गया कि अभिकल्पित विकेंद्रीकृत उत्पादन से ही यह समस्या अपने आप हल हो जाती है।

मुद्रा एवं विनिमय :— गांधी जी कहते हैं कि मेरी व्यवस्था के अंतर्गत चालू सिक्का श्रम होगा, धातु (रूपया) नहीं। जो व्यक्ति अपने श्रम का उपयोग कर वस्त्र बना सकता है वह अपने परिश्रम को अनाज में भी बदल सकता है यदि उसे पैराफिन तेल की आवश्यकता है जिसे वह स्वयं नहीं बना सकता तो तेल पाने के लिए वह अपने अतिरिक्त अनाज का उपयोग कर सकता है यह स्वतंत्र न्याय एवं समान शर्तों पर श्रम का विनिमय है अतः डकैती नहीं है आप यह कह सकते हैं कि यह आदिम वस्तु विनिमय व्यवस्था का ही रूप है किंतु क्या समस्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु विनिमय व्यवस्था पर ही आधारित नहीं है।

राजस्व व्यवस्था के संबंध में गांधी जी कहते हैं कि कर धन के बदले श्रम द्वारा चुकाना चाहिए अर्थात श्रम के रूप में किया गया भुगतान राष्ट्र को शक्तिशाली बनाता है जहां लोग समाज सेवा के लिए स्वेच्छया श्रम करते हैं वहां धन का विनिमय अनावश्यक हो जाता है मूलतः मनुष्य, उसकी स्वतंत्रता एवं सुरक्षा का ध्यान रखना, यह आवश्यक है आदर्श आर्थिक संरचना में भोजन काम एवं स्वतंत्रता के विषय में सब को आश्वस्त होना चाहिए गांधी जी बहुत पहले 1928 में ही घोषणा करते हैं कि मेरे विचार से भारत की और सारी दुनिया की आर्थिक संरचना ऐसी होनी चाहिए कि भोजन एवं वस्त्र के अभाव का कष्ट किसी को ना हो। अर्थात प्रत्येक को इतना पर्याप्त काम मिलना चाहिए कि वह अपना भरण—पोषण कर सकें और यह तभी संभव है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में हो सबको इनकी उपलब्धि उतनी सहज होनी चाहिए जितनी सहजता से ईश्वर प्रदत्त वायु एवं जल की होती है, या होनी चाहिए। उन्हें दूसरों का शोषण करने का साधन नहीं बनने देना चाहिए। पिछले 100 वर्षों में जिस अर्थव्यवस्था का भारत में विकास हुआ है उसने भारत और पश्चिम के औद्योगिक देशों की व्यवस्था को एक दूसरे का पूरक बनाया है। इसमें भारत के हितों का संरक्षण नहीं हुआ बल्कि उनका बराबर शोषण ही होता रहा। इस शोषण की क्रिया में पाश्चात्य देशों ने भारत के कुछ वर्गों को भी अपने अभिकर्ता के रूप में साझीदार बनाया है। आज नए भारत की जब हम बात करते हैं। तो ना किसी पुराने समय की प्रतिच्छाया बनाना चाहते हैं, और ना रूस अमेरिका की अनुकृति। भारत को भारत की तरह यहां के अर्थ चिंतन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि एवं गांधीवादी चिंतन के श्रेष्ठ सम्मिश्रण से नवीन परिस्थिति जन्य अर्थव्यवस्था के संयोजन की आवश्यकता है। भारत आने वाली सदी में भले ही वैश्विक स्तर पर प्रथम स्थान पर रहे या ना रहे लेकिन यहां रहने वाले जनमानस को, भारतीय समाज को सुखी समृद्ध और सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यंतु मां कश्चित् दुखभागभवेत के स्वरूप का होना जरूरी है। और गांधीवादी अर्थव्यवस्था है या रामराज्य की संकल्पना है।

संदर्भ सूची :–

1. हरिजन
2. यंग इंडिया
3. हिन्दस्वराज
4. मार्शल, "प्रिंसिपल ऑफ इक्नॉमिक्स" खण्ड 1
5. मिश्नरी कान्फ्रेंस मद्रास का भाषण 1916, इक्नॉमिक्स ऑफ खादी
6. रॉल एरिक, हिस्ट्री ऑफ इक्नॉमिक्स थॉट,
7. रस्किन, "अनटू दिस लास्ट"
8. मेहता, जे.के. स्टडीज एन एडवान्सड थियोरी ऑफ इक्नॉमिक्स।
9. प्रो. दांतवाला, गांधीज्म रीकंसिडर्ड
10. कांग्रेस प्रेसिडेन्सियल एड्रेस मद्रास

विभिन्न उद्योगों में बाल श्रमिक

लक्ष्मण जी गुप्ता
शोध छात्र, (विधि विभाग), शिब्ली नेशनल कॉलेज, आजमगढ़
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

प्रस्तावना :— बालक समाज के सबसे दुर्बल समूह होते हैं। निर्धन या संपन्न, किसी भी परिवार में उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माता—पिता या परिवार के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। परिवार विहीन बच्चों में कुछ को तो संस्थाओं या दूसरों के घर में शरण मिल जाती हैं लेकिन कई दर—दर भटकते फिरते हैं। जन्म के प्रारंभिक वर्षों में बालकों की विवशता चरम सीमा पर होती है। इस अवधि में उनकी विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। उम्र के बढ़ने के साथ—साथ उनकी आवश्कताएं बढ़ती हैं। इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के पास पर्याप्त साधन नहीं होते। परंपरा से बालकों के पालन—पोषण का दायित्व परिवार पर रहा है, लेकिन कल्याणकारी राज्यों के उदय सर्वे यह दायित्व परिवार के अतिरिक्त राज्य एवं अन्य सामाजिक संगठनों में भी निहित होता गया हैं।

''0—6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को स्वास्थ्य, पोषण और प्रारंभिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था किए जाने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा बच्चों के कल्याणार्थ संचालित किए गए प्रमुख कार्यक्रमों और योजनाओं में समन्वित बाल विकास योजना— 1975 एक ऐसा विशाल और महत्वकांक्षी कार्यक्रम है, जिसे पूरे देश में पिछले तीन दशकों से निरंतर संचालित किया जा रहा है।''[1] द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विकासशील देशों में होने वाले आर्थिक विकास के कार्यक्रमों तथा स्वास्थ्य सेवाओं के फलस्वरूप 15 वर्ष से कम उम्र के बालकों की जनसंख्या में व्यापक वृद्धि हुई है।

1981 ई. की जनगणना के अनुसार देश की कुल 65.30 करोड़ जनसंख्या में 30 प्रतिशत 15 वर्ष के कम तथा 16 प्रतिशत 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चे हैं। बालक भविष्य के नागरिक होते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही होता जा रहा है। किसी भी राष्ट्र का शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य बच्चों के प्रारंभिक अवस्थाओं में होने वाले विकास पर निर्भर करता है। कई देशों की सरकार बच्चों के भविष्य की पूंजी और उनके विकास कार्यक्रम को सामाजिक प्रगति का आधार मानने लगी है। बचपन में ही मृत्यु या अस्वस्थ्यता से देश के मानवीय संसाधनों में काफी कमी हो सकती है, और यह आर्थिक प्रगति के लाभो को बेअसर कर सकती है। भविष्य के नागरिक होने के नाते बालकों को स्वास्थ्य, पोषाहार, शिक्षा और मनोरंजन सेवाएं अधिकार स्वरूप मिलनी चाहिए। राष्ट्रीय जीवन में बालकों के महत्व को ध्यान में रखते हुए कई देशों में तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर बालकों के विकास के लिए नीतियों की घोषणा की गई है और उनके कल्याण के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं।

बाल श्रम से आशय :— अर्थशास्त्र में श्रमिक उस व्यक्ति को कहते हैं जो आय प्राप्ति के उद्देश्य से मानसिक एवं शारीरिक श्रम करता है। जब इस प्रकार का काम कम उम्र के बच्चों के द्वारा किया जाता है। तब इसे बालश्रम कहा जाता है। प्रो. थामस के अनुसार सभी प्रकार का मानवीय श्रम चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक जो किसी पुरूस्कार की प्राप्ति की आशा से किया गया हो श्रम कहलाता है।

बाल श्रमिक मुख्य रूप से शारीरिक श्रम ही करते हैं भारत में छोटे—छोटे बच्चों की भी अपनी—अपनी आजीविका अर्जित करनी पड़ती है। विशेषकर निर्धन परिवारों के बच्चों को जो होटलों कारखानों दुकानों आदि में कार्य करते हैं।

इसके अतिरिक्त अखबार, मूंगफली बेचकर भी वे अपना पेट पालते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि श्रम से ही सम्पत्ति का निर्माण होता है और कम उम्र में यह कार्य किया जाए तो वह बाल श्रम की श्रेणी में आता है।

विभिन्न कार्यों में लगे हुए बाल श्रमिकों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :—

- **कारखानों में बाल श्रम** :— हमारे भारतवर्ष में कारखानों का प्रसार औद्योगिक क्रांति के बाद शुरू हुआ और तभी से बालकों को कारखानों में लगाया जाने लगा। पहले कारखाने में बाल श्रमिकों की संख्या बहुत अधिक थी, परंतु अधिनियमों के नियंत्रण के कारण इनकी संख्या में निरंतर कमी होती जा रही है।

अतः यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि कारखानों में बाल श्रमिकों की संख्या काफी है। श्रम ब्यूरों के एक सर्वेक्षण में कहा गया है कि कारखाना

अधिनियम के अंतर्गत प्राप्त सूचना द्वारा बाल श्रमिकों का विवरण सत्य होने में संदेह है। कारखाने के निरीक्षकों का यह अनुभव है कि जैसे ही व निरीक्षण के लिए पहुंचते हैं वैसे ही बहुत से बाल मजदूर कारखानों से हट जाते हैं। इनमें बहुधा न्यूनतम आयु से कम के मजदूर होते हैं। तात्पर्य यह है कि कारखाना अधिनियम में न्यूनतम आयु 14 वर्ष की है, परंतु उससे कम आयु के बालकों को भी कार्य पर रखा जाता है और उनका कोई विवरण कागजों पर नहीं होती। बहुत से बालकों को डाक्टरी झूठे प्रमाण पत्रों के द्वारा अधिक उम्र का दिखाकर इन्हें किशोर श्रेणी में दिखा दिया जाता है।

- **खनिज उद्योगों में बाल श्रम** :– खनिज उद्योगों में भी प्रारंभ में कुल श्रम शक्ति का अधिकांश भाग बच्चे ही थे। परंतु इस उद्योग में भी बाल श्रमिकों की संख्या में कमी हुई है। 1935 से आयु सीमा बढ़ाकर 15 वर्ष कर दी गई है किंतु फिर भी यह अनुभव किया गया है कि बिहार, तमिलनाडू और राजपूताने में 15 वर्ष से कम आयु के बालक खानों में काम कर रहे हैं। सन् 1952 के खान अधिनियम से खानों में जमीन के नीचे किसी भी भाग में बच्चों की उपस्थिति पर रोक लगा दी गई है जहां खान खोदने का काम किया जा रहा है। यद्यपि अब 15 वर्ष से अधिक उम्र के बच्चे ही खदानों में काम कर सकते हैं परंतु श्रम जांच समिति के अनुसार अधिनियम के प्रावधानों की अवहेलना बड़े पैमाने पर की जाती है।
- **बागानों में बाल श्रम** :– भारतीय बागानों में काफी संख्या में बाल श्रमिक काम करते हैं। 1948 के बागान अधिनिय के अनुसार बागानों के काम में 12 वर्ष से कम आयु के बालक कार्य पर नहीं लगाये जा सकते हैं परंतु ऐसे बच्चों की संख्या भी कम नहीं है। झूठे प्रमाण पत्रों के आधार पर अभी भी 8 से 9 वर्ष के बच्चे काम करते हैं।
- **अनियंत्रित उद्योगों में बाल श्रम** :– बाल श्रमिकों की एक भारी संख्या इस देश में विभिन्न अनियंत्रित उद्योगों में लगी हुई है। इन उद्योगों में बीड़ी उद्योग, चमड़ा उद्योग, दरी उद्योग, छापाखाना और चूड़ी उद्योग आदि विशेष रूप ये उल्लेखनीय है क्योंकि ये छोटे उद्योग है इसीलिए ये कारखाना अधिनियम के अंतर्गत नही आते। यही कारण है कि हमारे देश के अनेक अनियंत्रित उद्योगों में बाल श्रम का बहुत बुरी तरह शोषण होता है।
- **कृषि उद्योगों में बाल श्रम** :– चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिए कृषि में बाल श्रमिकों की संख्या काफी विशाल है ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चे अपने बड़ों को कृषि कार्यों में सहायता पहुंचाते हैं। श्रम मंत्रालय की कृषि श्रमिक जांच के निष्कर्ष के अनुसार कुल कृषि श्रमिकों का लगभग 6 प्रतिशत बाल श्रम है।

बाल श्रमिकों की प्रमुख समस्यायें :– यद्यपि विभिन्न उद्योगों में बाल श्रमिकों की समस्याएं विभिन्न है किंतु कुछ समस्याएं ऐसी है जो समस्त क्षेत्रों में पई जाती है। इनमें से कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार है :

- **कम आयु के कार्य करना** :– बालकों को ऐसी कच्ची उम्र से ही काम पर लगा दिया जाता है और उनसे कठोर परिश्रम कराया जाता है जबकि उनमें काम करने की पर्याप्त क्षमता नहीं होती बचपन में शरीर ओर मन दोनों ही कोमल होते है, परंतु बचपन से ही इन्हें कठोर कामों में लगा देने से उनकी कोमलता नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति बालक के व्यक्तित्व के स्वस्थ्य विकास में बाधक होती है। परिवार के निर्वाह के लिए मजदूरी कमाने की आर्थिक आवश्यकता बालक को शिक्षा, खेलकूद एवं मनोरंजन के अवसरों से वंचित कर देती है, उसके शारीरिक विकास को रोकती है, उनके व्यक्तित्व के सामान्य विकास में बाधा डालती है तथा वयस्क जिम्मेदारी के लिए उसके तैयार होने में रोड़े अटकाती है।
- **दूषित दशाओं के अंतर्गत कार्य करना** :–लगभग सभी उद्योगों में बच्चों को अत्यंत दयनीय दशाओं के अंतर्गत काम करना पड़ता है, जिससे वे शीघ्र ही रोगग्रस्त हो जाते है और चिकित्सा के समुचित अभाव में अपने को हमेशा के लिए खो बैठते हैं।
- **नैतिक पतन** :–वयस्क श्रमिकों के साथ काम करने से उनकी अनेक बुरी आदते बच्चे भी सीख जाते हैं। विभिन्न खोजों से पता चलता है कि इन बुरी आदतों में दो आदतें विशेष रूप से उल्लेखनीय है– एक तो बीड़ी या सिगरेट पीने आदत और दूसरी जुआ खेलने की आदत। इसके अतिरिक्त उनसे अनेक अनुचित अनैतिक और अमानवीय कार्य कराए जाते हैं जिससे उनका चारित्रिक ह्रास होता है।
- **शिक्षा से वंचित** :– बचपन से ही बालकों को रोजगार पर लगा देने का अर्थ है उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों से वंचित करना। इससे देश में अशिक्षा में वृद्वि होती है तथा व्यक्ति और राष्ट्र की

प्रगति रूक जाती है।

- **अनिश्चित कार्य के घंटे, मजदूरी आदि** :– बाल श्रमिकों के कार्य करने के घंटे, मजदूरी व छुट्टी के संबंध में कोई निश्चित स्थिति नहीं है। नाममात्र मजदूरी देकर लंबे समय तक कार्य लेना श्रमिकों से संबंधित एक अन्य समस्या है। उन्हें सामान्यतः वयस्क श्रमिकों की मजदूरी का 30 से 50 प्रतिशत अंश दिया जाता है।
- **अधिनियमों का शिथिल पालन** :– यद्यपि सरकार ने बाल सरकार ने बाल श्रमिकों के संबंध में कुछ अधिनियम बनाये हैं किंतु उनका पालन कठोरता से नहीं किया जाता। फलतः बच्चों को निश्चित सुविधाओं से भी वंचित रहना पड़ता है।

बालकों की कुछ समस्याएं सभी बालकों के साथ सामान्य रूप में लागू होती है, लेकिन कुछ विशिष्ट श्रेणियों के बालकों को विशेष प्रकार की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

बाल श्रमिकों की अन्य समस्याएं :–

- **स्वास्थ्य एवं पोषाहार की समस्या** – देश में बालकों को स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन देशों में आर्थिक विकास तथा स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के बावजूद शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक है। कुपोषण के कारण अनेक बच्चे खसरा, काली खांसी, तपेदिक, टिटनस और पोलियों जैसी छुआ–छूत की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। साथ ही साथ,कुपोषण और उससे उत्पन्न पोषक की कमी के कारण अनेक बच्चे स्थायी रूप से विकलांग हो जाते हैं। भारतीय पोषण–प्रतिष्ठान के अनुसार पानी की खराबी से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के कारण अनेक बच्चे कभी न खत्म होने वाली अस्वस्थता के चक्र में फंस जाते हैं।

इनके अतिरिक्त अशिक्षा, अज्ञानता और निर्धनता के कारण कई बच्चों का इलाज समय पर नहीं हो पाता। स्वास्थ्य सेवाएं भी बालकों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के अनुपात में पर्याप्त नहीं है। इस तरह बालकों की स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी समस्याओं में ऊंची शिशु–मृत्युदर, शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता की ऊंची दर अस्थायी विकलांगता पैदा करने वाली पोषण से संबद्ध बीमारियों और गंभीर कुपोषण सम्मिलित हैं।

- **शिक्षा की समस्याएं** – सामान्य बालकों की दूसरी मुख्य समस्या शिक्षा की है। विश्व के कई विकसित देशों में 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की नीति को प्रभावी ढ़ंग से लागू किया गया है। इन देशों में शिक्षा के स्तर भी ऊंचे हैं तथा शिक्षा प्रणाली भी विकसित अवस्था में है। दूसरी ओर अनेक बालकों को शिक्षा के अवसर मिलते ही नहीं। अनुसूचित जातियों और जन–जातियों तथा कुछ पिछड़ी जातियों के बच्चे तो साक्षर भी नहीं हो पाते। यद्यपि भारतीय संविधान में 14 वर्ष के कम उम्र के बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए राज्य को निर्देश दिए गए हैं और कई राज्यों में इस संबंध में कानून भी बनाए गए हैं, लेकिन अभी तक निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पाई है। 1950–51 ई. में 6–11 वर्ष की उम्र के बालकों के केवल 43 प्रतिशत तथा 11–14 वर्ष के बीच के बालकों में केवल 13 प्रतिशत के ही नाम विद्यालयों में अंकित हैं। सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र उठाए गए महत्वपूर्ण कदमों के फलस्वरूप बालकों की शिक्षा में व्यापक सुधार हुआ है, लेकिन स्थिति अभी तक संतोषजनक नहीं हो पाई है। 1982–83 ई. में 6–11 वर्ष के बीच के बालकों में 87 प्रतिशत तथा 11–14 वर्ष के बीच के बालकों में 44 प्रतिशत विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इन आंकड़ों से प्राथमिक शिक्षा की प्रगति का सही ज्ञान नहीं होता। अनेक बालक नामांकन के बाद विद्यालय छोड़ देते हैं। कई विद्यालयों में शिक्षा का स्तर बहुत ही नीचा है तथा अनेक विद्यालयों में शिक्षा संबंधी उपकरणों शिक्षकों तथा सुविधाओं की कमी बनी रहती है।
- **मनोरंजन की समस्याएं** :– जनसंख्या का एक बड़ा भाग निर्धनता से ग्रस्त हैं। निर्धन परिवार तो बच्चों के समुचित भोजन तथा उनके स्वास्थ्य की रक्षा के बोझ से ही दबे रहते हैं। उनके बालकों के स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन की आशा कराना ही व्यर्थ है। देश में सार्वजनिक क्रीड़ा स्थलों तथा मनोरंजनात्मक संवोओं की भी व्यापक कमी है। अधिकांश विद्यालयों में तो उनके खेल–कूद या मनोरंजन की सुविधाएं नहीं के बराबर रहती हैं। समुचित मनोरंजन के अभाव में उनका शारीरिक और मानसिक विकास अवरूद्व हो जाता है। धनी एवं गंदी बस्तियों तथा नगरों में बालकों के स्वास्थ्यप्रद मनोंरजन की समस्या और भी गंभीर है।
- **संरक्षण की समस्या** :– बालक समाज के सबसे

दुर्बल समूह होते हैं। जीवन प्रारंभिक वर्षों में उन्हें संरक्षण की विशेष आवश्यकता होती है। अधिकांश परिवारों में माता–पिता या परिवार के अन्य सदस्य उन्हें कम या अधिक मात्रा में संरक्षण देते हैं, लेकिन कई परिवारों में वे उपेक्षित रहते हैं। कई बच्चों के परिवार में कोई संरक्षक नहीं होता। ऐसे बच्चों की देखभाल एक बड़ी समस्या होती है। कई परिवारों में लोग अज्ञानता तथा अशिक्षा के कारण बालकों की संरक्षात्मक आवश्यकताओं को समझ भी नहीं पाते हैं। इस कारण कई बच्चों को दुर्घटनाओं, भावनात्मक तनाव, निर्दयता एवं उपेक्षा का समाना करना पड़ता है। संरक्षण के अभाव में उनका समुचित विकास नहीं हो पाता। विघटित परिवारों के बच्चों तथा निराश्रित और अनाथों की संरक्षण की समस्या दिनों–दिनों गंभीर होती जा रही है।

- **कार्य के घंटे अधिक होने की समस्या** :– विकलांगों के अंतर्गत नेत्रहीन मूक–वधिर अपंग तथा मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्ति सम्मिलित हैं। देश में कई परिवार किसी न किसी प्रकार के दृष्टिदोष के शिकार हैं। इनमें लगभग अधिकांश बालक नेत्रहीन हैं। इसी प्रकार, देश में लाखों की संख्या में मूक–बधिर और शारीरिक रूप से अपंग बालक हैं। मानसिक रोगों से पीड़ित बालकों की संख्या भी देश में निरंतर बढ़ रही है। अधिकांश विकलांगों की विकलांगता बचपन में ही प्रारंभ हुई। अब भी विकलांगों मे सबसे अधिक संख्या में 15 वर्ष से कम उम्र के बालक हैं। उनमें अनेक बालकों की विकलांगता समुचित उपायों द्वारा रोकी जा सकती थी।

विकलांग बालकों में सबसे अधिक दुर्दशा नेत्रहीनों की होती है। उन्हें अपने नित्यों के कार्यों के लिए भी दूसरों पर पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता है। आंखों की रोशनी के अभाव में वे न तो उपलब्ध सुख–सुविधाओं के लाभ उठा सकते हैं और न ही पढ़ लिख कर स्वाबलंबी बन सकते हैं। उनका जीवन अंधकारमय हो जाता है। दूसरें बच्चों के खेलकूद पढ़ाई लिखाई और हंसी खुशी के बारे में सुनकर वे अपने जीवन को कोसते रहते हैं। मूक बधिर तो देख सकते हैं लेकिन वे भी शिक्षा तथा सुमुचित मनोंरजन की सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। प्रयासों के बावजूद उनका समुचित बौद्धिक विकास नहीं हो पाता गंभीर अपंगता के शिकार बच्चों की स्थिति भी बड़ी दयनीय होती है। विकलांग बालकों को विशेष प्रकार की शिक्षा और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिससे आगे चलकर वे थोड़ा बहुत भी स्वाबलंबी बन सके। ऐसे बालकों को विशेष चिकित्सा तथा उपकरणों की भी आवश्यकता होती है। कई विकलांग बालकों के लिए संस्थागत देखभाल और समुचित पुनर्वास की भी जरूरत पड़ती है। उनकी अन्य समस्याओं मे तिरस्कार तथा छेड़खानी, विशेष मनोरंजन तथा आत्मनिर्भरता की समस्याएं सम्मिलित हैं। कम उम्र में निवारक उपायों से अनेक बालकों की विकलांगता रोकी जा सकती है।

- **अनाथ एवं अधर्मज बालकों की समस्याएं** :– देश में अनाथ बालकों की संख्या भी बहुत अधिक है। द्वितीय विश्वयुद्व के पहले प्रायः होने वाली महामारियों तथा अकालों के कारण अनेक बच्चे अपने माता–पिता से बिछड़ जाते थे। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के फलस्वरूप महामारियों पर प्रभावी रूप से नियंत्रण हुआ है, लेकिन आज भी बाढ़ दुर्घटना संक्रामक रोगों, सांप्रदायिक झगड़ों आदि के कारण अनेक परिवार नष्ट हो जाते हैं और कई बच्चे निराश्रित हो जाते हैं। ये अनाथ बच्चे दर–दर के भिखारी बने फिरते हैं। देश में पारिवारिक विघटन, अवैध यौन संबंध, बलात्कार आदि में वृद्धि के कारण अधर्मज बालकों की संख्या भी निरंतर बढ़ रही है। ऐसे बालकों को समाज स्वीकार नहीं करता।

अनाथ अधर्मज और अन्य निराश्रित बालकों को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस ओर तो वे माता–पिता और परिवार की संरक्षण से वंचित रहते हैं तो दूसरी ओर समाज में उपेक्षित और तिरस्कृत रहते हैं। इनमें कुछ बच्चों को तो अनाथालयों में शरण मिल जाती है, लेकिन अनेक मारे–मारे फिरते हैं। इनमें कई अपना पेट भरने के लिए भीख मांगने लगते हैं। तथा कई जूता–पॉलिश कागज इकट्ठा करने या इस तरह का कोई और धंधा अपनाकर गुजर बसर कर लेते हैं। कुछ को घरों,छोटे–छोटे होटलों चाय की दुकानों,मोटर–स्कूटर मरम्मत के प्रतिष्ठानों आदि में नौकरी मिल जाती हैं। अनेक निराश्रित बालक बुरी संगति में फंसकर चोरी पाकेटमारी तथा अन्य प्रकार के अपराध भी करने लगते हैं। निराश्रित बालकों की समस्यों में संस्थागत देखभाल, प्रतिपालक देखभाल, शिक्षा स्वास्थ्य पोषाहार, निर्वाह तथा पुनर्वास की समस्याएं सम्मिलित हैं।

- **बाल अपराधियों की समस्याएं** :– बाल अपराध तो अपने में एक गंभीर समस्या है, लेकिन बाल अपराधियों में सुधार लाना और बाल अपराध को रोकना बाल कल्याण का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

आज देश में प्रतिवर्ष हजारों से अधिक बालक संझीन अपराध करते पकड़े जाते हैं। कई बालकों द्वारा किए गए अपराधों का पता नहीं लगता। पारिवारिक विघटन, सामाजिक नियंत्रण की शिथिलता निर्धनता की व्यापकता, अनैतिक वातावरण, प्रलोभनों में वृद्धि संरक्षा के अभाव तथा आचरण संबंधी मूल्यों में परिवर्तन के कारण देश में बाल अपराधियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। पाश्चात्य देशों में भी बाल–अपराध की समस्या गंभीर बनी हुई है। बाल अपराध के नियंत्रण के लिए निरोधक उपायों पर जोर देना अति आवश्यक है। समुचित शिक्षा और प्रशिक्षण, निर्धनता–उन्मूलन, पारिवारिक विघटन की रोकथाम, स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन नैतिक आचरण को प्रोत्साहन,संरक्षा तथा प्रभावी सामाजिक नियंत्रण के माध्यम ये अनेक बालकों को अपराध करने से रोका जा सकता है, लेकिन साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि जो बालक अपराध करने लगे हैं, उनके सुधार और पुनर्वास की व्यवस्था की जाए। आभ्यासिक बाल–अपराधियों के लिए समुचित संस्थान देखभाल की भी आवश्यकता होती है। बालक जन समुदाय के ही एक भाग होते हैं। इस कारण उनकी समस्याएं मानवीय संस्थाओं की प्रकृति से जुड़ी होती हैं। समुचित आर्थिक एवं सामाजिक विकास के बालकों के कई समस्याओं का समाधान आसानी से हो सकता है। बालकों की समस्याओं के समाधान के लिए परिवार की संरचना और कार्यों में सुधार तथा पारिवारिक सेवाओं का विस्तार भी आवश्यक है।

निष्कर्ष :– अंतराष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयासों के बावजूद आज भी यह स्थिति है कि बाल श्रम का पूरी तरह उन्मूलन नहीं हो पा रहा है। 1986 में बाल श्रम (प्रतिशोध व विनियम) अधिनियम पारित किया गया। 1988 में राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना लागू की गई। 1986–77 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा अनुसंधान, प्रकाशन एवं मानीट्रिंग हेतु सहायता अनुदान की योजना लागू की गई। चाइल्ड हेल्प लाइन सेवा 1998 में लागू की गई। जिसके अंतर्गत 24 घंटे बच्चों से संबंधित शिकायतें दर्ज की जा सकती है। इन सबके अलावा सरकारी प्रयास गति पर रहे। फिर भी बाल श्रम उन्मूलन पूर्ण रूप नहीं ले सका लेकिन इतना कहा जा सकता हैं कि बाल श्रम पर कुछ हद तक अंकुश लगा है परंतु निर्धनता, कुटीर उद्योगों का पतन, नियोक्ताओं को लाभ, नियमों की शिथिलता आदि जिनके कारण अभी भी समाज में बहुत सी कमियां नजर आती हैं जो बाल श्रम उन्मूलन के मार्ग में आज भी बाधा बनी हुई है।

संदर्भ सूची :–

- नान्सी एल. सदका (सूनीसेफ) : समेकित बाल–विकास सेवाएं पृ. 8
- ''बाल श्रम और अधिकार'' अमित मेहरा, गौरव बुक सेन्टर नई दिल्ली
- ''ट्रेड यूनियन संगठनों के नेतृत्व में बाल श्रम विरोधी अभियान'', श्रम जीवी त्रैमासिक, नई दिल्ली, जनवरी–मार्च पृष्ठ 93
- ''जनजातीय बाल श्रमिक'' समस्याएं और समाधान डॉ. (श्रीमति) समता जैन
- प्रेमलता गर्ग, बाल–कल्याण समस्याएं
- प्रिमरोज एडमनस,''पूर्व माध्यमिक स्तर के विद्यालय जाने वालेबाल श्रमिकों की शैक्षणिक एवं समायोजन संबंधी समस्याओं का अध्ययन'' रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, 1996–1997
- ''मानव अधिकार'' सुधारानी श्रीवास्तव, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
- प्रतिवेदन विश्व बाल सम्मेलन (यूनिसेफ), सिडनी, 2007 पृष्ठ 64
- बाल श्रम का उन्मुलन आई.एल.ओ. और बाल मजदूरी वसुंधरा पाटिल अमेरिकन इन्टरनेशनल जर्नल रिसर्च इन ह्यानिटज आटर्स एंज सोशल सांइसेस जून–अगस्त पेज न. 186–190
- बाल श्रम उन्मुलन पर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम 2013 – बाल श्रम के खिलाफ प्रगति चिहिन्त वैशिक अनुमान आई. एल. ओ. 2013
- ''अमेरिकी अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका का मानविकी में अनुसंधान 2014 ऐज सर्वअधिकार पृष्ठ संख्या 186''
- भारत सरकार समाज कल्याण तथा पिछड़ा वर्ग अध्ययन दल की रिपोर्ट, पृ. 115

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

संगीत समारोह के आयोजन में सरकारी संगीत संस्थाओं की भूमिका

स्मिता श्रीवास्तव
शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सार संक्षेप :– हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास के प्रथम काल वैदिक एवं मध्य युग में संगीत राजकीय संरक्षण एवं प्रशासन में ही विकसित तथा प्रसारित हुआ। समयानुसार आधुनिक काल में भी राज्यों तथा सरकारों की नीतियों एवं योजनाओं के अनतर्गत शास्त्रीय संगीत के कई संगीत समहारोहों का आयोजन विभिन्न संस्थाओं के माध्यम तथा दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के माध्यम से कराया जाने लगा। इन सब के अतिरिक्त अन्य कई माध्यमों से सरकार द्वारा शास्त्रीय संगीत के विकास तथा प्रचार–प्रसार के लिए कार्य किये जाने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शास्त्रीय संगीत के संरक्षण में सरकार की भागीदारी अत्यन्त तीव्र तथा सशक्त होने लगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रजातांत्रिक देशों में जहाँ एक ओर विष्णुद्वय के अथक प्रयत्नों से संगीत को समाज में लोकप्रिय, सर्वसुलभ तथा सम्माननीय स्थान दिलाकर संगीत को एक सुव्यवस्थित तथा सुनियोजित शास्त्र तथा प्रयोगात्मक पक्ष प्रदान किया वहीं प्रशासन के द्वारा की गई सरकारी योजनाओं की स्थापना तथा संगीत की निजी संस्थाओं को सहयोग की योजनाऐं चलायी गयीं जिससे संगीत का विकास तथा प्रचार प्रसार हो सका तथा संगीत को संरक्षण मिला। अपने शोध पत्र के अन्तर्गत मैने सरकार की इन्हीं संस्थाओं एवं योजनाओं का वर्णन किया है जिसमें सरकार के द्वारा संगीत के प्रचार प्रसार तथा कलाकारों के प्रोत्साहन एवं मंच प्रदर्शन हेतु उन्हें आर्थिक सहायता हेतु संगीत समारोहों का आयोजन किया जाता है।

मुख्य शब्द :– प्रशासकीय, सांस्कृतिक, विकासार्थ, शिष्ट मण्डल, शैक्षणिक, उदीयमान।

परिचय :– प्राचीन काल से ही ईश–स्तुति में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में उल्लिखित है – 'वेदानां समावेदोडस्मि' अर्थात वेदों में संगीत रूप सामवेद मेरा ही स्वरूप है। संगीत का मूलाधार नाद है, जो प्रणव–वाचक है और इसी ओंकार स्वरूप नाद ब्रह्मा से संगीत की उत्पत्ति हुई है संगीत प्राचीन काल से ही मनुष्यों की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है और मनुष्यों की अपनी यही अभिव्यक्ति समूहों में गा–बजाकर अभिव्यक्त करना कहीं न कहीं संगीत समारोहों के आरम्भ का बीजारोपण है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक संगीत को संरक्षित और उसका प्रचार–प्रसार करने में संगीत समारोह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

संगीत समारोह का आयोजन सर्वथा किसी न किसी संस्था अथवा समिति द्वारा ही किया जाता रहा है भले ही हर काल में इन संस्थाओं तथा समारोहों के नाम भिन्न रहे हो किन्तु इनका उद्देश्य प्रत्येक युग में संगीत का विकास ही रहा है। हमारे देश में संगीत का संस्था द्वारा विकास का एक प्राचीन इतिहास रहा है।

आधुनिक युग संगीत कला के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से संगीत का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। देश में आज विभिन्न अवसरों पर सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा संगीत समारोहों का आयोजन किया जा रहा है। संगीत समारोह के आयोजन में अगर हम सरकारी संस्थाओं की भूमिका की बात करें तो स्वतन्त्र भारत की नीतियों से केन्द्रीय एवं प्रान्तीय स्तर पर संगीत समारोहों के आयोजन तथा संगीत की अन्य गतिविधियों के लिये काफी प्रोत्साहन मिला है।

प्रशासकीय प्रयत्नों के परिणामस्वरूप, संगीत उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हुआ। संगीत को समाज में प्रतिष्ठित करने वाली महान विभूतियों पं. विष्णु दिगम्बर पुलस्कर एवं विष्णु नारायण भातखण्डे के प्रयत्नों को सार्थकता प्रदान करते हुये सरकार द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापना की गई। संगीत की सार्वजनिक सुलभता और संगीत–शिक्षण आधुनिक काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।[1]

बीसवीं शताब्दी में सरकार द्वारा संगीत कला के विकासार्थ, संगीत शिक्षण की सामूहिक पद्धति के अतिरिक्त कतिपय अन्य योजनाएँ भी प्रारम्भ की गई, जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न संगीत सेवी संगठन अस्तित्व में आये तथा केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर संचालित इन अकादमिक संस्थान के द्वारा, न केवल सांगीतिक विकास ही हुआ है अपितु इनके द्वारा समस्त राष्ट्र को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोने में भी सफलता मिली है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संगीत, समारोह सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम लोकोत्सवों एवं मेलों का देश विदेश में आयोजन, कला एवं कलाकार को संरक्षण प्रदान कार

[1] भारतीय संगीत के विकास हेतु प्रशासन तंत्र की भूमिका– संगीता– पृ. सं.– 223–224

नवीन उदीयमान प्रतिभागों को अवसर प्रदान करने जैसे कार्यक्रमों के द्वारा विभिन्न संगीत सेवी संस्थान इस दिशा में माहत्वपूर्ण योगदान दे रहे है।

सरकारी नीतियों एवं योजनाओं के अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना पर केंद्रित होने से, भारतीयों को जहाँ विदेशी सभ्यता एवं सांस्कृतिक को निकट से जानने–समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, वहीं विदेशी छात्रों को भी आर्थिक सहायता प्रदान कर सांगीतिक शिक्षा के साथ–साथ भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक निधि एवं स्मारकों से देश की उन्नत सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित करवाया जाता है।

आधुनिक काल में विभिन्न संस्थाओं ने संगीत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन सरकारी संगठनों या संस्थाओं में से कुछ तो वे हैं जो शिक्षा पर विशेष बल देकर शैक्षणिक नीतियां बनाती हैं तथा कुछ संस्थायें प्रचार–प्रसार संबंधी नीतियों का निर्धारण करती है। फिर भी संगीत की शिक्षा, प्रचार तथा प्रसार को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। ये दोनों निरन्तर एक–दूसरे से प्रभावित रहकर ही संगीत कला के सम्यक विकास में योगदान देते है।

सरकार द्वारा स्थापित इन संगठन अथवा संस्थाओं को इनकी नीतियों व योजनाओं की प्रधानता की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. शैक्षणिक नीतियों व योजनाओं की प्रधानता की दृष्टि से।
2. प्रचार व प्रसार सम्बन्धी नीतियों व योजनाओं की प्रधानता की दृष्टि से।

प्रथम वर्ग में तीन प्रकार के संगठन आते है–

- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
- विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा का प्रारूप

द्वितीय वर्ग में निम्न संगठन सम्मिलित है–

- मानव संसाधन विकास मन्त्रालय
- उत्तर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र पटियाला
- संगीत नाटक अकादमी
- आकाशवाणी एवं दूरदर्शन
- गीत एवं नाटक विभाग दिल्ली
- भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
- स्पिक मैके
- नेशनल सेन्टर फॉर परफर्मिंग आट्र्स मुम्बई
- संगीत शोध संस्थान, कोलकाता[2]

अपने शोध विषय के इस आध्याय के अन्तर्गत मैने सरकार द्वारा स्थापित संगीत की प्रचार–प्रसार संबंधित संस्थाओं का ही उल्लेख किया है।

स्वतन्त्रता के उपरांत संगीत की उन्नति के लिए सरकार द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण योगदान–

- देशी राज्यों की समाप्ति के उपरांत राज्यों के प्रसिद्ध संगीतकारों को सरकारी आर्थिक सहायता, पेशन, प्रमाण पत्र और उपाधियों प्रदान करना।
- संगीतकारों तथा अन्य प्रमुख उदीयमान कलाकारों को रेडियो द्वारा कार्यक्रम देने में उनकी सहायता करना।
- संगीतकारों के कार्यक्रम की रिर्काडिंग एवं टेप रिर्काडर द्वारा उनके संगीत को चिर–स्थाई करना, कलाकारों को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित करना।
- अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों का राजकीय तथा अन्य संस्थाओं द्वारा आयोजन एवं भारत सरकार द्वारा प्रतिवर्ष दिल्ली एवं अन्य स्थानों पर विराट संगीत समारोहों का आयोजन कर संगीत के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा देना।
- नवोदित कलाकारों को सरकारी छात्रवृत्ति देना जिससे वे बड़े संगीतकारों के निर्देशन में अपनी कला का विकास कर सके।
- संगीत की बहुमुखी उन्नति और शोध कार्य को लिए भारत सरकार द्वारा संगीत अकादमी का निर्माण। जिनके माध्यम से संगीतकारों पर पुस्तकों का प्रकाशन कार्य होने लगा तथा विभिन्न संगीत समारोहों के आयोजन किये जाने लगे।
- भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण प्रयास विदेश भ्रमण करने वाले शिष्ट मण्डलों में संगीतकारों को भेजा जाना है जिससे कि विदेशों में भी भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति रूचि और आदर की भावना जागृत हो सके।
- संगीत के उत्थान में सक्रिय अन्य निजी संस्थाओं के साथ सहयोग एवं अनुदान प्रदान कर सहायता देना।[3]

---

[2] भारतीय संगीत के विकास हेतु प्रशासन तंत्र की भूमिका– संगीता– पृ. सं.– 227

[3] आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत– हुकुमचन्द्र– पृ.सं. – 143

शास्त्रीय संगीत समारोह से संबंन्धित निजी संस्थान :— स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संगीत का विभिन्न दिशाओं में विकास हुआ। विकास के इस चरण में निजी संस्थाओं का भी विशेष योगदान रहा। आरम्भ में कुछ ऐसी संगीत की निजी संस्थाओं का विकास हुआ जिन्होंने देश की महान विभूतियों की स्मृति में संगीत समारोह का आयोजन किया इनमें मुम्बई का 'सुर गिंार समसद' प्रमुख है जिसने वृंदावन में प्रथम बार स्वामी हरिदास सगीत सम्मेलन आयोजित कराया। इस प्रकार की संस्थाओं के आगमन से उन स्थलों को संगीतकारों का तीर्थ स्थान बना दिया। भविष्य में इन्ही संगीत संस्थाओं से प्रेरणा प्राप्त कर नगरों में संस्थानों की स्थापना होने लगी।

ये संगीत संस्थान कलाकारों को मंच प्रदर्शन का भी अवसर प्रदान करती है तथा इनके द्वारा आयोजित कार्यक्रमों के माध्यम से आज हजारों की संख्या में श्रोताओं की वृद्धि हो सकी है, यो विशिष्ट कलाकारों के सम्मुख बैठकर प्रत्यक्षतः उनके सगीत कार्यक्रम को सुन सकते है। इस प्रकार इन संस्थाओं के माध्यम से जहाँ श्रोताओं को कलाकारों का संगीत सुनने का अवसर प्राप्त होता है वही कलाकारों को भी अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त होता है।

संगीत की ये संस्थान महान दिग्गजों को विशेष अवसरों पर मानपत्र एवं उपापियां भी प्रदान करने का कार्य कर रही है। इसके अतिरिक्त ये कलाकारों को आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रही है। भारत सरकार एवं निजी संगीत संस्थानों द्वारा संगठित रूप में संगीत के विकास का यह प्रशंसनीय कार्यक्रम निर्बाध रूप से चल रहा है। इन संस्थान द्वारा आयोजित संगीत समारोह शास्त्रीय संगीत के वर्तमान स्वरूप में इमारत के स्तम्भ सदृश्य है।

निजी संस्थाओं के विकास ने हमारे देश की महान–विभूतियों की स्मृति में संगीत सभाओं के आयोजन का कार्य भी किया है– जैसे मुम्बई की सुर गिंार समसद, तानसेन समारोह, स्वामी हरिदास संगीत समारोह, जालन्धर का हरिवल्लभ संगीत समारोह, शंकर लाल संगीत समारोह आदि विशेष उल्लेखनीय है। कुछ निजी संगीत संस्थान–

- कल्याण गायन समाज (महाराष्ट्र)
- उत्कल संगीत समाज (कटक)
- उड़ीसा सरस्वती संगीत विद्यालय (बैंगलोर)
- कर्नाटक संगीत महाविद्यालय (राष्ट्रीय शाला) (राजकोट)
- गुजरात नेशनल म्यूजिक ऐसोसिएशन (कटक) उड़ीसा
- श्री हुबली आर्ट्स सर्कल संगीत समाज (हुबली)
- सुर सिंगार समसद (मुम्बई)
- महाराष्ट्र संगीत कला प्रसारक संघ (बंगलौर) कर्नाटक
- संगीत नाट्य निकेतन (उदयपुर) राजस्थान
- प्राचीन कला केन्द्र चंडीगढ़

शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में केन्द्र सरकार का योगदान :– स्वतंत्र भारत में केन्द्र सरकार ने संगीत संबंधी कई महत्वपूर्ण योजनाओं पर कार्य किया है जो इस प्रकार है

1. भारत की सांस्कृति एवं कला की उन्नति के लिए केन्द्र ने अकादमियों की स्थापना की। इन अकादमियों में कला, नृत्य, नाटक, संगीत एवं साहित्य आदि विषयों के प्रोत्साहन हेतु इनका समावेश किया गया है।
2. समय–समय पर राज्य सभा में कला के विशिष्ट ज्ञाता को राज्यसभा का सदस्य नियुक्त किया जाता है।[4]
3. सांस्कृतिक विभाग के अंतर्गत निम्नलिखित कलाओं का उल्लेख किया गया है– चित्रकला, वास्तुकला, स्थापत्य कला, हस्तकला आदि। इसके साथ ही युवा पीढ़ी को प्रोत्साहन, प्रतिभावान छात्र फेलोशिप (उम्र 26 से 65) तथा जरूरतमंद कलाकारों के आर्थिक सहायता के उद्देश्य से ललित कला अकादमी, नेशनल गैलरी आफ मार्डन आर्टस, संगीत नाटक अकादमी नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, साहित्य अकादमी की स्थापना भी की गई है।

भारत अनेक अन्य देशों से अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित कर अपने देश के विभिन्न प्रान्तों और विदेशों के साथ सांस्कृतिक आदान–प्रदान सम्बन्धी संगीत समारोहों के कार्यक्रमों का आयोजन कर भारतीय संगीत का विस्तार कर रहा है। भारत के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का मुख्य मंत्रालय, 'यूनियन मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन एण्ड कल्वर' है। अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का कार्य इंडियन नेशनल कमीशन तथा यूनेस्को के सहयोग से होता है।

विश्लेषण :– मानव समाज के किसी भी काल में उस राज्य का प्रशासन उसकी सांस्कृति और समाज की सुव्यवस्थित गतिविधियाँ बहुत ही आवश्यक घटक रही

[4] हिन्दुस्तानी संगीत परिवर्तनशीलता– असित बैनर्जी–पृ. सं.–110

हैं क्योंकि सरकार द्वारा अथवा प्रशासन द्वारा मनुष्य के प्रयासों का उचित समायोजन, निर्देशन और नियंत्रण संभव हो पाता है। जिससे समाज में हो रही सांस्कृतिक उत्सवों, सभाओं तथा समारोहों का समय समय पर सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त निजी संस्थाओं द्वारा सफल आयोजन संभव हो पाता है।

जिस प्रकार स्वतंत्रता के बाद सरकारों द्वारा संगीत के संरक्षण और प्रचार प्रसार का कार्य विभिन्न संगीत संस्थाओं एवं संगीत समारोहों के माध्यम से किया जा रहा है, इन सब में सरकार की और सरकारी संस्थाओं की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। संस्थाओं द्वारा निरंतर संगीत समारोहों का आयोजन तथा कलाओं कलाकारों को सम्मान तथा अवसर देने का ही परिणाम है कि आज संगीत हर घर में आसानी से पहुँच रहा है। लोग आज भी शास्त्रीय संगीत सुन रहे हैं। समारोहों में आकर संगीत का आनंद उठा रहे हैं और शास्त्रीय संगीत का संरक्षण तथा प्रचार प्रसार हो रहा है साथ ही कलाकारों को भी सहियोग प्राप्त हो रहा है।

शास्त्रीय संगीत के विकास में सरकार की नीतियों और योजनाओं के अन्तर्गत स्थापित सरकारी संस्थाओं एवं निजी सहायता प्राप्त संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य भारतीय संगीत का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार है जिसमें संगीत समारोहों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है इन्हीं समारोहों के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय संगीत देश विदेश में सशक्त पहचान बनाने में सफल हुआ है और हमारी संगीत कला और कलाकार दोनों समृद्ध तथा लाभान्वित हुए हैं।

निष्कर्ष :– आधुनिक काल में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न सरकारी संस्थाओं ने संगीत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसके कारण न केवल भारतीय संगीत उन्नत एवं समृद्ध हुआ है बल्कि समान्य जनाता में संगीत के प्रति चेतना तथा उत्सुक्ता जागृत हुई है। जनसाधारण में संगीत के प्रति लगाव तथा सम्मान बढ़ा है। संगीत में संगीत के विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा कलाकारों के लिये नये आयाम तथा अवसर मिले हैं। साथ ही साथ क्योंकि संगीत एक प्रर्दशन कला है तो संस्थाओं द्वारा विभिन्न संगीत समारोहों के आयोजनों से निश्चित रूप से संगीत कला तथा कलाकार दोनों का प्रचार प्रसार देश विदेश में हुआ और हमने भी दूसरे देशों के संगीत को सुना और समझा है। जिससे सांस्कृतिक एकता चेतना तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को बल मिला है।

अतः शास्त्रीय संगीत के विकास तथा प्रचार प्रसार में संगीत समारोहों का आयोजन संगीत संस्थाओं के द्वारा किये गये कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि संगीत समारोह ही एक ऐसा माध्यम है जहाँ कलाकार और श्रोता आमने सामने होकर संगीत कला के प्रदर्शन का आनंद ले सकते हैं और कलाकार अपनी प्रस्तुति का प्रभाव श्रोताओं पर तत्काल प्रत्यक्ष रूप से देख सकता है।

संगीत समारोह ही ऐसा माध्यम है जिससे हम अपना संगीत दूसरे देशों में तथा दूसरे देश का संगीत हम देश में प्रस्तुत कर सकते हैं और इन सब में सरकार द्वारा आयोजित राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगीत संस्थाओं की भूमिका सबसे अहम होती है क्योकि सरकार द्वारा स्थापित इस संगीत संस्थों का मुख्य उद्देश्य ही संगीतिक एवं सास्कृतिक गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को प्रोत्साहित करके उसके माध्यम से देश की सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

- भारतीय संगीत के विकास हेतु प्रकाशन तंत्र की भूमिका– डॉ. संगीता
- आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत– डॉ. हुकमचन्द
- हिन्दुस्तानी संगीत परिवर्तनशीलता– बनर्जी असित
- उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा– कपूर तृप्त
- भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर– सक्सेना डॉ. मधुबाला
- भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार करने में संगीत नाटक अकादमी तथा भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की भूमिका एक समीक्षात्मक अध्ययन– पराशर स्मिता

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

समाज एवं उच्च शिक्षा में मूल्य क्षरण : साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

दिलीपभाई जयसिंग वसावा
(एम.ए., एम.एड्., एम.फिल., नेट (हिन्दी), जीसेट (एज्युकेशन), पीएच.डी. (चालू)
शोध छात्र, डिपार्टमेंट ऑफ एज्युकेशन, वल्लभ विद्यानगर

आज समग्र विश्व समाज में मूल्यों का परिवर्तन नहीं, क्षरण हो रहा हे। समस्त समाज इसी जीवन–मूल्यों के अवमूल्यन से आक्रान्त है। मृगमरिचिकारूप सुख की खोज में आज का मानव एक ऐसी अन्धी दौड़ में शामिल हो गया है जिसका कोई अंत नहीं। भौतिकवादिता की घनी चक्की में पिसकर आध्यात्मिकता विलुप्त हो गई है।

धृतिः क्षमा दमोडस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम।।

जैसे धर्ममय मानव–मूल्य केवल पुस्तकस्थ सिद्धांत मात्र रह गए हैं। आज समाज में प्रतिष्ठा पाने का एक सीधा– सादा तरीका मानव ने खोज लिया है की ढेर सारा धन कमाकर दुनिया की हर खुशी खरीद लो। 'तेन व्यक्तेन भुज्जीथाः' जैसे औपनिषद उपदेशों का कोई पालन करने वाला नहीं। बाजारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति बढ़ती ही जा रही है। अच्छी–से–अच्छी सुविधाएँ और विलासिताएँ मिलना ही जीवन का लक्ष्य रह गया है। अब इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता की जिस धन से ये सुविधाएँ मिल रहीई है वह धन किन साधनों से कमाया गया ह। यही मूल्यों का क्षरण है। काले धन के साधनों के बारे में सोचने की न किसी को फुर्सत है और न इच्छा। ग्लेमर और सैक्स खुशी का पर्याय बन गए हैं। इन सब तत्वों पर आधारित तेज जीवन–शैली ही आज के मनुष्य की जीवन का मूल मन्त्र है।

इन सारी स्थितियों को देखते हुए कह सकते है की हम वस्तुतः उन धागों को तोड़ चुके हैं जो हमें अपनी जड़ो स्व जोड़े रखते थे, जो हमारी संस्कृति की पहचान थे। भारतीय संस्कृति ही 'आत्मवत सर्वभूतेषु' 'वसुधैव कुटुम्बकम' 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सिद्धांत वाक्यों का दिन्दिमनाद करती रही। इसी ने मनुष्य को पृथ्वी, पेड़, पौंधो और प्राणिमात्र से प्रेम करना ही नहीं, उनकी पूजा भी करना सिखाया है। प्रकृति के महान उपादक हमारे पूज्य देव हैं, दोहन के साधन नहीं। इस सहिष्णुता और उदारता के मूल्यों का अनुदिन क्षरण हुआ है और हो रहा है और इसके परिणाम ही हैं आज के जीवन की अकुलाहट, हिंसा, आतंकवाद आदि।

यही है आज का समाज और इसी समाज में पनप रही है हमारी शिक्षा और उच्च शिक्षा, जहाँ इस असहिष्णुता, कुंठा, हिंसा और आकुलता के दर्शन होते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति में इन शिक्षा केन्द्रों और गुरूकुलों को नगरों के प्रदुषण से बहुत दूर रखा जाता था, परन्तु आज के हमारे शिक्षा–मन्दिर वर्त्तमान युग के सारे प्रदूषणों से युक्त हैं और उनमें सबसे बड़ा प्रदुषण है राजनीति। दिन–प्रतिदिन इन पवित्र विध्या केन्द्रों पर राजनीति और राजनेताओं का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। राजनीति के दूषित दलदल से पावन ज्ञानगंगा मैली होती जा रही है। शासन सत्ता पर बैठा तंत्र बिना किसी कारण के ऐसे फरमान जारी करता रहा है, जो शिक्षा के मूल स्वरुप पर ही कुठाराघात करते है। उत्तर प्रदेश का एक उदाहरन देखे तो विगत वर्षो में कई बार सरकारे बदली, आई और गई। एक सरकार ने उच्च शिक्षा में सुधार की योजना लागू करते हुए यह व्यवस्था की कि २५ वर्ष से ऊपर की आयु का कोई भी छात्र छात्रसंघ का चुनाव नहीं लड़ सकेगाद्य जब तक यह परिसर–शुद्धिकरण का आदेश विधिवत् क्रियान्वित हो पाता, तब तक दूसरी सरकार ने सत्तासीन होते ही इस व्यवस्था को भंग कर दिया और दो–तीन वर्षो बाद परिसरों में लोट आई फिर वही अराजकता। जो अराजक तत्व विश्वविद्यालयों–महाविद्यालयो के परिसर को छोड़कर चले गए थे, वे सब पुनः परिसरों को अपना राजनैतिक अखाडा बनाने वापस आ गए। जिनका विध्या से दूर–दूर तक कोई सबन्ध नहीं है, वे विध्यार्थी के तथाकथित प्रतिनिधि बन गए और परिसरों का प्रदूषण करने में लग गए। उच्च शिक्षा के केन्द्रों–विश्वविद्यालयों और महाविध्यलायो में छात्रसंघ चुनावो में राजनैतिक दलों, राजनेताओ और शासनतंत्रों के इस खुले खेल को देखा जा सकता है। चाहे छात्र हो या अध्यापक, राजनीति से जुड़ते ही, नेता उपाधि धारण करते ही, उसका अध्ययन–अध्यापन गौण होता जा रहा है और 'एडमीशन' और 'एक्षामिनेशन' प्रधान होता जा रहा है। सारी जोर आजमाइश करके किसी तरह प्रवेश मिल जाए और फिर येन–केन–प्रकारेण परीक्षा–सागर उत्तीर्ण कर लें, यही वार्षिक चर्चा हो गई है। जो अनुचित साधनों से प्रवेश और परीक्षा पास करेगा, वही आगे चलकर अनुचित

साधनों से नौकरी भी पाना चाहेगा और उसे मिल भी जाएगी। बल्कि नौकरी भी उसे ही मिलेगी, अध्यवसायी या प्रतिभावना को नहीं, क्योंकि रुपयों से भरी थैली भेंट के लिए जिसके पास होगी, वही इस नौकरी रूपी वधू का वरण कर पाएगा। ऐसे भ्रष्टाचार एवं राजनैतिक हस्तक्षेप का शिकार हो रही है आज की उच्च शिक्षा। जो समाज में हो रहा है वही शिक्षा–केन्द्रों में हो रहा है।

अब हमारे लिए विचारणीय विषय यह है कि समाज के इस परिवर्तमान मूल्यों के परिद्रश्य में साहित्य की भूमिका क्या हो सकती है। साहित्य समाज का केवल दर्पण ही नहीं होता, अपितु समाज को सही दिशा देने में भी उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रामायण का काल रहा हो या रामचरितमानस का, साहित्यकारों ने अपनी इस भूमिका को सर्वदा निभाया है। साहित्य युगांतरकारी हो सकता है। यह सोए हुए राष्ट्र को जगा सकता है, स्वतंत्रता–संग्राम के लिए समाज को सावधान कर सकता है। साहित्य ने समय–समय पर ऐसा किया है। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के काल में भारत की विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य ने ही भारतीयों, विशेष रूप से युवाओं को स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी थी द्य हर भाषा के काव्य, नाटक, उपन्यास सब एक ही स्वर में बोल रहे थे द्य परतंत्रता के विरुद्ध बिगुल बजाने में साहित्य की प्रमुख भूमिका रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज में जो परिवर्तन आए, तदनुसार अनेक सामाजिक समस्याओं पर साहित्य का स्वर मुखर होने लगा। समाज में दहेज–प्रथा, नारी–उत्पीडन, भ्रष्टाचार, आतंकवाद जैसी विकराल समस्याएँ सामने आई तो साहित्यकारों ने उन पर लेखनी चलाई। केवल संस्कृत–साहित्य का ही उदहारण लें तो देखेंगे की विगत तीन–चार दशकों में संस्कृत में दहेज–प्रथा के विरुद्ध सैकडों कविताएँ लिखी गई, बीसों नाटक लिखे गए। उनके कुप्रथाओं और भ्रष्टाचार के विरुद्ध साहित्य के तीखे स्वर सुनाई दिए। उनके व्यंग काव्य लिखे गए और समाज की विकृतियों पर गहरी चोटें की गई, युग की विसंगतियों पर कठोर प्रहार किए गए। परमणु बम के प्रयोग पर संस्कृत के कवि हर्षदेव माधव ने कहा "बुद्धस्य भिक्षापात्रे निमज्जितमस्ति अणुबोम्बदग्धंनगरम" मानव–जीवन के भक्षक हर युद्ध पर साहित्यकाल ने अपनी हुँकार भरी। हर साम्प्रदायिक दंग पर साहित्यकार ने अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। अमेरिका पर जब आतंकवादी हमला हुआ तो संस्कृत–कवि रेवाप्रसाद द्विवेदी ने 'होमो निषेधानले' कविता लिखकर वेदना व्यक्त की कि आज मनुष्य ने मानवता को मारकर किस तरह आत्मघात किया है।

साहित्य समग्र समाज और उसमें पनपने वाली उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान कर सकता है, यदि वह 'सत्यं' के साथ–साथ 'शिवं' एवं 'सुन्दरं' का समुचित समन्वय करने चलेद्य आजकल नग्न यथार्थ एवं भोग हुआ यथार्थ के नाम से जो साहित्य समाज के सामने परोसा जा रहा है, यह युवा पीढ़ी को विशेष रूप से दिग्भ्रमित कर रहा है। आदर्शोन्मुख सत्साहित्य ही समाज को सही दिशा दे सकता है। साहित्य 'शिवेतर' की 'क्षति' के लिए होता है। आधुनिक उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रमों में निर्धारित ऐसा सत्साहित्य हुं मूल्यों के अवमूल्यन को रोक सकता है। साहित्य ही उच्च शिक्षा के केन्द्र विश्वविद्यालयों–महाविद्यालयों को जड़ यान्त्रिक मुर्तियाँ बनाने वाला कारखाना बनने से रोक उन्हें संस्कारमय, संवेदनशील मनुष्य बनाने वाला गुरुकुल बना सकता है।

सन्दर्भ :–

- आहूजा, राम–भारतीय समाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, जयपुर–३०२००४
- डगर, बी.एस.–शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।
- दुबे, श्यामचरण– समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–११००२
- डॉ. अब्दुल कलाम–इक्कीसवी सदी का भारत, नवनिर्माण की रूप रेखा, वाई सुन्दर राजन, हिन्दी अनुवाद–हरिमोहन शर्मा, राजपाल एंड संस, कश्मीर गेट दिल्ली।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों का अध्ययन बालाघाट जिले के विशेष सन्दर्भ में

सुप्रीत कौर (शोधार्थी)
डॉ. पी.एस. कातुलकर
शासकीय जटाशंकर त्रिवेदी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बालाघाट (म.प्र.)

सारांश :– किसी देश या राज्य के प्राकृतिक संसाधन में वनों एवं वनोपजों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से वनोपजों की अहम् भूमिका है। ग्रामीणों एवं आदिवासी क्षेत्रों में स्थानीय लोग लघु वनोपज एकत्र एवं विक्रय करके अपनी आर्थिक एवं दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करते है साथ ही देश को बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की प्राप्ति भी होती है। लघु वनोपजों के संग्रहण एवं विपणन का कार्य सन् 2004 से प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों द्वारा किया जा रहा है, जिससे अब किसानों व वनवासियों के शोषण का अंत हुआ है, प्रस्तुत शोध पत्र इसी विषय से संबंधित है।

किसी भी देश के प्राकृतिक संसाधनों में वनों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। वन विश्व के लिए वातानुकूलन तथा पृथ्वी के लिए आवरण तथा आभूषण का कार्य करते है। हजारो सालो से वन आदिवासी समाज के आनंदपूर्ण निवास स्थल रहे है। वनों के कारण ही आदिवासी समाज के रोजगार समृधि एवं संस्कृति के विकास को बल मिला। वनों से आदिवासी दिन–प्रतिदिन की जरूरते पूरा करने के लिए वनोपज एकत्र करते है। महिलाये, वृद्ध, नवयुवक सभी वनों से ही खाद्य–सामग्री प्राप्त करते है। वनोपज का संग्रहण आदिवासी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। भारत का हृदयस्थल मध्यप्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण वन–सम्पदा तथा खनिज–सम्पदा दोनों में धनी है। इनके वनों से मिलने वाली इमारती लकड़ी एवं वनोपजों का राज्य की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। राज्य की लगभग 21 प्रतिशत जनसँख्या जिनमें मुख्य रूप से आदिवासी एवं समाज के कमजोर वर्गों के सदस्य है, वनों से लघु–वनोपजों के संग्रहण पर मुख्य रूप से निर्भर रहती है।

सारणी 1.1
भारत में वनों की स्थिति पर राज्यवार आकड़े

भारत में सर्वाधिक वन क्षेत्रफल वाले राज्य (वर्ग km)	क्षेत्रफल
मध्यप्रदेश	77414
अरुणाचल प्रदेश	66964
छत्तीसगढ़	55547

मध्यप्रदेश बुनियादी रूप से वन एवं वनवासियों का प्रदेश है। यहाँ की अधिकांश भूमि, कृषि की तुलना में वनों के योग्य अधिक है। यहाँ के अधिकांश आदिवासी जो की देश की समूची जनसँख्या का 8.6 प्रतिशत(2011 के आकड़ो के अनुसार) है जन्मतः और संभवतः वानिकी क्षेत्रों में सक्रिय हैस वानिकी क्षेत्र में वर्ष भर में लगभग करोड़ मानव दिवस को रोजगार देता है।

प्रदेश का अकेला बालाघाट जिला 70 प्रतिशत वन आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता रखता है। वनों से प्राप्त होने वाली लघु वनोपजो में तेंदूपत्ते का विशेष महत्व है। लघु वनोपजो में सालबीज, हर्रा एवं गोंद भी मुख्य है। राष्ट्रीकृत वनोपजो के अंतर्गत तेंदुपत्ता, सालबीज, हर्रा एवं गोंद शामिल है।

बालाघाट जिले का वर्षवार उत्पादन 1.2

मद	इकाई	2008-2009	2009-2010	2010-2011	2011-2012	2012-2013
वन के अंतर्गत कुल फल	हेक्टयर	504986	486066	486066	486066	486066
बास	टन में	87688	87688	55099	10010.265	11012.25
तेंदुपत्ता	मानक बोरा(वटल)	7341	6884	3017	104287.407	109315.10

सालबीज		0	11059	15752	1126.46	1213.25
हर्रा		0	0	0	0	0
गोंद		0	0	0	0	0

स्त्रोत–समस्त वनमंडलाधिकारी

जिले में सामान्य वनमंडल, उत्तर दक्षिण एवं उत्पादन वनमंडल उत्तर, दक्षिण, पश्चिम सामान्य तथा उत्पादन के 5 कार्यालय कार्यरत है। वर्तमान में सयुक्त वन प्रबंधन के अंतर्गत वन सुरक्षा समितियों तथा ग्राम वन समितियों का गठन करके वन प्रबंधन में ग्रामीणों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जा रही है। जिले की आदिवासी जनसंख्या प्रमुख रूप से प्राप्त होने वाली लघु वनोपजो के संग्रह एवं काष्ट विदोहन के कार्य से अपनी जीविका चलते है।

सारणी 1.3

सहकारी संस्थाओ की संख्या सदस्यता तथा कार्यशील पूंजी

वर्ष	साख समितियाँ				गैर–साख समितियाँ		अन्य		कार्यशील पूँजी (हजार रूपये में)			
	कृषि		गैर–कृषि						साख समितियाँ		गैर–साख समितियाँ	
	संख्या	सदस्यता	संख्या	सदस्यता	संख्या	सदस्यता	संख्या	सदस्यता	कृषि	गैर–कृषि	गैर–साख	अन्य
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
2008-09	114	198442	379	44585	13	4777	0	0	10575	1	0	0
2009-10	126	281037	14	2000	0	0	0	0	0	0	0	0
2010-11	126	298359	19	3075	512	38801	08	8655	11232	33780	1664748	33586
2011-12	126	268509	19	3030	514	111344	08	5369	1989629	49453	3264041	43534
2012-13	126	265060	339	72960	20	11011	08	5688	2761499	100304	54984	43836

स्त्रोत–समस्त वनमंडलाधिकारी

बालाघाट जिले के प्राथमिक आकड़ो के अध्ययन से पता चलता है कि जिले में 2 वनमंडल है, क्रमशः–

1) उत्तर वनमंडल
2) दक्षिण वनमंडल

उत्तर वनमंडल के अंतर्गत कुल 31 समितियाँ कार्य कर रही है, जो इस प्रकार है–: समनापुर, चरेगांव, लामता, नगरवाडा, कुमनगाँव, सावरझोड़ी, परसवाडा, खालौंडी, बघोली, खुरमंडी, बैहर, बोदा, कुमादेही, भंडेरी, मोहगांव, चिखलाझोड़ी, उकवा, किनारदा, पाथरी, बिठली, डाबरी, पल्हेरा, बिरसा, सेरपार, दमोह, कचनारी, सालेटेकरी, मछुरदा, मंडई, गढ़ी, पंदुतला।

इसी प्रकार दक्षिण वनमंडल के अंतर्गत कुल 29 समितियाँ हैः–

गोरेघाट, महकेपार, सीतापठोर, तिरोडी, बोनकट्टा, लोहाग्री, पुलपुट्टा, अमई, बुदबुदा, पुलपुट्टा, नैतरा, मेंढकी, कनकी, लालबर्रा, लौगूर, बालाघाट, जरेरा, धनसुआ, माटे, कावेली, बटकरी, किन्ही, देवरबेली, नेवरवाही, घोटी, लांजी, चौरिया, लोढ़ागी, रिसेवाडा, बम्हनवाडा।

उपर्युक्त समितियों का गहन अध्ययन तथा प्राथमिक समंक एकत्रित करने के बाद वनमंडलों का तुलनात्मक अध्ययन इस आधार पर किया जा सकता हैः–

पिछले 3 वर्षो में उत्तर एवं दक्षिण वनमंडल द्वारा संगृहित तेंदुपत्ता की मात्रा

वर्ष	उत्तर वनमंडल	दक्षिण वनमंडल
2013	67161.170	55534.100
2014	62547.165	43505.945
2015	36764.015	28358.440
कुल	166472.35	127398.485

स्त्रोत– उत्तर एवं दक्षिण वनमंडल बालाघाट

पिछले 3 वर्षो में उत्तर एवं दक्षिण वनमंडल द्वारा वितरित प्रोत्साहन की राशि

वर्ष	उत्तर वनमंडल	दक्षिण वनमंडल
2013	48841064.67	19924284.99
2014	37730274.49	12164897.16
2015	23137824.80	10748405.74
कुल	65752263.96	42837587.89

स्त्रोत– उत्तर एवं दक्षिण वनमंडल बालाघाट

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है की पिछले 3 वर्षो में उत्तर एवं दक्षिण वनमंडल में तेंदुपत्ता संग्रहण दक्षिण वनमंडल की अपेक्षा उत्तर वनमंडल में अधिक हुआ है तथा वितरित पारिश्रमिक भी उत्तर वनमंडल में अधिक है। अतः प्राथमिक समंको के संग्रहण से यह स्पष्ट होता है की पिछले 3 वर्षो में उत्तर वनमंडल ने अधिक तेंदुपत्ता संग्रहण तथा पारिश्रमिक वितरित किया है।

वनोपज सहकारीकरण की उपलब्धियाँ :– वनोपज सहकारीकरण की उपलब्धियाँ एवं सुपरिणाम बहुआयामी है। सहकारीकरण से जहां एक ओर वनवासी एवं श्रमिक वर्ग को शोषण से मुक्ति मिली है और इसके साथ ही उन्हें अपनी वनोपज का उचित प्रतिफल, संग्रह कार्य की उचित मजदूरी तथा वर्ष में अधिकाधिक दिनों का रोजगार प्राप्त हुआ है। इन सबके परिणामस्वरूप वनोपज संग्रहण एवं व्यवसाय में संलग्न स्थानीय लोगो की आय में पूर्वापेक्षा कई गुना वृद्धि हुयी है वही दूसरी ओर राज्य सरकार के राजस्व में भी तुलनात्मक वृद्धि स्पष्ट परिलक्षित होती है।

वनोपज सहकारी समितियों की प्रमुख समस्याये :– मध्यप्रदेश में वनोपज व्यवसाय के सहकारीकरण का मूल उद्देश्य प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों के माध्यम से वनोपजो के संग्रहण, भण्डारण एवं विपणन इत्यादी में संबंधित व्यवसाय से मध्यस्थों को समाप्त कर वनवासी अनुसूचित जाति, जनजाति, आर्थिक–सामाजिक रूप से पिछड़े व कमजोर वर्ग के लोगो को शोषण से मुक्ति दिलाकर उनकी वनोपजो तथा श्रम का समय पर उचित प्रतिफल व लाभ प्रदान करना था। किन्तु अपनी स्थापना व कार्यकाल के लगभग दो दशक व्यतीत होने के उपरांत भी लक्षित वनवासी वर्ग को न तो शोषण से पूर्णरूपेण मुक्त कराया जा सका है और न ही उनके आर्थिक–सामाजिक स्तर में अपेक्षित सुधार हुआ है। वस्तुतः प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों की पूर्ण सफलता एवं प्रगति के मार्ग में जो भी समस्याएं बाधक है, उन्हें निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:–

1) आर्थिक समस्याएं
2) सामाजिक एवं प्रशासनिक समस्याएं
3) अन्य समस्याएं

समस्यायों के निराकरण के उपाय एवं सुझाव :– वनोपज सहकारीकरण होने के पश्चात् बहुत सी समस्यायों का निराकरण हो चुका है, परन्तु कुछ

समस्याएं अभी भी है, जिस हेतु सुझाव इस प्रकार हैः–

1) शिक्षण एवं प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करवाना।
2) राजनैतिक एवं शासकीय दखलांदाजी कम करना।
3) महिलाओ की भागीदारी निश्चित करना।
4) कुशल नेतृत्व का विकास।
5) सुनियंत्रित प्रणाली की स्थापना।
6) सरकारी नियंत्रण एवं संरक्षण में कमी करना।
7) दूरस्थ क्षेत्रों के मजदूरों को प्रोत्साहित करना।
8) गोदामों के नियंत्रण की उचित व्यवस्था करना।
9) संग्रहण केन्द्रों की संख्या बढ़ाना।
10) उत्तरदायित्व की भावना का विकास।
11) कुशल प्रबंधन।
12) वनोपज की गुणवत्ता बनाये रखना।
13) पूंजी की पूर्ति तथा उचित वित्त प्रबंधन करना।

इन सभी सुझावों की सहायता से वनोपज सहकारीकरण की समस्यायों ला निराकरण किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1) आदिवासी और वन–वन और आदिवासी,मध्यप्रदेश शासन भोपाल 1977।
2) भारत, 1996 प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
3) पर्यावरण अध्ययन – एस. एम.सक्सेना, सीमा मोहन
4) सहकारिता – बी.एस.माथुर, साहित्य भवन आगरा
5) जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 2004, जिला सांख्यिकीय कार्यालय, बालाघाट (म.प्र)।
6) प्राथमिक वनोपज सहकारी समिति उत्तर एवं दक्षिण वनमंडल जिला बालाघाट।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020
2020

परिवर्तनशील भूमिकाओं में स्वतन्त्रता के पश्चात् महिलाओं की प्रस्थिति (जनपद जौनपुर विकासखण्ड धर्मापुर पर आधारित एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ. मोहन
शोध निर्देशक, एसो. प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर (उ.प्र.)
सन्तोष कुमार मौर्य
शोध छात्र, समाजशास्त्र, NET JRF/SRF

भारत में स्वतंन्त्रता के बाद महिलाओं की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। स्वतन्त्रता के पश्चात् महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है। सम्पूर्ण विश्व उसकी कल्पना तक नही कर सकता था। **डॉ0 एम0 एन0 श्री निवास** ने पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है। महिलाओं में शिक्षा का प्रसार होने तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप उन्हें आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के अवसर प्राप्त हुए है। इससे महिलाओं की पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता कम होने लगी। संचार के साधनों, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में वृद्धि होने से महिलाओं ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करना आरम्भ किया। संयुक्त परिवारों का विघटन होने से महिलाओं के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई और सामाजिक अधिनियमों के प्रभाव से एक ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण हुआ, जिसमें बाल–विवाह, दहेज–प्रथा और अन्तर्जातीय विवाह की समस्याओं से छुटकारा पाना सरल हो गया। इन सभी कारको के संयुक्त प्रभाव से महिलाओं की स्थिति में जो परिवर्तन हुए है उन्हे निम्नांकित क्षेत्रों में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **शिक्षा की प्रगति** :– शिक्षा के क्षेत्र में महिलाएँ इतनी तेजी से आगे बढ़ रही है कि 70 वर्ष पूर्व तक इसकी कल्पना नही की जा सकती थी। स्वतन्त्रता से पहले लड़कियों के लिए न तो शिक्षा सम्बन्धी समुचित सुविधायें प्राप्त थी और न ही माता–पिता बालिका शिक्षा को उचित मानते थे। स्वतन्त्रता के उपरांत स्त्री–शिक्षा में प्रगति हुई इस तथ्य को इसी बात से समझा जा सकता है कि सन् 1942 में भारत मे केवल 2,054 महिलायें थी जो कुछ लिख–पढ़ सकती थी, जबकि 1981 की जनगणना के समय तक साक्षर महिलाओं की संख्या बढ़कर 7 करोड़ 91 लाख से भी अधिक हो गयी। 1943 में जहाँ पहली बार एक महिला ने बी0ए0 पास किया, वही 1980 में 7.5 लाख से अधिक लड़किया विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ रही थी। 1991 के आँकड़ो के अनुसार यह संख्या 72 लाख को पार कर गई। 2001 के आँकड़ो मे यह संख्या लगभग एक करोड़ से ऊपर थी। लड़कियों के लिए आज कला और विज्ञान के अतिरिक्त गृह विज्ञान, हस्तकला और संगीत की शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधाएँ प्राप्त है। मेडिकल कॉलेजों में लड़कियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। शिक्षा के प्रसार के कारण महिलाओं को बाल–विवाह और पर्दा–प्रथा से छुटकारा मिला है, साथ ही उन्होनें समाज–कल्याण और महिला कल्याण में व्यापक रूचि लेना आरम्भ कर दिया है। विश्वविद्यालयों तथा प्रतियोगी परिक्षाओं से सर्वाधिक अंक प्राप्त कर महिलाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनका मानसिक स्तर पुरूषों से किसी भी प्रकार नीचा नहीं है। वर्ष 2001 की जनगणना में महिला साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत थी। महिला शिक्षा की इस प्रगति को देखते हुए **श्री पणिक्कर** ने यह निष्कर्ष दिया है कि ''महिला–शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना सम्भव हो गया है।''

2. **आर्थिक जीवन में बढ़ती हुई स्वतन्त्रता** :– स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा औद्योगीकरण और नवीन विचारधारा के कारण महिलाओं की पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता लगातार कम होती जा रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व यद्यपि निम्न वर्ग की बहुत सी महिलायें उद्योगों और घरेलू कार्यो द्वारा जीविका उपार्जित करती थी, लेकिन मध्यम और उच्च वर्ग की महिलाओं द्वारा आर्थिक क्रिया करना अनैतिकता के रूप में देखा जाता था। स्वतन्त्रता के पश्चात् एक बड़ी संख्या में मध्यम वर्ग की महिलाओं ने शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक क्षेत्रों की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया। आज शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, समाज कल्याण, मनोरंजन, उद्योगो और विभिन्न कार्यालयों में महिला कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। यद्यपि व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों और औद्योगिक केन्द्रों में महिला कर्मचारियों की मांग निरन्तर बढ़ रही है। लेकिन भारतीय महिलाओं की मनोवृत्ति में अभी आमूल परिवर्तन न होने के कारण वे शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र को ही प्राथमिकता देती

है। स्वतन्त्र रूप से जीविका उपार्जित करने वाली महिलायें आज दूसरी महिलाओं के लिए एक आकर्षण हैं और आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण परिवार में उनके महत्व को देखकर अन्य महिलाओं को आर्थिक जीवन में प्रवेश करने को प्रोत्साहन मिला है। वास्तविकता तो यह है कि महिलाओं को आर्थिक स्वतन्त्रता मिल जाने के कारण उनके आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर में इतनी प्रगति हुई है कि उनके व्यक्तित्व की तुलना उस महिला से किसी प्रकार नही की जा सकती जो आज से कुछ ही वर्ष पहले तक संसार की सम्पूर्ण लज्जा को अपने घूँघट में समेटे हुए और पुरूष के शोषण को सहन करती हुई घूँघट में अपना जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थी।

संयुक्त परिवार की व्यवस्था जहां होती है वहाँ पारिवारिक जिम्मेदारी बराबर बनी रहती है किन्तु भारत में जैसे–जैसे विभक्त कुटुम्बों का चलन बढ़ता जा रहा है। वैसे–वैसे यह समस्या हमारे सामने भी उपस्थित होती जा रही है। जिन महिलाओं के लिए नौकरी एक अनिवार्यता न हो, उन्हें पारिवारिक या अन्य कठिनाइयों के कारण धंधे–नौकरी न करने की सलाह ही उचित है। कोई पुरूष जब अस्वस्थ हो तब संभव है काम न कर सके किन्तु स्वस्थ होने पर अपना कार्य पूर्ववत् शुरू करेगा ही उसी प्रकार का व्यवहार महिलाओं के प्रति होना चाहिए तथा वैसी ही स्वतंत्रता उन्हें भी मिलनी चाहिए। घर के बाहर कार्य के निमित्त आने वाली महिलाएँ अपने पति या बालक के प्रति लापरवाह रहती है ऐसा मानना उचित नही है, बल्कि वे महिलायें एक प्रकार की मानसिक व्यथा का अनुभव करती है। जिस समाज में महिला का जन्म होता है उस समाज की सेवा करने का महिला को भी अधिकार होना चाहिए। काम करने का अधिकार तो मूल अधिकार है और वह उसे मिलनी ही चाहिए। काम करने का अधिकार मात्र जीवन–निर्वाह के साधन जुटाने तक ही सीमित नही है, इसे तो दूरगामी दृष्टि से देखना चाहिए। समाज की आर्थिक तथा सामाजिक गतिविधि में योगदान देने का अधिकार महिलाओं को भी है। महिलाएँ पुरूषों की भाँति अपने तथा अपने आश्रितों के भरण पोषण की व्यवस्था करने के लिए कमाने जाती है और साथ ही साथ यह भी सत्य है कि घर की चारदीवारी की संकीर्णता से भरे हुए वातावरण में विचरण करने के लिए कुटुम्ब की व्यवस्था में अपनी आवाज बुलंद करने के लिए तथा व्यक्तित्व के विकास के लिए महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता अनिवार्य है। बाहर काम पर जाने वाली महिला अपने सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आती है नए अनुभव प्राप्त करती है, नई–नई चीजो में रूचि लेती है तथा अपने मन को अधिक उदात्त बनाने का प्रयत्न करती है। महिलाओं की सुषुप्त शक्तियाँ विविध नौकरियों तथा धंधों में ज्यादा दिखती है तथा आर्थिक स्वतंत्रता सामाजिक मुक्ति का प्रारम्भ कर सकती है। **डॉ0 रजनीकांत दास** इस विषय में लिखते हैं अपनी जन्मभूमि से दूर एवं स्वतन्त्र रहने के कारण, वे उस सामाजिक रूढ़ि एवं क्रूरता से जीवन को पग–पग पर प्रभावित करती है, बच जाती है। इससे अधिक महत्तवपूर्ण घटना तो यह है कि औद्योगिक केन्द्र विशाल सामाजिक–सम्बन्ध एवं संपर्क के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करने में सहायक होते है, नए विचार उत्पन्न करते है तथा अधिक शैक्षणिक सुविधाएँ जुटाते है। ये सब तत्व महिला के व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहन देते है। प्रायः प्रत्येक वर्तमान औद्योगिक संस्थान में व्याप्त वर्ग संघर्ष के आन्दोलन महिलाओं को भी वर्ग भावना और वर्ग संगठन के लिए प्रेरित करते है। औद्योगिक झगड़ों में महिलाएँ जोर–शोर से हिस्सा लेती है और समस्त वर्ग के सामान्य हित के साथ ही अपना भी हित जोड़ देती है। इस प्रकार की संगठित कार्य भावना उनके लिए औद्योगिक विस्तार के जीवन में नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले संघर्ष में बहुत ही महत्तवपूर्ण सिद्ध हो सकती है अतः महिलाओं का नौकरी धंधे में प्रवेश समाज और व्यक्तिगत दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। ऐसी परिस्थिति में सैद्धान्तिक विरोध करना तथा बाधाएँ खड़ी करने के बजाय श्रेयस्कर तो यह है कि धनोपार्जन के लिए घर से बाहर जाने वाली महिलाओं की जो कठिनाइयाँ या अड़चने हो उन्हे दूर करने का प्रयत्न किया जाय उनके मन को निरर्थक आघात न पहुँचाकर वे समाज का उत्पादन कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सके ऐसी शिक्षा एवं प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान कि जाए।

3. **पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि** :– परिवारों में महिलाओं की स्थिति में आज महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। आज महिला पुरूष की सहयोगी है, मित्र है उसकी दासी बिल्कुल भी नही है। परिवार में भी उसकी स्थिति एक याचिका की न होकर प्रबन्धक की है। आज महिला संयुक्त परिवार में अपने समस्त अधिकारों का बलिदान करके शोषण में रहने को तैयार नही है, बल्कि आज की शिक्षित महिला एक स्वतन्त्र एकाकी परिवार की स्थापना करके अपने अधिकारों का पूर्ण उपभोग करने के लिए प्रयत्नशील है। बच्चों की शिक्षा, पारिवारिक आय के उपभोग, संस्कारों का प्रबन्ध और पारिवारिक योजनाओं

के रूप का निर्धारण करने में महिला की इच्छा का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। बहुत सी महिला तो अपने पारिवारिक अधिकारों के लिए अन्तर्जातीय और प्रेम–विवाह को भी प्राथमिकता देने लगी है। विलम्ब विवाह महिलाओं में अत्यन्त लोकप्रिय होता जा रहा है। कुछ लोग परिवार में महिलाओं के बढ़ते अधिकारों से बहुत चिन्तित हो उठें है कि उन्हें पारिवारिक जीवन के विघटित हो जाने का भय हो गया हैं जबकि वास्तविकता यह है कि उनकी यह चिन्ता अपने एकाधिकार में होती हुई कमी के कारण उत्पन्न हुई है। आज की नयी पीढ़ी तो स्वयं महिलाओं को उनके पारिवारिक अधिकार देने के पक्ष में है और यदि किसी कारण उन्हे इन अधिकारों से वंचित रखा भी गया तब आने वाले समय में वे इन्हें अपनी शक्ति से स्वयं ही प्राप्त कर लेगी। भिन्न–भिन्न परिवार, सामाजिक–सांस्कृतिक, विधिक राजनीतिक स्थिति विभिन्न प्रकार की रखते है। परिवार समाज की आधारभूत इकाई होता है। महिलाओं का परिवार में विशेष महत्व होता है। वर्तमान समाज में परिवार विघटन कराने में महिलाओं का प्रमुख हाथ है। प्राचीनतम व्यवस्था, संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी जिसमें सामूहिक संरक्षण एवं सहयोग रहता था। जिसमें आज महिलाएँ अपनी स्वतन्त्रता हेतु संयुक्त परिवार को प्रमुखता नही दे रही है। जिसके फलस्वरूप परिवारों का विघटन हो रहा है। तथा महिलायें अधिकाधिक संख्या में घर से बाहर मजदूरी करने जा रही है। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन हो रहा है, नगरीकरण को बढ़ावा, सामाजिकक्रान्ति, व्यभिचार, गरीबी जैसे कारण पनप रहे है। परिवार संरक्षण एवं सहयोंग के अभाव में तीसरे व्यक्ति पर निर्भर होते जा रहे है। विघटित परिवार अपने दायित्व एवं आवश्यक सामाजिक कार्य, महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ आदि की पूर्ति महिला अधिकारो द्वारा पूर्ति करते है जिससे महिलाओं पर रोजगार का भी दबाव बढ़ता जा रहा है।

4. **राजनीतिक चेतना में वृद्धि** :– राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं की स्थिति स्वतन्त्रता के बाद के वर्षो में जिस गति से ऊँची उठ रही है। वह वास्तव में एक आश्चर्य का विषय है। 1957 के आम चुनाव में महिलाओं के लिए 41 सींटे सुरक्षित होने पर भी केवल 10 महिलाएँ ही चुनाव के लिए सामने आयी थी, जबकि 1967 के चुनाव तक महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता इतनी बढ़ गयी कि केवल राज्यों की विधानसभाओं के लिए ही 342 महिलाएँ चुनाव के लिए खड़ी हुई जिनमें से 195 निर्वाचित हो गयी। 1977 के आम चुनाव के बाद राज्यसभा और लोकसभा में महिला सदस्यों की संख्या 42 थी जबकि 1980 के आम चुनावों के पश्चात् यह संख्या बढ़कर 54 हो गयी। भारत के अनेक राज्यों में महिलाओं का मुख्यमंत्री बनना सम्पूर्ण संसार के लिए आश्चर्य की बात थी। 1980 में जब **श्रीमती इन्दिरा गाँधी** पुनः भारत की प्रधानमंत्री निर्वाचित हुई, तब पश्चिम के तथाकथित सभ्य समाजों की महिलायें हतप्रभ रह गयी। उन्हें तब पहली बार यह महसूस हुआ कि उनकी राजनीतिक जागरूकता अभी बहुत पीछे है। 2003 में दिल्ली में **शीला दीक्षित** उत्तर प्रदेश में **मायावती** बिहार में **राबड़ी देवी** और तमिलनाडू मे **जयललिता** मुख्यमंत्री थी। **के0 एम0 पणिक्कर** का कथन है कि जब स्वतन्त्रता ने पहली अंगडाई ली तब भारत के राजनीतिक जीवन में महिलाओं को जो पद प्राप्त हुआ उसे देखकर बाहरी दुनिया चौंक पड़ी क्योंकि वह तो हिन्दू महिलाओं को पिछड़ी हुई अशिक्षित और प्रतिक्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई समझने की अभ्यस्त थी। राजनीति में महिलाओं की सीमांतता के कारण का पता लगाना कठिन नही है। महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं विभिन्न स्तरों पर संचालन की प्रक्रिया में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की असहभागिता के लिए एक तर्क यह दिया जाता है कि महिलाएँ अपने राजनीतिक अलगाव के लिए स्वयं जिम्मेदार है। इस संदर्भ में एक कठिन समस्या यह है कि महिला अपने बारे में स्वयं निर्णय लेते समय या दूसरों के द्वारा निर्णय लेते समय दोहरे मानदंडों का शिकार रहती है। एक मानक नारीत्व का है। निजी दुनिया में महिला को पालन–पोषण करने वाली कर्म प्रधान भावनात्मक परिवार अभिमुख और पुरूष के अधीनस्थ माना जाता है। दूसरा मानक आधुनिक जीवन का है, सार्वजनिक जीवन महिला से तार्किक, सक्रिय, लक्ष्य अभिमुख, महात्वाकांक्षी और प्रतिस्पर्धात्मक गुणों की अपेक्षा रखता है। निजी–सार्वजनिक का अलग–अलग गुटों में विभाजन महिलाओं पर सीमावर्ती प्रभाव डालता है। इस स्थिति में महिलाओंके पास दो विकल्प है, या तो वे राजनीति के खेल के नियमों का अनुसरण करे तो उन्हें 'अस्त्रियोचित' कहा जायेगा या अगर वे नारीत्व के मानकों के अनुरूप राजनीति में व्यवहार करे तो उन्हे निकृष्ट रूप से देखा जाएगा। अतः यह विभाजन महिलाओं के लिए उपयुक्त व्यवहार के चुनाव को कठिन कर देता है। मूलतः अभिवृत्ति जिसे समाज निर्धारित करता है जैसे कि रूढ़िवादी पुरूषोचित गुण में आक्रमणशीलता इसको राजनीति के मानक के रूप में

माना जाता है। 'वास्तविक पुरूष' और 'वास्तविक राजनीतिज्ञ' में इन गुणों का होना आवश्यक है। इसलिए जब महिलाए राजनीति में प्रवेश करती है तो उन्हें स्पष्टतया झगड़ालू, स्वार्थी और अव्यवहारिक माना जाता है और उनसे कोमलता, भावना व अपनेपन की अपेक्षा नही की जाती। इन परिस्थितियों में महिला स्वयं को पराये संसार मे पाती है। यह प्रोत्साहित करने वाला संकेत है कि राजनीति में विशेषकर स्थानीय स्तर की राजनीति में कुछ महिलाएँ, महिला विरोधी वातावरण में भी महिलाओं के परिदृश्य से मुद्दों को उठाती है। राजनीति में महिलाओं के सीमित भागीदारी का बहुत सशक्त कारण महिलाओं में 'मंद चेतना' की धारणा में निहित है। आंदोलन कैसा भी हो विदेशी सरकार के विरूद्ध या आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में निहित स्वार्थो के विरूद्ध या अत्याचारी भू–स्वामी व ठेकेदार के विरूद्ध मुकाबला हो महिलाएं झिझकती नही है, वे त्याग और बलिदान करती एवं पुरूषों के साथ आंदोलन के दमन को झेलती है। समाज में महिलाओं की अधीनता का आधारभूत तथ्य, संरचनात्मक प्रतिबंध के रूप में भूमिका निभाता है और यह दो पहलू से राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी पर रोक लगाता है।

(1) महिलाएँ परिवार में श्रम के लिंग आधारित विभाजन के कारण सभी पारिवारिक कार्यो की जिम्मेदारी का वहन करती है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र की महिलाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे परिवार की देख–रेख की जिम्मेदारी लें। ईंधन, चारा और पानी लाना महिला का दायित्व है। खाना बनाना उसका काम है। बच्चों को पालने और पढ़ाने का दायित्व उन्ही का है। उन्हे अतिथियों का स्वागत करना है और सामाजिक समारोहों में भी उन्हें उपस्थित रहना है। ये प्रतिबंध कम या ज्यादा मात्रा में सभी वर्गो और समुदायों की महिलाओं पर लागू होते है। पुरूष दैनिक, राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने मे समर्थ है क्योंकि वे देर से घर लौट सकते है और राजनीतिक कार्यो के लिए बाहर जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अगर पुरूष सभी रजनीतिक गतिविधियों में शामिल होते है तो इससे उनके परिवार को कुछ नही झेलना पड़ता क्योंकि परिवार की दैनिक आवश्यकताओं की देखभाल हेतु महिला हमेशा उपलब्ध रहती है। दैनिक राजनीतिक प्रचार कार्य, निर्वाचन क्षेत्र से अपने संपर्क को बनाये रखने की आवश्यकता, नियमित बहस, विचार–विमर्श और मीटिंग जो सामान्यतः रात में होती है। इन सभी के साथ महिलाओं की घरेलू व अन्य जिम्मेदारियों का टकराव होता है। इसलिए महिलायें रोजाना की राजनीतिक गतिविधियों की भागीदारी में कठिनाई महसूस करती है। अगर महिलाओं की बच्चों के लिए शिशु सदन घर के कामों का बंटवारा और सस्ते घरेलू उपकरण जैसी सहायक सेवायें उपलब्ध हो जाय तो महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सरल हो जाएगी। यहा यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि जयललिता, फूलन देवी, मायावती व राबड़ी देवी जैसे महिला राजनीतिज्ञों के काम के तरीकों ने कई प्रश्नों को उभारा है क्योंकि उन्होंने मुख्यधारा की राजनीति में प्रचलित मानकों को अपनाया है।

5. **सामाजिक जागरूकता** :– हिन्दू महिलाओं का सामाजिक जीवन आज स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले के समय से बिल्कुल भिन्न है। जिन परिवारों में कुछ वर्ष पहले महिलाओं के लिए पर्दे में रहना अनिवार्य था, उन्ही परिवारों की महिलायें आज खुली हवा में सांस ले रही है। जिन रूढ़ियों को महिलाओं ने अपनी अज्ञानता के कारण अपने जीवन का 'आदर्श' बना रखा था, उन रूढ़ियों के प्रति महिलाओं की उदासीनता बराबर बढ़ती जा रही है। हिन्दू महिलायें आज अनेक प्रगतिशील संघों की स्थापना कर रही है। और ऐसे संगठनों की सदस्यता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। **के0 एम0 पणिक्कर** के अनुसार,''कुछ मेधावी महिलाओं ने जो उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है वह भारत के लिए उतने महत्व की बात नही है जितनी यह बात कि कट्टरपंथी और पिछड़े समझे जाने वाले ग्रामीण व्यक्तियों के विचार भी करवट लेने लगे है। यह महिलायें उन सामाजिक बन्धनों से बहुत कुछ मुक्त हो चुकी है जिन्होंने उन्हें रूढ़ियों और 'बाबा वाक्य प्रमाण' की विचार धारा के द्वारा जकड़ रखा था''निश्चित ही भारतीय महिलाओं की स्थिति में होने वाले ये परिवर्तन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी परिवर्तन प्रमुख रूप से नगर की महिलाओं से ही सम्बन्धित है। ग्रामीण महिलाओं के जीवन में कुछ सुधार अवश्य हुआ है। लेकिन अभी उनमें शिक्षा का अभाव होने के कारण वे परम्परागत रूढ़ियों के बंधन को तोड़ने में अधिक सफल नही हो सकी है, लेकिन यह सच है कि नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होने से उनके विचारों में परिवर्तन होना आरम्भ हो चुका हैं। कुछ व्यक्ति आज महिलाओं की स्थिति में होने वाले परिवर्तनों को उनका सुधार नही मानतें। उनका विचार है कि महिलाओं को समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार मिलने से समाज में अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, विवाह–विच्छेद, अनैतिकता और शिक्षित

लड़कियों के विवाह की समस्या में वृद्धि हुई है। इससे समाज के विघटित हो जाने का डर है। यह भ्रमपूर्ण धारणा है। ये सभी परिस्थितियाँ पुरूषों के 'अहम्' के विरूद्ध हो सकती है, लेकिन महिला–जाति का वास्तविक हित तो उन्ही परिवर्तनों में निहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

- Srinivas M.N., Caste in modern India, P.12.
- Ahuja Ram, Rights of women- Feminist Perspective, P.N. 132
- Rehana ghadially : ibid, P.N. 139
- Das, Rajmikant : Hindu wonen and her future, P.N. 69
- Das, Rajmikant : Hindu wonen and her future, P.N. 69
- लवानिया डॉ0 एम0 एम0, भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर पृ0 सं0– 14
- Pannker K.M. : Hindu Society at Road , P.N. – 15
- देसाई नीरा, ठक्कर ऊषा, भारतीय समाज में महिलायें, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत 2008 पृ0 सं0 – 95–96
- Panniker K.M. Hindu society at Road, P.N. – 18 -19

प्राचीन भारत में चिकित्सा विज्ञान

डॉ. संजय कुमार
मु.–सुंदरपुर बीरा, पोस्ट–वासुदेवपुर बीरा, जिला–दरभंगा, बिहार

प्राचीनकालीन भारत ने समकालीन विश्व सभ्यता की तुलना में विज्ञान के क्षेत्र में अभुतपूर्व उन्नति की। जहां समकालीन विश्व बर्बरता व असभ्यता के दौर से गुजर रहा था वहीं प्राचीन भारत चिकित्सा, साहित्य, कला, गणित, खगोल व ज्योतिष विज्ञान में नई नई ऊँचाईयों को छू रहा था। यद्यपि हड़प्पा काल में ही चिकित्सीय विज्ञान के विकास के संकेत मिल जाते हैं पर मौर्यकाल एवं गुप्तकाल में चिकित्सीय विज्ञान के क्षेत्र में बेतहाशा उन्नति हुई। चरक संहिता व सुश्रुत संहिता गुप्त युग के पहले ही लिखी जा चुकी थी।

सिंधुघाटी निवासी शिलाजीत का प्रयोग जानते थे। एक काले रंग की चीज मिली है जो पानी में घोलने से गहरे बादामी रंग की हो जाती है। लोगों का अनुमान है कि यह शिलाजीत है जिसका प्रयोग आज भी अनेक रोगों में होता है। हिरण तथा बारहसिंगे के सींगों का भी औषधि के रूप में प्रयोग होता था । नीम की पत्तियों के औषधीय गुणों से भी लोग परिचित थे। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में इन सब चीजों का आज भी प्रयोग होता है। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय चिकित्सा प्रणाली को जन्म देने वाले सिंधुवासी ही थे।[1] वैदिक काल में पशु बलि की प्रथा थी। '' नित्य प्रति पशु बलियो से पशुओं की शरीर रचना का ज्ञान बढ़ा और काफी समय तक शरीर विज्ञान अथवा रोग विज्ञान की अपेक्षा शरीर रचना का ज्ञान अधिक उन्नत रहा। अग्नि का संबंध शुद्धिकरण से होने के कारण शव को गाड़ने की अपेक्षा जलाना अधिक लोकप्रिय था।''[2] इससे यह पता चलता है कि शव को जलाना व्यावहारिक तथा स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से अच्छा था। अतः वैदिक कालीन लोग स्वास्थ्य विज्ञान के प्रति भी सचेत थे।

अजित केशकंबल बुद्ध का समकालीन था। उसने बताया कि मनुष्य 4 तत्वों के संयोग से बना है। मिट्टी, पानी, अग्नि व वायु यह तथ्य बाद में सही साबित हुआ। अजित केशकंबलिन ने मनुष्य का वर्णन इस प्रकार किया हैः ''मनुष्य चार तत्वों से बना है। जब वह मरता है तो मिट्टी मिट्टी में मिल जाता है, पानी पानी में, अग्नि अग्नि में और वायु वायु में, तथा उसकी इंद्रियां आकाश में विलीन हो जाती है। टिकठी पर चार आदमी शव को ले जाते हैं, मृत्यु के पश्चात वे जीवित नहीं रहते।''[3] भारतीय चिकित्सा प्रणाली त्रिदोषों वात, पित्त कफ के सिद्धांत पर आधारित थी, इन तीनों के सही संतुलन से ही शरीर स्वस्थ रह सकता था। ''अनेक भेषज विश्वकोषों तथा भेषज संहिताओं की रचना हुई, जिनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ चरक का है, जो कनिष्क का समकालीन था। इसके कुछ समय पश्चात एक ग्रंथ सुश्रुत ने लिखा। स्पष्टतः भारतीय जड़ी बूटियों का ज्ञान पश्चिमी संसार में पहुंच चुका था क्योंकि यूनान के वनस्पतिशास्त्री थियोक्राइस्टस ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ प्लांटस में भारत के विविध पौधों और जड़ी बूटियों के भेषज प्रयोग का विवरण दिया है।''[4]

बच्चे के जन्म के छठे माह में अन्न प्राशन संस्कार होता था, जिसमें प्रथम बार पका हुआ अन्न खिलाया जाता था। उसकी वाणी में प्रवाह लाने भारद्वाज पक्षी का मांस तथा उसमें कोमलता लाने के लिए मछली खिलाई जाती थी। इसका उददेश्य बच्चे का शारीरिक तथा बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ बनाना था। कर्णवेध संस्कार बच्चे को भविष्य में स्वस्थ रखने के उददेश्य से हुआ। प्राचीन भारत के वैद्यों को शरीर रचना का ज्ञान था। उन्होंने रोगों के निदान की विधियां बताईं और इलाज के लिए औषध बनाया। औषधों का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद में मिलता है। ''ईसा की दूसरी सदी में भारत में आयुर्वेद के दो महान विद्वान उत्पन्न हुए–सुश्रुत और चरक। अपनी सुश्रुतसंहिता में सुश्रुत ने मोतियाबिंद, पथरी तथा कई रोगों का शल्योपचार बनाया है। उन्होंने शल्य क्रिया के बहुत सारे उपकरणों का उल्लेख किया है जिनकी संख्या 121 तक है। रोगों से मुक्ति के लिए उन्होनें आहार और सफाई पर जोर दिया है।''[5] ''चरक संहिता भारतीय चिकित्सा शास्त्र का विश्वकोष है। इसमें ज्वर, कुष्ठ, मिरगी और यक्ष्मा के अनेक भेदोपभेदों का वर्णन है। इनकी पुस्तक में भारी संख में उन पेड़–पौधों का वर्णन है जिनका प्रयोग दवा के रूप में होता है।''[6] बाद की सदियों में भारत में आयुर्विज्ञान का विकास चरक के बताए मार्ग पर होता रहा। ''सुश्रुत ले लिखा है कि कर्णवेध अंडकोश वृद्धि (हाइड्रोसिल) तथा अंत्रवृद्धि (हार्निया) के रोगों से छुटकारा दिलाता है।''[7] मगध सम्राट बिम्बिसार का अवंति के राजा प्रद्योत के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध थे। ''एक बार जब वह पांडु रोग से ग्रस्त थे तो बिम्बिसार ने अपने वैद्य जीवक को उसकी सुश्रूषा हेतु भेजा।'' [8]

जैन ग्रंथ परिशिष्ट पर्वन में बिंदुसार के जन्म का इतिहास रोचक है। जिसमें बताया गया है कि ''एक दिन महारानी दुर्धरा अपने पति चंद्रगुप्त के साथ भोजन करते हुए विष युक्त भोजन खा लिया। महारानी दुर्धरा गर्भवती व आसन्न प्रसवा थी। वह मृत्यु को प्राप्त हुई पर चाणक्य ने शीघ्र ही शल्य चिकित्सा करवाकर बालक को बाहर निकलवा कर उसके प्राण बचा लिए। इसका नाम बिंदुसार इसलिए बड़ा कि विष के प्रभाव से मस्तक पर एक बिंदु चिह्न बन गया था।''[9] यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि उस समय आयुर्वेद विज्ञान का विकास काफी हो चुका था और शल्य चिकित्सा भी की जाने लगी थी। इसी प्रकार आचार्य सोमदेव ने चंद्रगुप्त के विषय में एक विशेष चमत्कारों वाली कहानी दी है। ''तीन विद्वान वररूचि, व्याडि और इंद्रदत्त सहपाठी थे। निर्धनता के कारण धन की कामना में इधर–उधर भटक रहे थे कि इन्हें विदित हुआ कि राजा नंद आजकल अपने अयोध्या राजप्रसाद में ठहरे हैं। ये धन की लालसा में जैसे ही राजप्रसाद में आये तो इन्हें पता चला कि नंद की मृत्यु हो गई। एक षडयंत्र रचाते हुए योग विद्या में परंगत इंद्र दत्त ने अपनी आत्मा को मृतक नंद के शरीर में प्रवेश करा दिया और इंद्रदत्त नंद के रूप में जीवित हो गया तथा इंद्रदत्त के मृतक शरीर को उसके मित्रों वररूचि और व्याडि ने भविष्य के लिए सुरक्षित रख लिया। पुनर्जीवित नंद ने अपने अमात्य शकटार को आदेश दिया कि वररूचि को एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएं तुरंत दान में दी जाए।''[10] योग के द्वारा अपनी आत्मा को दूसरे मृतक शरीर में पहुंचा कर स्वयं जीवित हो जाना अनेक गुढ़ प्रश्न रखता है। यह कथा भले ही कपोलकल्पित हो पर इसने भविष्य के चिकित्सकों व योग ज्ञानी को यह परिचित कराया कि मृत व्यक्ति के शरीर को योग के द्वारा जीवित किया जा सकता है। इसी को आधार मानकर आज के वैज्ञानिक रोबोट एव क्लोन बनाने में सफल हो रहे हैं। आचार्य ढुढीराज का मुद्रा राक्षस का टीका से भी ज्ञात होता है कि किस तरह सुनंदा ने एक मांस के पिंड को जन्म दिया और एक अमात्य राक्षस ने उस मांस के नौ टुकड़े कर नौ नंद पुत्रों को जन्म दिया। इसी तरह महाभारत काल में गंधारी ने भी एक मांस पिंड को जन्म दिया था जिसे 100 पात्रों में टुकड़े कर अलग रखा गया और इससे 100 कौरव पुत्रों का जन्म हुआ। उपरोक्त तथ्य जो हमें प्राचीन कालीन महाकाव्यों एवं गाथाओं में मिलते है उसने आज के चिकित्सा वैज्ञानिकों को टेस्ट ट्यूब बेबी के जन्म को यथार्थ रूप देने में मदद की। उन्हें वह आधार मिला जिसके बारे में लोग सोच भी नहीं सकते थे। वह हजारों साल पहले हमारे भारतीय विद्वानों के लिखे साहित्यों में ज्ञात हो जाता है। यद्यपि भारतीयों को शल्य चिकित्सा का ज्ञान बहुत विशिष्ट था और इसमें वे पहले से ही बहुत प्रवीण थे। बुद्ध काल में ही दिमाग और अंग प्रत्यारोपन की शल्यचिकित्सा किये जाने का उदाहरण मिलता है। जातक साहित्य से पता चलता है कि बिम्बिसार की आज्ञा से ही उसके वैध जीवक बौद्ध भिक्षुओं का इलाज करते थे और जीवन ने बुद्ध के पैर की एक बहुत सफल जटिल शल्य चिकित्सा भी की थी। ''अथर्ववेद के अनुसार तंत्रों मंत्रों, ताबीजों और देवताओं की स्तुतियों से भी रोगों का इलाज किया जाता था। अथर्ववेद में भिषकों को क्षय, पागलपन, दमा, पांडुरोग, नेत्ररोग, सिरदर्द, नासूर फोड़ फुंसिया, वात रोग, अजीर्ण, उल्टी दस्त तथा टूटी हड्डियों आदि रोगों का इलाज करते हुए पाते हैं।''[11]

उपरोक्त विशेषताओं के बावजूद गुप्तकाल में चिकित्सीय विज्ञान अपने विकास के शीर्ष में पहुंचा। भारत में आने वाले यूनानियों से भी भारतीयों ने बहुत सीखा था। गुप्त युग में चिकित्सा पर अनेक ग्रंथ लिखे गए। शल्य विज्ञान ने विशेष प्रगति की। प्रसिद्ध वैध धनवंतरि इसी काल में हुए। पशु चिकित्सा पर हस्तयायुर्वेद इसी युग में लिखा गया। छठी शताब्दी में वाग्भट्ट ने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ अष्टांग हृदय की रचना की। नवनीतकम् नामक आयुर्वेद ग्रंथ की रचना भी इसी काल में हुई। ''पालकाप्य नामक पशुचिकित्सक ने हस्त्यायुर्वेद नामक ग्रंथ की रचना की जो हाथियों के रोगों व चिकित्सा से संबंधित थी। घोड़ों की चिकित्सा पर ग्रंथ लिखे गए क्योंकि हाथी और घोड़े सेना के आवश्यक अंग थे।''[12] ''नागार्जुन ने अपनी नई खोज से रोगियों के स्थायी रोग निवारण हेतु औषधियों के मामले में एक नवीन रस चिकित्सा पद्धति की खोज कर उसे व्यवहारिक बनाया था। इस रस चिकित्सा में नागार्जुन ने सभी धातुओं यथा सोना, चांदी, लोहा, ताम्र अभ्रक आदि से भस्म और रस बनाये जाने की पद्धति का निर्माण किया था। वास्तव में शरीर का निर्माण प्रकृति के सभी संपदाओं से हुआ है। धातुओं की भस्म तथा रस औषधियों शरीर को स्थायी रूप से नीरोग व स्वस्थ बनाती है। यह सिद्धांत नागार्जुन द्वारा प्रतिष्ठित हुआ और आज तक आर्य सत्य है।''[13] प्रसिद्ध गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त का जन्म हर्ष के काल में हुआ था। उसका ग्रंथ ब्रह्मसिद्धांत नाम से प्रसिद्ध है।

संदर्भ :–

1. डॉ. सत्य नारायण दुबेः प्राचीन भारत का इतिहास, प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी , आगरा 1969, पृ.सं. 41
2. रोमिला थापरः भारत का इतिहास, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन पृ.सं पृ.सं. 38–39
3. आर.एस.शर्माः प्राचीन भारत, प्रकाशक एनसीईआरटी, नई दिल्ली वर्ष 1995 पृ.सं. 257
4. वही, पृ.सं. 258
5. के.सी. श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, प्रकाशक यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद वर्ष 2002, पृ.सं. 179–181
6. वही, पृ.सं. 113
7. डॉ. के.सी. जैन : प्राचीन भारत का इतिहास, प्रकाशक यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली 110015, पृ.सं. 89
8. सोमदेव सूरी : कथासरितसागर, पृष्ठ संख्या 118
9. चकवर्ती के. के., बादाम जी एल0, रॉक आर्ट एण्ड आर्कियोलॉजी ऑफ इंडिया, आगम कला प्रकाशन, दिल्ली 2008, पृ0–209। गुप्त, जगदीश, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967, पृष्ठ 358–363।
10. एंश्येण्ट इंडिया, बुलेटिन ऑफ आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1984, प्लेट नं0–106, पृ0–106। मैके, ई.जे.एच., फरदर एक्सवेशन ऑफ मोहनजोदारो, आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2000, पृ0–268।
11. ऋग्वेद, 10/85/26, 1/105/2, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।
12. याज्ञवलक्य स्मृति; उमेशचन्द्र पाण्डेय, 2/48, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2000, पृष्ठ 206।
13. मनुस्मृति, 9/3, शिवराज आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2007, पृष्ठ 411
14. सालेतोरे, आर.एन., अर्ली इन्डियन इकोनोमिक हिस्ट्री, पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1973, पृष्ठ 591।
15. डॉ. के.सी. जैन, प्राचीन भारत का इतिहास पूर्वोक्त, पृष्ठ सं. 161
16. द्विजेन्द्र झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, प्रकाशक हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, वर्ष 1995 पृ.सं 332
17. डॉ. के.सी. जैन, प्राचीन भारत का इतिहास पूर्वोक्त, पृष्ठ सं. 155

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा

डॉ. रिंकु कुमारी
मु.–सुंदरपुर बीरा, पोस्ट–वासुदेवपुर बीरा, जिला–दरभंगा, बिहार

सारांश :– प्राचीनकाल से ही भारत में उच्च शिक्षा का स्तर अत्यन्त उन्नतशील बाह्याडम्बर रहित दृष्टिगत होता है। उच्च शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में सतत् प्रतिबद्ध तत्कालीन उच्च शिक्षा विश्व में अपना परचम फहरा रही थी। सहस्त्रशताब्दियों से इस प्राचीन भारतीय उच्च शिक्षा और इसके वांङमय को वैश्विक जगत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और संस्कृत भारत की सांस्कृतिक भाषा रही है। शताब्दियों तक समग्र भारत को उच्च शिक्षा तथा सांस्कृतिक, भावात्मक एकता में अबाध रखने में प्राचीन भारतीय उच्च शिक्षा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। भारत में शिक्षा पुरातन है यहाँ शिक्षा की जड़े विदेशी नही हैं। शिक्षा राष्ट्र की सस्ती सुरक्षा है। शिक्षा को भारतीय समाज का अंग बनाने का प्रयास प्राचीनकाल से चल रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही भारतीय शिक्षा इतनी सजीव संपुष्ट संस्कृति, धर्म, और वैभव से पूर्ण रही है जिसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

प्रस्तावना :– प्राचीन काल से भारत उच्च शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ विख्यात केन्द्र रहा है। उच्च शिक्षा का अर्थ है– सभी को दी जाने वाली अनिवार्य शिक्षा से ऊपर किसी विशेष या विषयों में विशेष, विशद् तथा सूक्ष्म शिक्षा। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो गुरुकुलों, विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वद्यिालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कालेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती हैं। प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तीसरा पड़ाव है जो प्रायः ऐच्छिक होता है। इसमें स्नातक, परास्नातक, व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि सम्मिलित है।

विषयवस्तु :– भारत की प्राचीन शिक्षण पद्धति का मूल प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता है। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि–

'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः[1]।'

उपनयन के पश्चात् आचार्य शिष्य को यज्ञोपवीत द्वारा अपने नियन्त्रण में लेता है। आचार्य के सान्निध्य में ही रहकर प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करते हुए शिष्य को उच्च शिक्षा प्राप्ति की आयु प्राप्त करने पर वे उसे द्यावा और पृथिवी का समस्त ज्ञान देते हैं–

'आचार्यस्ततक्ष नमसी उभे इमे [2]।'

अथर्ववेद के ही अनुसार आचार्य शिष्य को तेजस्वी बनाते हैं–

'घृतं कृणुते केवलमाचायः [3]।'

यह समस्त ज्ञान आचार्य स्वयं संयम में रहते हुए शिष्यों को देते हैं–

'आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणामिच्छते [4]।'–
आदि–आदि

इस प्रकार प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का स्वरुप प्रमुख चार उद्देश्यों की पूर्ति करता हुआ दृष्टिगत होता है–

- ब्रह्मचर्यावस्था में शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण
- व्यक्तित्व का शारीरिक व मानसिक सर्वांगीण विकास
- स्नातक में स्वार्थ त्यागपूर्वक उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य–भाव–जागरण
- प्राचीन संस्कृति और साहित्य का संरक्षण करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के साथ–साथ प्राचीन शिक्षण प्रणाली की कतिपय विशिष्टताएँ इस प्रकार की भी परिलक्षित होती हैं। यथा–उपनयनोपरान्त ब्रह्मचर्यावस्था का सम्यक परिपालन, स्त्री शिक्षा की व्यवस्था, व्यावसायिक शिक्षा, साहित्यिक, धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा, उपयोगी ललित कलाओं की शिक्षा चरित्र गठन, सामाजिक व नागरिक गुणों का विकास, गुरु–शिष्य का वैयक्तिक सम्बन्ध, गुरुकुल व आश्रम के जीवन का उच्चतम आदर्श, सादा जीवन उच्च विचार, समानता की भावना, विशिष्ट पाठ्य–विषय और पाठ्य प्रणाली जैसे–धनुर्विद्या, आयुर्विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक पठन–पाठन आदि। विद्यार्थियों के भी दो प्रकार दृष्टिगत होते हैं–

- अन्तेवासी (गुरु के समीप रहने वाले) और
- सामान्य साधारण ज्ञानपिपासा तृप्ति हेतु प्रतिदिन गुरुगृह विद्याध्ययन हेतु आने वाले।

शिक्षा की अवधि बारह वर्ष की थी, जिसके अनुसार उच्च शिक्षा बारह वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ

होकर चौबीस वर्ष की उम्र तक समाप्त हो जाती थी। विद्याध्ययन की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार किया जाता था, जिसमें गुरु सबको एकत्र करके दीक्षान्त उपदेश देते हुए कहते हैं कि –

'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः [5]।'–

आदि दृष्टव्य अध्ययन के विषय मुख्यतः परा और अपरा विद्या के रुप में थे। परा विद्या में आत्मा–परमात्मा का ज्ञान कराया जाता था तथा शेष लौकिक विद्याओं का ज्ञान अपरा विद्या में कराया जाता था। अपरा विद्या की शिक्षा वर्ण व व्यवसाय के अनुसार भिन्न–भिन्न थी। बी0एन0 लुणिया के अनुसार– 'जातक ग्रन्थों से विदित होता है कि बौद्ध युग में क्षत्रिय और ब्राह्मण युवक तीन वेदों और अठारह शिल्पों का अध्ययन करते थे [6]।' अधिकतर शिक्षा मौखिक होती थी, जिससे शिक्षित व्यक्ति का पाण्डित्य स्वतः स्पष्ट परिलक्षित होता था। वाद–विवाद तथा सार्वजनिक शास्त्रार्थ भी होते रहते थे, जिससे विद्यार्थियों में विचार और विश्लेषण की प्रवृत्ति विकसित होती थी। वाक्पटुता, चिन्तन, मनन, निरीक्षण, तुलना आदि विविध मानसिक शक्तियाँ विद्यार्थी में प्रस्फुटित व पुष्ट हो जाती थीं।

विद्वान् आचार्य व अध्यापक अध्ययन कार्य से अवकाश प्राप्त कर अपना पर्याप्त समय विविध विद्याओं के अन्वेषण और अनुसन्धान में लगाते थे। परिणामतः साहित्य, काव्य, नाटक, वेदान्त, भाष्य, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, गणित, युद्धविद्या तथा चिकित्सा आदि विभिन्न ज्ञान–विज्ञान के विषयों पर अनेकानेक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे गये।

प्राचीन शिक्षण पद्धति में परीक्षा प्रमाणपत्र अथवा पदवी देने जैसी कोई व्यवस्था नही दिखलाई पड़ती है। परीक्षा के नाम पर मौखिक प्रश्न ही गुरु–आचार्य द्वारा पूछे जाते थे; जिनका समुचित उत्तर देने पर अगला पाठ अथवा ग्रन्थ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया जाता था। कालान्तर में शिक्षा समाप्ति के उपरान्त समावर्तन से पूर्व गुरु अपने शिष्य को विद्वत् मण्डली, परिषद् और राजसभाओं में भेजने लगे। जहाँ उनसे विभिन्न प्रकार के प्रश्न किये जाते और शास्त्रार्थ होता। इस प्रकार योग्यता, विद्वता और पाण्डित्य के आधार पर समावर्तन संस्कार के समय उपाधि देने की प्रथा प्रारम्भ हुई और मध्यकालीन बंगाल में तर्कालंकार व तर्क चक्रवर्ती जैसी प्रतिष्ठित पदवियाँ दी जाने लगीं।

प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा के लिए आज की तरह सुव्यवस्थित व सुसंगठित शिक्षण संस्थाएँ नही थीं। सर्वप्रथम बौद्ध युग में आकर हमें बौद्ध विहारों में किंचित शिक्षण संस्थाओं का प्रारम्भिक रुप देखने को मिलता है, जहाँ बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों के साथ–साथ सामान्य जन को भी व्यवस्थित ढ़ंग से शिक्षा प्रदान की जाती थी। नालन्दा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों का प्रादुर्भाव इन्हीं बौद्ध विहारों के आधार पर हुआ। इन्हीं का अनुकरण नवीं और दसवीं शताब्दी में हिन्दू मन्दिरों के द्वारा शिक्षण कार्य के लिए किया जाने लगा। इस प्रकार उच्च शिक्षा के लिए कतिपय ऐसे केन्द्र स्थापित होने लगे, जिन्हें प्रमुखतः हम पॉच रुपों में देख सकते हैं–

- बौद्ध विहार
- हिन्दू मन्दिर
- विशाल राजधानियाँ
- प्रमुख तीर्थस्थल और
- अग्रहार ग्राम।

इनमें से बौद्ध विहार बौद्ध संस्कृति, बौद्ध धर्म, बौद्ध दर्शन व शास्त्रों के शिक्षण केन्द्र बने और हिन्दू मन्दिर हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, भारतीय दर्शन और शास्त्रों के शिक्षण केन्द्र बने। विद्वान् शासक राजाओं की विशाल राजधानियाँ यथा–कन्नौज, मिथिला, उज्जैन, धारा, तक्षशिला आदि भी उच्च शिक्षा के केन्द्र बनीं। प्रसिद्ध तीर्थस्थल यथा–वाराणसी कांची, उज्जयिनी व नासिक आदि भी प्रधान शिक्षा के केन्द्र हुए। अध्ययन–अध्यापनरत विद्वान् ब्राह्मण कुलों को राज्य की ओर से एतदर्थ दिये गये ग्रामों को अग्रहार कहा गया और ये ग्राम भी उच्च शिक्षण केन्द्र बने। यथा–सर्वज्ञपुर तथा राष्ट्रकूट राज्य का काडिपुर आदि।

भारत के प्राचीनतम ख्यातिलब्ध, सुव्यवस्थित, सुसंगठित उच्च शिक्षा केन्द्रों में तक्षशिला का नाम सर्वप्रथम है, जो कि पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी नगर से लगभग 32 किलोमीटर दूर था। ईस्वीं सन् की प्रारम्भिक सदियों में ही तक्षशिला की उच्चशिक्षा के लिए अत्यन्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। चीनी यात्री फाह्यान ने पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में ही इसकी उन्नति का विशद वर्णन किया है। इतनी प्रसिद्धि होने पर भी उस समय तक्षशिला में न तो कोई निर्दिष्ट पाठ्यक्रम था, न निश्चित समयावधि। परीक्षा का भी कोई प्राविधान नहीं था और इसीलिए सम्भवतः कोई प्रमाणपत्र अथवा उपाधि देने की भी व्यवस्था नहीं थी। शिक्षक अथवा आचार्यगण के लिए कोई निश्चित वेतन भी नहीं था, फिर भी गुरु व्यक्तिगत रुप से छात्र पर ध्यान देते थे। यही कारण था कि प्रत्येक आचार्य अपना

पाठ्यक्रम व शिक्षा अवधि निश्चित करने में स्वतन्त्र था।

दूसरा नाम नालन्दा बौद्ध विहार के विश्वविद्यालय के रुप में प्रतिष्ठित होने का प्राप्त होता है। आठवीं सदी तक यह उस समय का अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञानमन्दिर अथवा विश्वविद्यालय था, जिसमें लंका, तिब्बत, मंगोलिया, चीन तथा कोरिया और दक्षिणी पूर्वी एशिया तक के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। इस प्रकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ग्यारहवीं सदी तक यह ज्ञान–विज्ञान का विश्वस्तरीय पथ–प्रदर्शक रहा। सातवीं–आठवीं शताब्दी में वलभी नामक एक अन्य विश्वविद्यालय सौराष्ट्र में ख्याति प्राप्त था, जो कि शिक्षण कार्य में नालन्दा के समकक्ष था।

आठवीं शताब्दी में ही बिहार के भागलपुर के समीप पालवंश के राजाओं ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। यह विश्वविद्यालय अन्य की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित और सुसंगठित था। यही कारण है कि अगली चार शताब्दियों तक यह भारत का प्रसिद्ध उच्च शिक्षा केन्द्र रहा। यहॉं पाल नरेशों द्वारा शिक्षा समाप्ति पर उपाधियाँ भी प्रदान की जाती थीं। इसके पश्चात् ग्यारहवीं शताब्दी में विदेशी यात्री अलबरुनी के अनुसार कश्मीर भी उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यद्यपि यहाँ के आचार्यगण एवं पण्डित अपने–अपने अलग–अलग अध्ययन केन्द्र चलाते थे। विश्वविद्यालय जैसा कोई समुचित सुव्यवस्थित संगठन नहीं था। इसीप्रकार वाराणसी, नवद्वीप, धारा, कन्नौज तथा उज्जैन आदि भी उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे। दक्षिण भारत में मदुरा की ‘संघम’ संस्था तथा धारा (मालवा) की ‘शारदा सदन’ संस्था भी विशिष्ट उल्लेखनीय रहीं। इस प्रकार प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का स्तर अतीव उन्नत फिर भी बाह्याडम्बर से सर्वथा रहित दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि पूर्व में वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति में सतत् सन्नद्ध तत्कालीन उच्च शिक्षा विश्व में अपना परचम फहरा रही थी। इसका सम्पूर्ण श्रेय संस्कृतनिष्ठ ज्ञान–विज्ञान तथा सांख्य–योग, न्याय–वैशेषिक, पूर्व–मीमांसा तथा उत्तर–मीमांसा (वेदान्त) और परा–अपरा आदि विद्याओं को जाता है।

निष्कर्ष :– भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की सम्पूर्ण व्याख्या संस्कृत वांग्मय के माध्यम से आज विश्व विश्रुत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

- अथर्ववेद 11/5/3
- तत्रैव 11/5/8
- तत्रैव 11/5/15
- तत्रैव 11/5/17
- तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11
- प्राचीन भारतीय संस्कृति, बी0एन0 लुणिया, पृ0, 735
- शर्मा श्रीमती आर.के. 2003, एवं अन्य शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा राधा प्रकाशन मंदिर, 2002–03 श्रीवास्तव राम जी एवं आनंद मनोविज्ञान, शिक्षा तथा समाज शास्त्र में सांख्किीय विधियाँ, दिल्ली मोतीलाल बनारसी दास।
- शास्त्री आर.के. 2003, शिक्षा मनोविज्ञान सांख्यिकी तथा मापन, सूर्या पब्लिकेशन, दिल्ली।
- सिंह, रामबाले” ठर 1970, विकासात्मक मनोविज्ञान, पटना मोहनलाल बनरसीदास।
- सिंह एवं तिवारी 1978, असामान्य मनोविज्ञान, आगरा विनोद पुस्तक मंदिर।
- शर्मा, डॉ. रामनाथ 1969, मनोविज्ञान का इतिहास, आगरा लक्ष्मी नारायण प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, 1987 प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

बिहार में श्रम पलायन एक सैधांतिक अवलोकन

डॉ. रामपुकार पासवान
वाणिज्य विभाग, ग्राम–करकौली, पोस्ट–बिरौल, जिला–दरभंगा (बिहार)

जिस प्रकार मनुष्य सृष्टि का नायक है। ठीक उसी प्रकार मानवीय श्रम भी उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण उपादान है। गगनचुंबी भवनों का निर्माण विशालकाय कारखानों की स्थापना, खेतों में हरियाली और उसमें लहलहाती फसलें एवं पहांड़ों के सीनों में सुराख करने से लेकर नदियों की तुफानी धारा को रूख मोड़ने का श्रेय मानवीय श्रम को ही प्राप्त है। शायद यही कारण है कि किसी देश की वास्तविक संपदा उस देश की भूमि और पानी में नहीं बनी या खानों में नहीं। पशुओं और पक्षियों के झुंडों में नहीं और न ही रूपयों की ढेर में आंकी जाती है। प्रतियुक्त यह तो उस देश की श्रम शक्ति में आंकी जाती है। इसी भावना से अभीभूत होकर अर्थशास्त्र के पितामह एडम स्मिथ ने श्रम को उत्पादन की प्रक्रिया में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। निःसंदेह इस दृष्टि से भारत एक ऐसा राष्ट्र जहॉं विशाल मानवीय श्रम संसाधन उपलब्ध है। सच तो यह है कि मानवीय श्रम की प्रचुरता ही भारत के आर्थिक सस्कृति (Calture) की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षमता और एक अति संवेदनशील समस्या दोनो हीं है। एक ऐसा राष्ट्र जहॉं मानवीय श्रम प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वहॉं उसका यथा संभव सर्वोतम विदोहन करने की युक्ति परक राजनीति प्रणाली होना चाहिए। इसका कारण यह है कि उत्पादन की प्रक्रिया में मानवीय श्रम सर्वाधिक सक्रिय उत्पादन है। जो अन्य निष्क्रिय उत्पादनों प्रक्रियाशील होकर भौतिक वस्तु और सेवा का उत्पादन करते है। स्पष्ट है कि श्रम शक्ति का सार्थक और रचनात्मक विदोहन होता है तो वह उत्पादन प्रक्रिया का अभिन्न और अपरिहार्य उत्पादन के रूप में गतिमान होकर उत्पादन का वितरण का अपेक्षित स्तर प्राप्त करना है। जो अंततः सामाजिक और राष्ट्रीय खुशहाली समृद्ध मार्ग प्रस्सत करता है। इस तथ्य को आत्म सात करते हुए आर्थिक नीति निर्माताओं को चाहिए की वो मानवीय श्रम प्रबंध का एक व्यवहारिक मॉडल तैयार करें और इसे मुर्त रूप देकर श्रम शक्ति के बेहतर उपयोग को संभव बनावे। एक विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्र के रूप में भारतीय आर्थिक परिदृश्य को भी एक ऐसी ही रणनीति एवं नीति की दरकार रही है। श्रमिकों का हुजूम ग्रामों के स्वर्ग उगलने वाले खेत खलिहानों से मुँह मोड़कर रोजी–रोटी और बेहतर जीवन स्तर की तलाश में औद्योगिक वस्तुओं की ओर भाग रहे है। श्रम संसाधन का श्रमजनित अवसर की तलाश में एक क्षेत्र से दूसरी क्षेत्र की ओर दौड़ लगाते हुए प्रस्थान करके जो कर्म आज शुरू होग याहै उसे आर्थिक भ्रमण के संस्कारित शब्दावली में श्रम पलायन की संज्ञा दी गई है। विकास की मौजूदा नीतियों और गांवो की उपेक्षा ने बड़े पैमाने पर मजदूरों का पलायन कराया है। पिछले अनेक वर्षों में इस प्रवृति ने तुफानी रफ्तार पकड़ी है और इससे मजदूरों के पलायन के सारे शास्त्रीय संगीत और शास्त्रीय सिद्धांतो को ध्वस्त कर दिया है। दूरी और पलायन के रिश्ते और सूचना और पलायन के स्थान और आकर्षण और मूल निवास की बदहाली के बीच मे रिश्तों जैसे सारे सिद्धांत पीछे रह गए और मजदूर गांव छोड़ कर हर उस जगह जाने लगे हैं जहॉं काम हो। बिहारी शब्द बिहार और उत्तरप्रदेश की बोलचाल की भाषा के लिए नया है। पर बिहारी मजदूर वहां के आर्थिक जीवन के सदियों से अंग रही है। पूरब में संभवतः राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और उड़ीसा जैसे इलाकों में इस शब्द का प्रवेश नया है और जिस अर्थ मे प्रतियुक्त होता है वह अब तक कि बनिहारी मेहनताना और इससे मिलते जुलते शब्दों से अलग है। यह शुद्ध रूप से खुले बाजार में रोजाना श्रम बेचने और मजदूरी करने के लिए पर्याप्त होता है और इसका प्रयोग भी मुख्य रूप से शहरों में की जाने वाली दैनिक मजदूरी के लिए किया जाता है। अचरज नहीं की शब्दों में चाहें वह राजधानी दिल्ली हो या पांच सात हजार वाला दादरी।

ऐसी मजदूरी करने वालों की वजावता मंडिया लगने लगी है। दिल्ली जैसे महानगर में मजदूरों की ऐसी मंडिया कम से कम सौ होगी। तो छोटे कस्बों में एक दो ही होती है। मजदूर सुबह सुबह ही अपने काम करने के लिए उपकरणों फावड़ा, टोकरी, वसुला, रूखानी, हथौरा, छेनी, कैंची, ब्रश, पेंट का डब्बा वगैरह लिए हुए मंडियों में आ जाते है। जिस किसी को बढई, लोहार, राजमिस्त्री, पेंटर, सफेदी करने वाला, ईंट ढोने वाला जैसे मजदूरों की तलाश होता है। वे यहॉं अकार मजदूर ले जाते है। शाम या आधा दिन होने के बाद मजदूर अपनी मजदूरी लेकर अपना, मालिक पैसे चुकाकर अलग होकर दोनो से राम–राम। पर इसके

रोजगार की गारंटी न्यूनतम मजदूरी सुरक्षा की गारंटी, श्रम कानून जैसी किसी भी चीज का कोई मतलब नहीं रह गया है। यदि किसी मजदूर को चोट लगी हो तो मालिक थोड़े पैसे देकर या महरम पट्टी कराकर मुक्त हो जाता है। वह इतना भी न करायें तो न तो मजदूर कर पाता है और न कानून कर पाती है। राष्ट्रपति भवन से लेकर सुन्दर नगरी तक के मकानों की रंगाई–पोताई ऐसे हीं होती है। निर्माण से लगे मजदूर ऐसे ही आते है। विकास की मैजूदा नीतियॉ और गॉवों की अपेक्षा ने बड़े पैमाने पर मजदूरों का पलायन कराया है। पिछले अनेक वर्षो में इस प्रवृति ने तुफानी रफ्तार पकड़ी है और इसने मजदूरों के पलायन के सारे शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय सिंद्धातों को ध्वस्त कर दिया है। दूरी और पलायन रिश्तों, सूचना और पलायन के स्थान के आकर्षण और मूल निवास की बदहाली के बीच में रिश्तों जैसे सारे सिद्धांत पीछे रह गये है और मजदूर गॉव छोड़कर हर उस जगह जाने लगे है जहॉ काम हो। अब यह काम कई तरह का है। इसमें किसी फैक्ट्री में मजदूरी से लेकर खेतों में रोपनी करने, दफ्तरों में चपरासी बनने से लेकर पटरी पर दुकान लगाने, ठेला लगाने, ठेला ठेलने, ईंट बनाने और होटलों में झुठा धोने तक का काम शामिल है। रिक्सा चलाना खोमचा लगाने जैसे काम तो सबसे ज्यादा आकर्षण माने जाते है और ये दो पेशे ही प्रशासन और पुलिस, श्रम विभाग, शहरी निकायों का पेट कितने जायज और नाजायज तरीको से भरते है। इस पर पूरी पोथी लिखी जा सकती है।

सिपाही, जमादार से लेकर अधिकारियॉ का पेट पालने का काम भी इन लोगो को न तो खोमचा लगाने और रिक्सा चलाने का बैद्य, हक मिलता है या किस्म भूमिका पर हमारी चिन्ता का मुख्य विषय यह लोग नहीं है। हमारे चिन्ता तो रोज अपना श्रम बेचने आये मजदूर हो और देश का शायद ही कोई ऐसा शहर या कस्वा होगा जहॉ ऐसी मण्डी रोजाना लगती हो। जहॉ हार्डवेयर की दूकानें होती है, जहॉ निर्माण कम्पनियों या ठिकेदारों के दफ्तर होते है। जहॉ बसें और रेलगाड़ियॉ दौड़ती है। वहॉ ये मंडियॉ लगने लगती है। दिल्ली शहर में ऐसे कम से कम सौ बड़ी मंडियॉ है। जहॉ हजार के करीब मजदूर बैठते है। कालका जी कैम्प, चौराहा, शहादरा, विश्वासनगर, कोटला, राजा गार्डेन जैसे ठिकानों पर तो शुबह चले जाइए तो ये मजदूर आपको दिख जायेगे। स्कूटरों और कार से आये काम करवाने वाले बिना पिछला रिकार्ड, हुनर और काम की क्षमता जाने वगैर इनके बाजुओं के मॉस पेशियों के ताकत टटोलकर वैसे मजदूरों का चुनाव किया करते है। जैसे जानवर खरीदें जा रहे हों और मजदूर भी कार वाले को देखकर कुछ ज्यादा ही उत्सुकता से झुम उठते है। जब मजदूरों की ऐसी फैज हो तो जाहिर तैर पर वे खुद ज्यादा मोल–जोल की स्थिति में नहीं होती है उन्हें ज्यादा से ज्यादा काम करने वाली की अज्ञानता का लाभ मिलता है। छोटे शहरों में मजदूर आपस के गॉवों में साईकिल, बस या रेल से आते है। शाम को वे वापस अपने घर चले जाते है। पर दिल्ली जैसे महानगरों में मजदूरों की बस्तियॉ बन गयी है। अक्सर शहर धीर–धीरे गॉव में तबदील होते जा रहे है। वहॉ छोटे–छोटे कमरों वाले बड़े–बड़े मकान और हर कमरे में पॉच सात मजदूर रह लेते है।

अक्सर वे गॉव चारों तरफ से बड़ी–बड़ी कॉलोनियों से घिर गये है और वहॉ ईंटगारा, रोड़ी, चुना, सफेदी, हार्डवेयर का धंधा चलता है। सो मजदूरों को वहीं रहने से लाभ रहता है पर इन कमरों को देखने पर मुर्गी क दर्वे ज्यादा अच्छे लगने लगते है। कहीं से भी रोशनी या खुली हवा की जगह नहीं होती और नहाने, शौच, पेशाव या सारा जिम्मा भगवान भरोसे है।

सारे मजदूरों की चुल्हे भी अलग–अलग होते है और मिट्टी तेल से लेकर राशन सब्जी के कुछ सामान से सामन्य मॅहगे दामों में लेना होता है। अक्सर ये दूकाने मकान मालिकों की हीं होती है और उनके किरायेदार बाहर से समान नहीं ले सकते। कई बार ऐसा न करने या किराये में जरा भी देरी या चुक होने पर पिटाई भी हो जाती है। परदेश में रहने के कारण मजदूर लड़ने–झगड़ने से दूर ही रहना चाहते है। दो–चार उॅची बोली या गाली, पिटाई भी सहकर चुप रहते है। जाहिर तैर पर उनकी किराये की कमाई हीं कई लाख महीने की है। जहॉ तक काम की बात है तो कुछ मामलों में बहुत साफ प्रवृतियॉ दिखाई देती है। दुसरी ओर राज मिस्त्री का काम करने के लिए राजस्थान और छतीसगढ़ मजदूर जाया करते है। अभी भी बिहारियों और पूर्बीयों लोगो के जिम्में सामान ढ़ोने जैसे मोटे और कम कमाउ कम हीं है। रिक्सा चलाना और खोमचे लगाने वालों का हिंसाब अलग है।

संदर्भ सूची :–

1. मामोरिया सी.वी.–सेवी वर्गीय प्रबंध एवं औद्योगिक 1997
2. दासोरा एम.एल.
3. मामोरिया ए.के.
4. भोगोलिवाल टी.एन.–परसनल मैनेजमेंट एंड इंडस्ट्रीयल रिलेशन 1990
5. 5. प्रसाद रामचन्द्र–बिहार
6. मिलको विच–हुसैन रिसोर्स मैनेजमेंट, दीप एंड दीप प्रकाशन, नई दिल्ली
7. सक्सेना एव.सी. 1992–व्यापार प्रशासन एवं प्रबंध साहित्य भवन, आगरा
8. सिंह एस.पी.1998–अर्थशास्त्र के सिद्धांत, विकास पब्लिसिग हाउस, नई दिल्ली
9. झा जी.के. 1985–लेवर प्रोब्लम इन पब्लिक सेक्टर
10. अहूजा कांती 1978–आईडियल लेवर इन विपेज इंडिया। मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली
11. अग्रवाल ए.एन. 1980–इंडिया एग्रीकल्चर प्रोब्लम प्रोग्रेस एंड प्रोस्पेक्टस, नई दिल्ली
12. अग्रवाल विना 1980–मैकेनिजेशन इन इंडियन एग्रीकल्चर एन एनालयटीकल स्टडी वेस्ट ऑन पंजाब, नई दिल्ली एलाइड।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

स्थानीय शासन में पंचायती राज की भूमिका

प्रो. (डॉ.) राज कुमार सहनी
अतिथि सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान–विभाग) राम प्रसाद सिंह महाविद्यालय चकेयाज, महनार (बैशाली)
बी.आर.ए.बी. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत में स्थानीय शासन को स्थानीय स्वशासन के नाम से जाना जाता है। ब्रिटिश भारत में लॉर्ड रिपन को स्थानीय शासन का जनक कहा जाता है। स्थानीय शासन को लोकतंत्र की सर्वोतम एवं प्रथम पाठशाला भी कहा गया है। महात्मा गॉधी भी ग्रामों को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि वास्तविक लोकतंत्र की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है। वे पंचायती राज के समर्थक थे। इसलिए भारत के संविधान में अनुच्छेद 40 में पंचायती राज के गठन का उल्लेख संविधान निर्माताओं ने किया है।

स्थानीय स्वशासन का अर्थ होता है कि स्थानीय क्षेत्रों का प्रशासन वहॉ के स्थानीय निर्वाचित जन प्रतिनिधियों के द्वारा क्रियान्वयन किया जा रहा हो। स्थानीय शासन का संचालन स्थानीय जनता के द्वारा स्वयं चलाया जाता है। इसिलए उसे स्थानीय स्वशासन का नाम दिया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि स्थानीय स्वशासन सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्था है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में व्यापक राजनीतिक सहभागिता एवं व्यापक विकास के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था को स्थापित किया गया है। भारत में शासन के तीन स्तर है। (1) केन्द्रीय स्तर (2) राज्य स्तर और (3) स्थानीय स्तर, तीसरे स्तर जिसे स्थानीय स्वशासन कहा जाता है के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र के लिए पंचायती राज की व्यवस्था तथा शहरी क्षेत्र के लिए नगरपालिका व्यवस्था है जिनका मुख्य उदेश्य स्थानीय समस्याओं का समाधान तथा व्यापक राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करना होता है। स्थानीय स्वशासन से स्वतंत्रता का वातावरण बना रहता है तथा जनता को यह एहसास होता है कि उसे भी राजनीतिक व्यवस्था का अंग समझा जाता है। आधुनिक समय के स्थानीय स्वशासन का शासन मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि इससे प्रांतीय एवं केन्द्रीय सरकार का कार्य हल्का होता है। इसके अलावा इसने लोकतंत्र का सफल बनाने एवं आर्थिक नियोजन एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सर्वप्रथम लोकतंत्र की शिक्षा एवं राजनीतिक प्रशिक्षण यहीं से प्राप्त होती है। स्थानीय स्वशासन से ही समाज के नीच–से–नीचे स्तर के लोगो को राजनीतिक भागीदारी प्रदान किया जाना सम्भव हो सकता है तथा लोकतंत्र का सपना साकार हो सकता है। स्थानीय स्वशासन इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह लोगो को योग्य नागरिक बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और ग्रामीण स्तर पर भी हमेशा स्वतंत्रता का वातावरण बनाये रखता है।

वैदिक काल से ही पारम्परिक भारतीय राज व्यवस्था का प्रमुख आधार ग्राम ''गणराज्य'' था परम्परागत पंचायती राज प्रणाली सदियों से विधमान थी परन्तु ब्रिटिश राज ने इसे भंग कर दिया था। आल्टेकर के शब्दों में ''अत्यंत प्राचीन काल से ही भारत के गॉव प्रशासन की धुरी रहे है''। सन् 1909–10 में भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने पंचायतों को पुनः जीवित करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया था। गॉधी जी और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं ने विकास के आरंभिक बिन्दु के रूप में गॉव की प्रमुखता की वकालत की थी तथा औद्योगिकरण और शहरीकरण का विरोद्ध किया था। गॉधीवादी दृष्टिकोण के प्रति उदारता दिखाते हुए भारत में पंचायत को स्थानीय स्वायत शासन के आधार स्वरूप स्वीकार किया गया है और संविधान सभी ने इसे राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 40 में सम्मिलित कर लिया। 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण और सन् 1952 में समुदायिक विकास कार्यक्रम के शुभारम्भ से प्राथमिक स्तर से विकास का प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया। ग्रामीण क्षेत्र में पंचायती राज की स्थापना किये जाने के लिए कॉग्रेस ने एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया जिसने 12 जुलाई 1954 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उन्होनें पंचायती राज की स्थापना की सिफारिश की। वर्ष 1952 में जवाहरलाल नेहरू की पहल पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ हुआ। वर्ष 1957 में समुदायिक विकास कार्यक्रम की जॉच के लिए एक अध्ययन दल बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में नियुक्ति किया गया। बलवन्त राय मेहता समिति ने वर्ष के अन्त में अपना प्रतिवेदन दिया तथा यह सिफारिश की कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को तुरन्त शुरू करना चाहिए। 02 सितम्बर 1959 में सर्वप्रथम

राजस्थान ने पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम पास किया। 02 अक्टुबर 1959 को प्रधानमंत्री **पं. जवाहरलाल नेहरू** ने राजस्थान विधान सभा द्वारा पंचायत समिति व जिला परिषद अधिनिय का उदघाटन ''नागौर'' में किया वर्ष 1959 में हीं राजस्थान के बाद ऑध्रप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था को लागू कर दिया गय। 12 सितम्बर 1977 को मंत्रीमंडल सचिवालय ने पंचायती राज संस्थाओं की कार्य प्रणाली का अध्ययन करने एवं प्रचलित ढ़ॉचे में आवश्यक परिवर्तन सुझाने हेतु एक उच्च स्तरीय समिति श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में नियुक्ति की। 1986 में प्रधानमंत्री राजीव गॉधी ने लोकतंत्र विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनरूद्धार के लिए एक समिति का गठन किया जो एल.एम. सिंधवी की अध्यक्षता में गठित हुई। सिंधवी समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक रूप से मान्यता देने और उनका संरक्षण करने हेतु सिफारिश की। पंचायतों की वित्तीय दशा के अवलोकन हेतु राज्यपाल द्वारा प्रत्येक पॉच वर्ष पर राज्य वित्त आयोग का गठन किया जाता है।

भारत में पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास काफी प्राचीन रहा है जिसमें समय–समय पर बदलाव आता रहा है परन्तु इसमें व्यापक बदलाव लाया गया 1993 ई0 में और पंचायती राज व्यवस्था का नया नामकरण किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महात्मा गॉधी के विचारो से प्रेरणा लेकर पंचायती राज व्यवस्था को मूर्त रूप देने का प्रयास किया गया। भारतीय संविधान में भी इसे स्थान दिया गया है। 40वें अनुच्छेद में राज्यों को पंचायतों के गठन के निर्देश दिये गये है इसके साथ हीं संविधान के 7वीं अनुसूचि में राज्य सूचि को प्रविष्ट संख्या 5 में ग्राम पंचायतों को शामिल करके इसके संबंध में कानून बनाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है लेकिन इस संबंध में क्रांतिकारी कदम उठाया गया। 1993 ई. में जब पी.के. थुंगन समिति की अनुशंसाओं के आलोक में 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संविधान में स्थान दिया गया। इस संशोधन के उपरान्त संविधान के भाग 9 में से 16 अनुच्छेदों का प्रावधान करके तथा संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायत के गठन, पंचायत के सदस्य का निर्वाचन, सदस्यों के लिए आरक्षण और पंचायत के कार्यो के संबंध में मुख्यतः निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गई है।

(1) पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे नीचले स्तर पर ग्राम सभा होगी जिसमें एक या एक से अधिक गॉव शामिल किये जा सकते है। ग्राम सभा की शक्तियों के संबंध में राज्य विधान मण्डल द्वारा कानून बनाया जाएगा।

(2) जिन राज्यो की जनसंख्या 20 लाख से कम हो उनमें द्विस्तरीय पंचायत, प्रथम जिला स्तर पर तथा द्वितीय ग्राम स्तर पर गठित की जायेगी। 20 लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों में पंचायते त्रिस्तरीय होंगी। इनका पहला स्तर ग्राम, द्वितीय स्तर प्रखण्ड तथा तृतीय स्तर जिला पंचायतें होंगी।

(3) सभी स्तर के पंचायत सदस्यों का निर्वाचन, व्यस्क मताधिकार द्वारा प्रत्यक्ष रूप 5 वर्षो के लिए चुनाव किया जायेगा। ग्राम स्तर के पंचायत के मुखिया का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं द्वारा चुना जायेगा तथा प्रखण्ड स्तर पर पंचायतों के समितियों के द्वारा अपने सदस्यों में से हीं एक प्रमुख एवं उपप्रमुख का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है और जिला परिषदो के निर्वाचित सदस्यों द्वारा जिला अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव भी अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

(4) पंचायत के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के अतिपिछड़ा वर्ग के पुरूष एवं महिलाओं के सदस्यों को उनकी जनसंख्या के अनुपात मे आरक्षण प्रदान किया जायेगा तथा महिलाओं के लिए भी 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की जायेगी ।

(5) सभी स्तर के पंचायती का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा परन्तु इनका विघटन इस कार्यकाल के पूर्व भी किया जा सकता है परन्तु विघटन की दशा में 6 माह के अन्दर चुनाव करवाना आवश्यक होगा।

(6) पंचायतों के कार्य एवं शक्तियॉ : संविधान की 11वें अनुसूचि में पंचायतों के कार्य एवं शक्तियों का वर्णन किया गया है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित है :– भूमि सुधार तथा मृर्दा संरक्षण, कृषि विकास, लघु सिचाई, पशुपालन, मतस्य पालन, मुर्गी पालन, कुकुट पालन, खादीग्रामोद्योग, पेयजल ईंधन, ग्रामीण सड़को, पुलिया, ग्रामीण विधुतीकरण, गरीबी निवारण, कार्यक्रम प्राथमिक एवं माध्यमिक विधालय, प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय, स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन, परिवार कल्याण, कमजोर वर्गो का कल्याण तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली

(7) राज्य विधान मंडल कानून बनाकर पंचायतों को कर लगाने उन्हें वसुलने तथा प्राप्त धन व्यय करने का अधिकार प्रदान कर सकते है।

(8) पंचायतों के वित्तीय स्थितियों के संबंध में जॉच करने के लिए प्रति 5वें वर्ष वित्तीय आयोग का

गठन किया जायेगा यह आयोग अपना प्रतिवेदन राज्यपाल को प्रस्तुत करेगा। 73वें संविधान संशोधन के पूर्व पंचायती राज व्यवस्था और इसकी कार्य प्रणाली में ग्राम सभा की भूमिका नगण्य थी। पर 73वें संविधान संशोधन ने ग्राम सभा को मान्यता एवं महत्व देकर भारतीय लोकतंत्र में एक नया आयाम जोड़ा है। ग्राम सभाओं का जीवन्त होना केवल पंचायती राज व्यवस्था का हीं नहीं अपितु भारतीय लोकतंत्र की सफलता में भी सहायक सिद्ध होगा। आज लोकतंत्र में जिम्मेदारी, जबाबदेही, पारदर्शिता का स्थान गौण है। पर पंचायती राज व्यवस्था ने आज ग्राम सभाओं के खुले मंच पर आम आदमी की भागीदारी से जिम्मेदारी, जबाबदेही एवं पारदर्शिता को नये आयाम की ओर ले जाना शुरू कर दिया है।

73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संविधानिक स्तर प्रदान करने के फलस्वरूप इनके प्रकृति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। आज पंचायतों के चुनावों में विधानसभाओं एवं लोकसभाओं के चुनावों से भी ज्यादा गहमा–गहमी देखने को मिल रही है। यधपि ये चुनाव दलिय आधार पर नहीं लड़े जाते फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दल इन चुनावों में भी काफी क्रियाशील पाये जा रहे है। यहीं नहीं जिला पंचायत के निर्वाचन के नतीजो को राजनीतिक क्षेत्र में सामान्य जनता की इच्छा का संकेत माना जाने लगा है और इन परिणामों के आधार पर भविष्य के राजनीतिक निर्णयो का विश्लेषण किया जा रहा है। वर्तमान पंचायती राज में महिलाओं अनुसूचित जाति एवं जनजाति और पिछड़े वर्ग के लोगो को स्थान सुरक्षित किये जाने के फलस्वरूप सदियों से राजनीतिक सत्ता से वंचित लोगो को सत्ता में हिंस्सेदारी का अवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था में सिर्फ राजनीतिक सुधार ही नहीं बल्कि सामाजिक सुधार का भी दृष्टिगोचर हो रहा है। पंचायती राज ने लोकतांत्रिक प्रशासन को केन्द्रीय राजधानी दिल्ली एवं विभिन्न प्रांतीय राजधानियों से जिला एवं प्रखण्ड मुख्यालयों के साथ ग्रामीण स्तर तक पहुॅंचाने का कार्य किया है। आज ग्राम से जिला स्तर तक के विकास कार्यक्रमो का निर्धारण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा हो रहा है। यह लोकतंत्र के सशक्तिकरण का शुभ संकेत है। ग्राम पंचायतों को विकास योजनाओं के निर्धारण एवं क्रियान्वयन के लिए राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों द्वारा सीधे अनुदान राशि मिलने से पूर्व में जो सरकारी धन का बन्दर बॉंट होता था जिसमें अभी कमी आयी है। इसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में विकास की रोशनी पर्याप्त मात्रा में देखने को मिल रही है। पचायती राज के उपर्यूक्त सकारात्मक परिणामों के अतिरिक्त इसके कुछ नाकारात्मक प्रभाव हीं परिलिक्षित हो रहे है। यह सच है कि पंचायती राज के प्रावधानों ने सदियों से घर की चहारदीवारी में बंद रहने वाली महिलाओं को संविधानीक पदों पर आरूढ़ होने का अवसर प्रदान कर दिया गया है। निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था किया जाना इस दिशा में एक सराहनीय कदम हो सकता है। साथी ही यह भी आवश्यक है कि पंचायत सदस्यों को भी संसद एवं विधान सभाओं के तरह वेतन प्रदान किये जाए इन उपायों के जरिए वर्तमान पंचायती राज के व्यवहारिक समस्याओं को काफी हद तक दूर किया जा सकता है और इसके भविष्य को और ज्यादा उज्जवल बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. बी.एल.ग्रोवर – आधुनिक भारत
2. एस. आर.महेश्वरी – भारत में स्थानीय शासन
3. श्री वास्तव एन.के. – भारत में पंचायती राज
4. गॉधी जी राय – राजनीति के मूल सिद्धांत
5. कुरूक्षेत्र – 2008 पंचायती राज का विकास
6. योजना – पंचायती राज
7. डॉ. सुभाष कश्यप– भारतीय राज व्यवस्था
8. आर.एस. महेश्वरी – भारत में ग्रामीण विकास
9. सक्सेना – राजनीति भूगोल
10. एस. चन्दाना – जनसंख्या भूगोल

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात भारत–अमेरिका संबंध

डॉ. रणजीत सिंह यादव
यूजीसी–नेट, पी.एच.डी, राजनीति विज्ञान

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के संबंधों का युद्धोत्तर इतिहास अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का एक ऐसा दुखद प्रसंग है, जिसे किसी परंपरागत मुहावरे में अभिव्यक्त करना कठिन है। दोनों देशों के बीच संबंधों का रेखाचित्र मित्रता की चाह, कटुता, तनाव अलगाव और अविश्वास के दायरे में निरंतर चढ़ता और उतरता रहता है। अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय महत्व के प्रसंगों पर विचार और व्यवहार में मतभेद ही उजागर हुआ है। स्वेज नहर एवं कांगों विवाद के मसलों के अतिरिक्त समान दृष्टिकोंण तथा सहयोग का सर्वथा आभाव देखा गया है। समय के साथ दोनों देशों के दायरे अधिक गहरे होते गये इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुये डॉ. बलदेव राज नायर लिखते हैं, अमेरिकी विदेशनीति हर देश को प्रभावित करती है। इसके क्रियान्वयन में मित्रों एवं सहयोगी राष्ट्रों के संबंध में संयुक्त राज्य अमरीका काफी दृण एवं शत्रुओं के साथ काफी निर्मम तथा क्रूर तक रहा है। तटस्थ राष्ट्रों के प्रति उसका दृष्टिकोंण घृणास्पद एवं कठोर रहा है। भारत को इसी विश्वव्यापी रणनीति का आक्रोश सहना पडा है। भारत–अमरीकी संबंधों को दो मौलिक, परंतु परस्पर विरोधी प्रेरणा स्रोतों की गत्यात्मक अंतक्रिया के संदर्भ में समझना चाहिये, एक ओर तो भारत के भारत के अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सतत महत्वाकांक्षा है, जबकि उसके लायक समर्थ्य उसमें नहीं है और दूसरी ओर अमरीका का अपनी सुरक्षा के लिए दूसरे राष्ट्रों का उपयोग करने का लक्ष्य है। भारत अमरीकी पारस्परिक संबेंधों को समझने की कुन्जी इसी में मिलेगी, न कि उस व्यक्तिगत सहानुभूति या आक्रोश में, जो भारत कि प्रति अमरीकी नेता विशेष के हृदय में अथवा किसी राजदूत के व्यक्तित्व में है।

स्वाधीनता से पूर्व भारत और अमरीका में कोई विशेष संपर्क नहीं था, क्योंकि ये देश बहुत दूर स्थित हैं और फिर भारत में अंग्रेज शासक जान बूझकर भारत को दूसरे देशों के संपर्क में नहीं आने देना चाहते थे अमेरिका स्वयं द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक विश्व राजनीति में पार्थक्यवादी नीति का अनुसरण करता आ रहा था। बहुत कम संख्या में अमरीकी यात्री भारत आते थे, क्योकि एक तो अमरीका को उस समय चीन और जापान को छोडकर किसी एशियाई देश में विशेष रूचि नहीं थी, दूसरी भारत की गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, आदि को लेकर विचित्र कहानियां अमरीका में प्रचलित थी, स्वतंत्रता से पूर्व कुछ अमरीकी पत्रकार तथा लेखक भारत आए थे और उन्होंने भारत की गरीबी और पिछड़ेपन को चित्रित करने का प्रयास भी किया था मिस मेयो द्वारा लिखित पुस्तक **"मदर इंडिया"** इसका प्रमाण है तथापि सत्य यह है कि दोनों देशों के सांस्कृतिक, सामाजिक संबंध भी नाम मात्र के थे। प्रथम विश्वयुद्ध के वाद भारत और अमरीका एक दूसरे के संपर्क में आने लगे, भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के कई नेता अमरीका को लोकतंत्र और स्वतंत्रता का महान समर्थक समझते थे। सन् 1911 में लाला हरदयाल ने अमरीका में गदर पार्टी की स्थापना कही 1917 में में अमरीका में निवास करने वाले कतिपय भारतीयों ने इण्डिया लीग नामक एक दूसरी संस्था संयुक्त राज्य अमरीका में स्थापित की थी। सन् 1927 में कुछ भारतीयों ने इण्डिया लीग नामक एक दूसरी संस्था संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थापित की थी। 1943 में स्वाधीनता राष्ट्रीय समिति की स्थापना संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हुई थी।

भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत–अमरीका संबंधों के एक नये युग की शुरूआत हुई प्रधानमंत्री पं. जबाहर लाल नेहरू का व्यक्तित्व और दर्शन अमरीकी नीति निर्माताओं की समझ से परे थे। अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर उनकी समझ ह्वाइट हाउस और पेण्टागन से भिन्न थी, अतः ट्रूमैन, आइजनहावर, डलेस, कैनेडी और जॉनसन के लिए वे पेचीदा व्यक्तित्व ही बने रहे नेहरू के बारे में आइजनहावर ने लिखा है कि **"पण्डित नेहरू का व्यक्तित्व दुर्बोध और उपनिवेशवादी है।"** दिर्तीय विश्वयुद्ध के बाद वस्तुत विश्व के इन दो लोकतांत्रिक देशों के बीच एक–दूसरे के मानस को समझने और तदनूसार नए परिप्रेक्ष्य में एक दूसरे की भूमिका को स्वीकार करने की मनोवृति का आभव रहा। स्वतंत्र भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति प्रारंभिक काल में अमरीकी शासकों की समझ से परे रही तो दूसरी और तीसरी दुनियां में अमरीका के महत्वाकांक्षी भूमिका भारत के लिए स्वीकार करना कठिन था। पं. नेहरू के जीवनी लेखक डॉ. एस. गोपाल ने सन् 1949 में नेहरू द्वारा की गई अमरीका यात्रा के उपरांत उनकी मनोव्यथा को व्यकक्त करते

हुये उन्होंने उद्घृत किया है, **"उन्होंने हर तरह मेरा स्वागत किया मगर वे मुझसे कृतश्रता और सद्भावना से कुछ अधिक चाहते थे और यह कुछ मै उन्हे दे नहीं सकता था।"**

श्री नेहरू युग में कई सारे मसलों पर भारत और अमरीका में मतभेद के बावजूद कतिपय क्षेत्रों में पार्याप्त सहयोग का आधार मौजूद था इस संबंध में नेहरू का स्पष्ट मत थ कि **"दोनों देश लोकतान्त्रिक संस्थाओं और लोकतांत्रिक जीवन पद्धति के प्रति समान विश्वास रखते है। और शांति एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कृत संकल्प है। ऐसी स्थिति में दोनों के बीच मत्री और पारस्परिक सहयोग होना अत्यंत स्वभाविक है।"** नेहरू युग में दोनों देशों के नागरिकों का संपर्क सदा बना रहा हजारों की संख्या में भारतीय नागरिक कार्यो के लिए, शिक्षा या प्रशिक्षण के लिए, व्यापार या भ्रमण के लिए अमरीका जाते रहे और इसी प्रकार अमरीका के नागरिक भी भारत आते रहे अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों अमरीकी विषयों का अध्ययन शुरू हुआ तथा अमरीकी विश्वविद्यालयों में भारतीय विषयों का अध्ययन–अध्ययापन दिलचस्पी से प्रारंभ हुआ। नेहरू युग के पश्चात लाल बहादुर शास्त्री के नेतृत्व में भारत ने गुट–निरपेक्षता की नीति का दृढ़ता के साथ पालन किया और इसी नीति को उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी स्वरूप प्रदान किया इसी नीति का अनुसरण करते हुये जब शास्त्री युग में अमरीका ने उत्तरी वियतनाम पर भारी मात्रा में बम बर्षा करना शुरू कर दिया तो भारत ने इसकी कटु आलोचना की, जिसके कारण अमरीका में भारत के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। 1965 के भारत–पाकिस्तान युद्ध के दौरान पाकिस्तान द्वारा भारत के विरूद्ध अमरीका द्वारा प्रदान किये गये शस्त्रों के कारण भारत–अमरीका संबंधों में उग्रता पैदा हो गई इस युद्ध के दौरान अमरीका का रूख भारत विरोधी रहा था।

सन् 1965 में भारत–पाकिस्तान यद्ध की समाप्ति के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के पश्चात भारत–अमरीका संबंधों को नये सिरे से सुधारने के प्रयत्न किये गये भारत–पाकिस्तान युद्ध के बाद अमरीका ने बन्द की गई आर्थिक सहायता को पुनः आरंभ किया, किंतु भारत को अमरीका द्वारा दी जाने बाली यह आर्थिक सहायता नगण्य थी। सन् 1968 में अमरीका ने जो भारत को आर्थिक सहायता स्वीकृत की जो पिछले 20 वर्षो में सबसे कम थी, जिसके कारण भारत की योजनाओं पर प्रतिकूल असर पड़ा। पश्चिमी एशिया संघर्ष 1967 तथा वियतनाम युद्ध के मुद्धों पर भारत अमरीका दृष्टिकोंणों में व्यापक अंतर उभर कर सामने आया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अरब राष्ट्रों के पक्ष का समर्थन किया, जबकि अमरीका ने इजरायल को प्रबल समर्थन दिया। सन् 1969–70 में वियतनाम के प्रश्न को लेकर दोनों दशों में तनाव काफी बढ़ गया। यद्यपि 1969 में राष्ट्रपति निक्सन भारत आए, किंतु भारत की वियतनाम नीति में वे कोई परिवर्तन नहीं करबा पाये। भारत उत्तर वियतनाम पर अमरीकी बम बर्षा का विराधी रहा 1970 में भारत में उत्तरी वियतनाम के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित कर लिए, जबकि दक्षिणी वियतनाम के संदर्भ में ऐसा निर्णय नहीं लिया। 1970 में भारत सरकार द्वारा भारत में तिरूवनन्तपुरम एवं लखनऊ में स्थित अमरीकन सांस्कृतिक केन्द्र बन्द करवा दिये, क्योंकि ऐसी आशंका थी कि इन केन्दों के माध्यम से कुछ अवांछित कार्य किये जाते है स्वाभाविक रूप से अमरीकन सरकार इससे अप्रसन्न हुई, इसी समय में कम्बोडिया में अमरीकन फौजों के प्रवेश का भारत ने विरोध किया इस प्रकार दोनों देशों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गये। अमरीकन सरकार द्वारा प्रकाशित भारत के नक्शों ने भारतीय संसद एवं लोकमत को क्रोधित कर दिया। भारत स्थित अमरीकन सूचना केन्द्र के एक प्रकाशन संयुक्त राष्ट्र के बीस वर्ष में भारत का क्षेत्रफल 30,46,232 वर्ग किलोमीटर बताया गया था। इस क्षेत्रफल में जम्मू कश्मीर का भाग सम्मिलित नहीं किया गया था। संयुक्त राष्ट्र संखिकी पत्रिका,1965 में भी ऐसा ही प्रकाशित किया गया था। भारतीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत का क्षेत्रफल 01 जनवरी 1966 को 32,68,090 वर्ग किलोमीटर था। 05 अगस्त 1970 को इस विषय पर भारत सरकार का ध्यान संसद में आकर्षित किया गया और इस प्रकाशन पर आपत्ति प्रकट की गई। प्रत्युत्तर में विदेश उपमंत्री दिनेशसिंह ने कहा कि अमरीकन सरकार को इस संबंध में विरोध पत्र भेजा जा चुका है। अमरीका का यह कार्य भारतीय मैत्री के विरोध में ही था।

पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी वाजपेयी की भारतीय जनता पार्टी गठबंधन सरकार परमाणु नीति से अमरीकी प्रशासन चिंतित हो उठा गठबंधन सरकार ने परमाणु नीति की पुर्नसमीक्षा की घोषणा की तो अमरीकी अधिकारियों ने चेतावनी दी कि यदि भारत ने परमाणु हथियारों का परीक्षण किया तो उसके खिलाफ स्वतः दण्डात्मक प्रतिबंध लागू हो जायेगें। जब भारत ने 11 एवं 13 मई 1998 को सफल परमाणु परीक्षण कर आणविक शक्ति बनने के अपने अडिग निश्चय को

प्रकट कर दिया तो अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने कठोर प्रतिबंध लगा दिये गये। क्लिंटन ने परीक्षण को खतरनाक गलती बताते हुये भर्त्सना की और उन्होंने 1994 के अमरीकी परमाणु अप्रसार कानून के अंतर्गत प्रतिबंधों की घोषणा की जिससे सभी द्विपक्षीय सैन्य व आर्थिक बैंकों से ऋण बन्द हो गया बिल क्लिंटन ने भारत से यह घोषणा भी करने को कहा कि वह और परमाणु परीक्षण नहीं करेगा तथा बिना कोई शर्त लगाये सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर कर दे। अमरीका ने पी–5 तथा जी–8 की बैठकों में भारत के नाभकीय परीक्षणों की आलोचना करने के लिए पहल की बाद में अमरीका भारत की सुरक्षा चिंताओं को समझने लगा और भारत के विरूद्ध लगाये प्रतिबधों को आशिंक रूप से हटाने की घोषणा की गई। अमरीका ने पाकिस्तान पर दबाव डालते हुये कारगिल से अपनी सेना हटाने को कहा, अमरीकी प्रशासन का मानना था कि इस घुसपैठ की योजना पाक सेना ने छापामारी और आफगानी तालिबान के साथ मिलकर बनाई थी। भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी वाजपेयी सितम्बर 2000 में 11 दिन की अमरीका यात्रा पर रहे अमरीका प्रवास के दौरान उन्होंने अमरीकी कांग्रेस के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को संबोधित किया। विकास के मामले में भारत–अमरीकी संबंधों का आह्वान करते हुये इस मामले में एक व्यापक वैश्विक वार्ता का आयोजन नई दिल्ली में करने की उन्होंने पेशकश की, अमरीकी सांसदों को उन्होंने बताया कि विश्व का कोई अन्य देश आतंकवादी हिंसा का उतना शिकार नहीं हुआ है। जितना भारत को गत दो दशकों में होना पड़ा है। आतंकबाद से लडने के लिए उन्होंने भारत व अमरीका के बीच नजदीकी सहयोग का आह्वान किया परमाणु अप्रसार पर बोलते हुये वाजपेयी सीटीबीटी पर भारत के हस्ताक्षर का कोई आ" वासन दिए बिना कहा कि अप्रसार के अमरीकी प्रयासों में भारत कोई बाधक नहीं बनना चाहता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत इस मामले में अमेरिका की चिंता समझता है तथा यह चाहता है कि अमरीका भी भारत की सुरक्षा चिंताओं को समझे, अफगानिस्तान के तालिबान प्रशासन द्वारा आतंकबादियों को दी जा रही शरण व सहायता के मुद्दे पर भारत–अमरीकी संवाद को जारी रखने को दोनों देशों में सहमति हुई। डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में भारत–अमरीकी संबंधों में प्रगढ़ता, गर्मजोशी ओर सक्रियता आयी। अप्रैल 2005 में भारतीय विदेश मंत्री श्री नटवर सिंह अमरीका की यात्रा पर गये इस दौरान राष्ट्रपति बुश ने द्विपक्षीय संबंधों में में नई गर्मजोशी का संकेत देते हुये कहा अमरीका भारत को एक वैश्विक शक्ति मानता है 14 अप्रैल 2005 को अमरीका ने भारत के साथ एक ऐतिहासिक हवाई समझौते पर हस्ताक्षर किये। **"न्यू फ्रेमवर्क फॉर दि यूएस–इंण्डिया डिफेंस रिलेशनशिप"** शीर्षक बाले इस समझौते पर दोनों देशों के मध्य 10 वर्षो के लिए सुरक्षा सहयोग की रूपरेखा निर्धारित की गई। दोनों देशो के साझा सुरक्षा हितों पर बल देते हुये इसमें कहा गया है कि दोनों देशों के रक्षा प्रतिष्ठान संयुक्त अभ्यास व आदान प्रदान करेगें, साझा हित होने पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों में मिल जुलकर काम करेगें तथा सुरक्षा को बठाबा देने व आतंकबाद को परास्त करने के लिए सेनाओं की क्षमता मजबूत करेगें।

भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 26–30 सितम्बर 2014 तक अमरीका की यात्रा की थी भारतीय प्रधानमंत्री मोदी और अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारत–अमरीका द्विपक्षीय संबंधों को नई ऊंचाइयों पर ले जाने, असैन्य परमाणु करार को लागू करने में आ रही बाधाओं को दूर करने और आतंकबाद से लड़ने सहयोग की प्रतिबद्धता जताई संयुक्त बयान जारी कर कहा गया कि भारत–अमरीका स्वभाविक साझीदार है दोनों नेताओं की लम्बी बातचीत में आर्थिक सहयो, व्यापर और निवेश सहित व्यापक मुद्दों पर चर्चा हुई मोदी ने अमरीका में भारतीय सेवा क्षेत्र की पहुंच को सुगम बनाने की मांग की गई थी। भारत और अमरीका निसंदेह हर एक क्षेत्र में काफी करीब आ रहे है, लेकिन कुछ क्षेत्र अब भी है जिन पर दोनों देशों के बीच सहमति नही हो सकी है जैसे परमाणु सौदे में दुर्घटना होने पर क्षतिपूर्ति का प्रावधान, नई रक्षा उत्पादन तकनीकें, उन्नत हेलिकॉप्टरों की खरीद, परमाणु सप्लायर्स क्लब में भारत के प्रवेश और सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता पर अमरीकी रवैया तथा बैद्धिक संपदा अधिकार है।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

भारतीय आदिवासी और हिन्दू धर्म का प्रसोर—साहित्य के नजरिये से

डॉ. पवन कुमार साहू
खसरा न. 569, बाल्मिकी बस्ती, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

भूमिका—दुनियाँ के सभी बड़े धर्मों के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने धर्म के प्रचार और प्रसार में रुचि दिखाई है। ईसाई अनुयायी हों या इस्लाम के मानने वाले, भारत में जन्में और फले—फूले जैन और बौद्धों ने भी अपने धर्म का प्रचार किया और प्रयास किया कि लोग इन धमों को अंगीकार करें। धर्मों के प्रचार और प्रसार में रुचि का आलम यह है कि मानव जगत का इतिहास खूनखराबे का इतिहास है। इतिहास में दर्ज सभी ऐसे आक्रमण जो विभिन्न जातियों और कबीलों के द्वारा दुनियाँ के दूसरे क्षेत्रों पर किये गये, उनका सबसे बड़ा कारण जीवन—यापन के लिए ज्यादा सुगम क्षेत्रों की प्राप्ति बेशक रही हो लेकिन जय या पराजय के बाद होने वाले उलटफेर में धर्मिक हस्तक्षेप सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण रहा है। भारत भूमि में जो आम धारणा धर्मान्तरण को लेकर प्रचलित है वह ईसाई धर्म और इस्लाम को लेकर है। माना जाता है कि इन धर्मों ने उन जातियों और सभ्यताओं से बलात् धर्म परिवर्तन कराये जिनको इन्होंनें किसी भी युद्ध में पराजित कर लिया। जैसा कि किसी भी युद्ध का अन्तिम परिणाम होता है। परन्तु ये धर्म—परिवर्तन केवल युद्ध का परिणाम रहे हों ऐसा भी नहीं है। शांतिकाल में भी धर्मों के प्रचार—प्रसार पर निरन्तर काम किया गया। इस लिहाज से ईसाई धर्म को सबसे प्रमुख कहा जा सकता है।

बहरहाल हमें देखना है कि हिन्दू धर्म ने अपने प्रचार—प्रसार में कोई भी दिलचस्पी क्यों नहीं ली ? संक्षिप्त रुप में यह भी देखने का प्रयास करेंगे कि हिन्दू धर्म का अपना इतिहास क्या रहा है और वो कौन सी बातें रही हैं जिसने हिन्दू धर्म को लोकप्रिय नहीं होने दिया ? यह देखना भी बहुत ही दिलचस्प होगा कि हिन्दू धर्म को प्रसारित करने के लिए कभी भी कोई आन्तरिक स्वीकृति नहीं रही। हिन्दू धर्म का अपना ढाँचा भी इस धर्म के प्रचार—प्रसार के लिए बहुत उपयोगी नहीं रहा, यह भी अध्ययन का विषय है।

इस शोध—पत्र का लक्ष्य यह है कि हम देखें कि इस भारत भूति का केन्द्रीय और स्थानीय धर्म होने के बावजूद हिन्दू धर्म इस लिहाज से असफल क्यों रहा हैं और यह भी कि भारत के आदिवासी अंग्रेजों के आने के बाद से ही ईसाई धर्म में दीक्षित होने लगे, लेकिन वही आदिवासी हिन्दू क्यों नहीं बनाये जा सके ? अब जब यह बात चलेगी तो इस सवाल से भी हमारा सामना होगा कि क्या तब आदिवासी समाज का कोई अपना धर्म नहीं है या फिर आदिवासी अपने आप में ही एक धर्म है ?

मैं इस बात पर आ" चर्य व्यक्त कर रहा हूँ कि आदिवासी समूदाय ने अपने लिए एक अलग धर्म ''कोया पुनेम'' को मान्यता देने की माँग की। यहाँ इस बात का जिक्र किया जाना चाहिए कि भारत का आदिवासी समाज प्रारम्भ से ही प्रकृति पूजक रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि पूरी मानव सभ्यता ही सभ्यता के सबसे प्रारम्भिक दौर से प्रकृति पूजक ही रही है। आदिवासी समाज वन, पर्वत, नदियों और, सूर्य का पूजक रहा है। इन सभी तत्वों से आदिवासी समाज का रिश्ता किसी अलौकिकता के प्रभाव के कारण नहीं रहा है बल्कि एक आत्मिक जुड़ाव का रिश्ता रहा है। प्राकृतिक संसाधनों या उपलब्धियों का अर्थ आदिवासी समाज के लिए जीवनयापन से जुड़ा हुआ है। अपने जीवन के लिए उतना ही प्राप्त करना जितने की उन्हें आवश्यकता है। कोई अतिरिक्त भूख नहीं कोई हवस नहीं। लेकिन इस रिश्ते को आदिवासी समाज कोई धर्म नहीं कहता। आदिवासी समाज के लिए धर्म जैसी कोई सोच कभी रही ही नहीं। जिसे आम भाषा में धर्म कहा जाता है वह दरअसल आदिवासियों की भाशा में त्योहार और पर्व मात्र कहा जाता है। तो फिर एकाएक ऐसा क्या हुआ कि आदिवासी समाज अपने लिए एक धार्मिक पहचान की माँग करने लगा, भारत सरकार से जनगणना में अपने लिए अलग से धार्मिक कोड की माँग करने लगा ?

इस सवाल का जवाब हमारी वर्तमान की व्यवस्था और वर्तमान के सामाजिक हलचल में है। आये दिन होने वाले धार्मिक हलचलों और आन्दोलनों ने एक भूमिका तो जरुर निभाई है। भारत में 1871 से लेकर 1941 तक हुई जनगणनाओं में आदिवासियों को अन्य धर्म में गिना गया है। इन्हें एनिमिस्ट, ट्राइबल रिलिजन आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। बल्कि 1951 के बाद की जनगणनाओं में आदिवासियों को अलग से गिनना बन्द भी कर दिया गया। यह बात हमें इसलिए भी ज्यादा हैरत में डालती है कि जबकि भारत का पूरा

राजनीतिक परिदृश्य ही जातिवादी गणनाओं के इर्द–गिर्द केन्द्रित है तब ऐसे में आदिवासी समाज की आबादी का एक पृथक आकलन न होने के पिछे व्यवस्था का क्या उद्देश्य हो सकता है ? एक स्थिति ये हो सकती थी कि सत्ता और समाज का रुख सामाजिक समरसता की ओर हो और ऐसे प्रयास किये जा रहे हों कि हर लिहाज से समानता को स्थापित करने की ओर ध्यान दिया जा रहा है। परन्तु इसकी सम्भावना दूर–दूर तक नजर नहीं आती। हाल की ढ़ेरों घटनाएँ यह बताती हैं कि सामाजिक समानता का कोई भी सपना इस भारत से और भी दूर हो गया है। तो फिर क्या कारण हो सकता है कि आदिवासी समाज को जनगणना में अलग से नहीं गिना गया ?

क्या इसके पिछे आदिवासी समाज की पहचान को धुमिल करने की कोई साजिश की जा रही है ? क्या आदिवासी समाज की अपनी परम्पराओं और उनके रिति रिवाजों पर कोई संकट आ रहा है? क्योंकि जिस तरीके से अन्धी आधुनिकता की दौड़ जारी है और इस दौड़ से जैसी बेचैनी पूरी दुनियाँ के भीतर फैली है, उसमें कुछ भी मुमकिन है।

कई बार संघ प्रमुख के द्वारा ही कहा गया है कि आदिवासी भी हिन्दू हैं परन्तु इससे आगे किसी भी तरह की व्याख्या नहीं की गई या बाहरी समाज से आदिवासी समाज के सम्बन्धों को धार्मिक नजरिये से नहीं देखा गया और न ही इसे परिभाषित किया गया। तो ऐसा मानना कि ऐसे किसी वक्तव्य में आदिवासी समाज के लिए कोई भुभ संकेत होगा, कपोल–कल्पना मात्र ही है। लेकिन अगर ऐसी कोई बात उठ ही गई है तब इसके भीतर की किसी मंशा को एक सावधान नजर से देखने की आवश्यकता है ही। आदिवासी समाज के द्वारा अपने धर्म को मान्यता देने के लिए जो आन्दोलन किया जा रहा है उसका कुछ मतलब इन बातों से निकलता है। आदिवासी समाज के रहनुमाओं की एक चिन्ता अवश्य होगी कि हिन्दू धर्म का अपना इतिहास घोर असमानता और भेदभाव का इतिहास रहा है। इस विषय पर आज भी हिन्दू समाज के भीतर कोई नर्मी नहीं आई है और न ही कोई परिवर्तन आया है। तब इस बात को लेकर चिन्तित होना जायज है।

हालाँकि यह भी स्वीकार करने में मुझे गुरेज नहीं है कि हिन्दू धर्म नें धामिक प्रसार या सुधार के नजरिये से कुछ संतोशजनक किया भी है तो अपने अतीत में किया है। उन प्रयासों को इस वर्तमान से अच्छे प्रयास के रुप में देखा जा सकता है। हालाँकि हिन्दू धर्म के जन्म का कोई बहुत पुराना इतिहास नहीं है परन्तु जिसे हिन्दू धर्म के रुप में स्थापित कर दिया गया उसकी एक पूरी परम्परा उपलब्ध है। आज जिसे हम हिन्दू–धर्म के नाम से जानते हैं उसका अतीत वेदों और पुराणों के रुप में हमारे सामने मौजूद है। और वेदों और पुराणों में इस धर्म को हम कुछ इस रुप में उल्लिखित पाते है–

पौराणिक–युग तक आते–आते भारत–भूमि ने आर्यों को आत्मसात कर लिया था। आर्य भी इस धरती को अपनी मात्रृभूमि के रूप में स्वीकार चुके थे। अब इस धरती से आर्यों का अस्तित्व कोई आभिन्न अर्थ नहीं रखता था। यह शस्य–श्यामला धरती आर्यावर्त हो रही थी। हिन्दूत्व के रंग से यह धरा सज रही थी। भिन्न–भिन्न सस्कृतियों का आपस में आदान–प्रदान होने लगा था। दरअसल किसी भी जाति के लिए यह सर्वथा सम्भव नहीं था कि इस धरती के मूल निवासियों से सर्वत्र बिलगाव बना कर रखा जाये। राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक सभी दृष्टिकोणों से इस अलगाव में परिवर्तन अभीश्ट था और यह परिवर्तन की प्रकिया जारी भी रही। आर्यों के अनार्यीकरण और अनार्यों के आर्यीकरण की दोहरी प्रक्रिया निरन्तर क्रियाशील रही। आर्य–जाति जहॉ इस सत्य को बखूबी समझती थी कि स्थानीय निवासियों या जातियों को भागीदार बनाए बिना किसी भी प्रगतिशील परिर्वतन को मूर्तरूप देना सम्भव नही होगा! वहीं भारतीय आदिम–जातियॉ भी इस तथ्य को स्वीकारने लगी थीं, कि आर्यों से सर्वथा या सर्वत्र दूरी बनाए रखना न तो सम्भव होगा और ना ही उपयोगी। दोनों ही जातियॉ परस्पर एक दूसरे की उपयोगिता को महत्व देने व समझने लगी थीं। अब आर्यावर्त का नए सिरे से निर्माण हो रहा था, जिसमें आर्य व अनार्य सभी जातियों की सहभागिता को समान महत्व प्राप्त था। सभी इस संस्कृति के सोपानों का महत्वशाली निर्माण कर रहे थे। अतिथि–देवो–भवः, प्राण जाए पर वचन न जाए, वसुधैव–कुटुम्बकम जैसे मानवेतर भावों की स्थापना हो रही थी।

पुराणों में आदिवासी समाज के बारे में बहुत ज्यादा उल्लेख हमें नहीं मिलता परन्तु जितना मिलता है उसके आधार पर जो अनुमान लगाया जा सकता है वह केवल यही हो सकता है कि आर्य जातियों के भीतर आदिवासियों के लिए कटुता की तीव्रता नहीं है। हालाँकि इसके भीतर एक इतिहासकार के हस्तक्षेप से इन्कार नहीं किया जा सकता। परन्तु फिर भी यह तो समझ में आता ही है कि आदिवासी और आर्यों के रिश्तों को दर्ज करने वाला व्यक्ति इस विषय की

संवेदनशीलता को कुछ अंश में समझता था।

इन सभी तरह के परिवर्तनों के फलस्वरूप हम आदिवासियों को कुछ अलग तरह की भूमिकाओं में पाते हैं। यहॉ आर्यों और जनजातियों के बीच के सम्बंधों को दर्शाने के लिए कुछ खास बिन्दुओं पर प्रकाश डालना अभीश्ट होगा।

''सर्वाधिक सुपरिचित और सम्भवतः एकमात्र जाति भाबर अथवा सौर, जिसके सबसे प्रारम्भिक सन्दर्भ ऐतरेय ब्राहमण में खोजे जा सकते हैं। इस जाति की एक स्त्री भाबरी, जो राम को फल भेंट करती है। वेरियर एल्विन के शब्दों में शबरी ऐसे योगदानों का प्रतीक बन चुकी है कि जनजातियॉ भारत के जीवन का निर्माण कर सकती हैं और करेंगी।''(10)

इस तथ्य की प्रामाणिकता के लिए हमें ज्यादा गहरे मनन की आव" यकता भी नहीं पड़ेगी। सवाल जब उत्तरदायित्वों के निर्वहन का आयेगा तब उस समय के आर्य जन स्वयं को बौना पाएंगे बनिस्बत इन जंगली जातियों के। महाभारत व रामायण ऐसे आख्यानों से भरा पड़ा हैं जिनमें जनजातियों के मानवीय गुण अपने चरम पर हैं। वहीं आर्यों के द्वारा इन जातियों के साथ किये गए व्यवहार से सम्भवतः हम सभी जगहों पर सन्तुष्ट नहीं होगें। अनेक ऐसे अवसर आयेंगे जब तथाकथित आर्यों के सिरमौर कुल पुरूषों द्वारा किये गये कृत्यों को हम अपराध की श्रेणी में रखने को विवश होंगे।

आदिवासी आर्य जातियों के बारे में अगर अतीत का मुल्यांकन यह कहता है तब यह और भी चिन्ता का विषय हो जाता है कि फिर क्यों बाद के दिनों में हालात और भी बेहतर नहीं हुए। हम देख सकते हैं कि आदिवासी समाजों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा है या फिर उनके राजनीतिक हालात कहीं से भी संतोषजनक प्रगति नहीं कर रहे। धार्मिकता के नाम पर इस वर्तमान से पहले आदिवासी समाज के भीतर किसी हलचल को नहीं देखा गया।

अगर हिन्दू–धर्म अपने भीतर समानता और समरसता के तत्व रखता तो ये कैसे नहीं हो सकता था कि आदिवासी समाज की सबसे पहली पसंद हिन्दू धर्म के भीतर धर्मातरण होती। अगर प्रगति के तत्व हिन्दू धर्म के भीतर होते तो फिर इसे अनदेखा करना कैसे मुमकिन था ? अंग्रेजों ने अपने भाासन से पूर्व ही हिन्दुस्तान की धरती पर धार्मिक परिवर्तन के लिए या धर्म प्रसार के लिए कदम रख दिये थे। ईसाई पादरी आदिवासियों के जीवन में हस्तक्षेप कर रहे थे परन्तु ऐसा करते हुए ये पादरी इस बात का पुरा ख्याल रख रहे थे कि आदिवासी समाज का चरित्र मूल रुप से बिल्कुल भी प्रभावित न हो। ये देखा जा सकता है कि ये पादरी आदिवासियों के भीतर अपने धर्म प्रसार के कार्य को कुछ इस रुप में अन्जाम दे रहे थे कि उसे धर्म प्रसार कहना भी आसान नहीं था। क्योंकि ये पादरी आदिवासी समाजों के भीतर फैले कुरीतियों को दूर करने का काम कर रहे थे, इनको नशे की आदत सें दूर ले जाने का प्रयास कर रहे थे और आस्था और अन्धविस्वास के बीच के फर्क को समझााने का प्रयास कर रहे थे। ये पादरी आदिवासी समाज के बीच शिक्षा का प्रयार कर रहे थे। और यह आदिवासी समाज के लिए सबसे अनुठा अनुभव था। इससे पूर्व शिक्षा उनके लिए कोई बात ही नहीं थी। अपनी लिपि के न होने के कारण आदिवासी समाज के पास असका सबकुछ केवल मौखिक ही था। उसकी कहानियाँ, उसके किस्से, रिति–रिवाज, परम्पराएँ, सबकुछ मौखिक रुप में ही आदिवायिों के पास सुरक्षित थीं। हालाँकि यह सबकुछ करने के पिदे उद्देश्य मात्र ईसाई धर्म का प्रसार ही था परन्तु यह एक सुखद अनुभव था और आदिवासियों के अपने जीवन के प्रभाव में कहीं भी कोई बाधा उपस्थित नहीं करता था।

वहीं हिन्दू धर्म अपनी जातीय कुंठा को अब भी जी रहा था। जातीय श्रेश्ठता का भाव इस कदर लोगों को आक्रान्त किये हुए था कि हिन्दू समाज अपने व्यक्तिगत हितों से आगे जाकर सोच भी नहीं सकता था। हिन्दू समाज बुरी रह टुकड़ों में बँटा हुआ था। हालाँकि हिन्दू समाज के सामने असफलता का एक पूरा इतिहास मौजूद था फिर वह सामाजिक समन्वय और धार्मिक रुप से संगठित होने के प्रभाव को नहीं समझता था या नहीं महत्व देता था।

तो क्या इन सभी बातों से ये नहीं प्रमाणित होता कि हिन्दू धर्म या हिन्दू सामाजिक को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि उसके ऊपर शासन कौन कर रहा है बल्कि उसे केवल इस बात से मतलब था कि उसका जीवन चल रहा है ? और अगर हम इस बात को एक तथ्य मान लें तो मुझे लगता है कि हमें कुछ और बहुत ही अप्रिय स्थापनाओं से गुजरना होगा।

बहरहाल देश की आबादी में लगभग बारह करोड़ का हिस्सा रखने वाले आदिवासियों के सामने उनका धर्म एक मुद्दा है कि आखिरकार उनका अपना

धर्म कौन सा है। वैसे तो यह बहस बहुत पुरानी है कि आदिवासियों का धर्म कौर सा है और कौन सा नहीं है परन्तु पहली बार आदिवासी समाज के पुरोधाओं ने जंतर–मंतर पर एकत्र होकर धर्म के बारे में अपनी ओर से कोई राय रखी है और इस सम्बन्ध में अपने पक्ष को स्पस्ट किया है।

धुर्वा कहते हैं कि ''ब्रिटिश शासनकाल के तमाम जनगणना, 1871 से लेकर 1931 तक के आंकड़ों को देखा जाये तो उसमें भी आदिवासियों के लिए मूलनिवासी का विकल्प चुनने की व्यवस्था थी, स्वतंत्रता के बाद सरकारों ने उसे साजिश के तौर पर ही हटा इिया ताकि आदिवासियों को हिन्दू या किसी अन्य धर्म में जोड़कर दिखाया जा सके। कोई विकल्प न होने के कारण लोगों को मजबूरन दूसरे धर्मों को चुनना पड़ रहा है''

इन सभी विश्लेषणों को देखते हुए कई तरह के अनुमान लगाये जा सकते हैं परन्तु एक बात तो तय है कि भारत की सरकारें आदिवासी समाज की पहचान को ही समाप्त करने पर आमादा हैं। आदिवासी समाज की अपनी परम्पराएँ, उनके रितिरिवाज ही उनके लिए धर्म हैं जिसे वो ठीक–ठीक इसी नाम से नहीं जानते या अभिहित नहीं करते परन्तु अपने समाज के भीतर इस बात को लेकर आदिवासी समाज कोई असंतोष नहीं पालता। तब कोई आवश्यकता भी नहीं कि उनकी धार्मिक मान्यताओं को किसी ऐसे कॉलम में रखा जाये जिसके बारे में वो कुछ भी नहीं जानते या जानना नहीं चाहते।

हमारा ध्येय आदिवासी समाज के जीवन स्तर में सुधार होना चाहिए और इस सुधार का चेहरा पूरी तरह आर्थिक होता है। अगर हम उनकी मान्यताओं को उसी समाज के विवेक पर रहने दें तो यह सबसे अच्छी बात होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थों सूची :–

1. प्रोग्या घटक, 1 मार्च 2015, फारवर्ड प्रेस के 2015 अंक में प्रकाशित
2. राइज एण्ड फुलफिलमेंट ऑफ ब्रिटिश रुल इन इंडिया–थामसन तथा गौरेट्स
3. खर्टे, अजय 2018,''आदिवासी कौन हैं!!'' डा. अजय खर्टे।
4. जनजातीय कार्य मंत्रालय 2018, ''होम। जनजातीय कार्यालय भारत सरकार,''https://tribal.nic.in/hindi/indexh.aspx.
5. मुक्त ज्ञानकाश विकिपीडिया से ''भारतीय आदिवासी, आदिवासियों के धार्मिक विस्वास।
6. संताषी मरकाम, 28/03/2019, द वायर में प्रकाशित लेख, ''क्यों अलग धर्म की माँग कर रहे हैं आदिवासी''।
7- मधुवागानियार के ब्लाग से वर्ल्ड प्रेस डॉट कॉम। A blog dedicated to the Jharkhandi Society of India.
8. नेह अर्जुन इन्दवार के ब्लॉग, णर्म के रास्ते मानसिक साम्राज्यवाद से।
9. जनजातीय भारत, नदीम हसनैन, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, छठा संस्करण 2004
10. राइज एण्ड फुलफिलमेंट ऑफ ब्रिटिश रुल इन इंडिया–थामसन तथा गौरेट्स

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

उग्रवाद और क्रांतिकारी आन्दोलन

चित्रा कुमारी
रिसर्च स्कॉलर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

भूमिका :– भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दूसरे चरण की शुरूआत उग्रवादी राजनीति के साथ होती है। प्रथम चरण में कांग्रेस पर उदारवादियों का प्रभुत्व था, जिन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा वैधानिक आन्दोलन में दृढ़ विश्वास था। वे शान्तिपूर्ण वातावरण के अन्तर्गत वैधानिक तथा कानूनी साधनों द्वारा राजनीतिक एवं प्रशासकीय सुधारों की प्राप्ति करना चाहते थे। सुधारवादी विचारधारा का प्रभाव कांग्रेस पर मुख्यतः 1905 तक तथा कुछ–कुछ उसके बाद भी बना रहा। लेकिन 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिनसे नरम दल की सुधारक और शान्तिवादी कार्यों के प्रति भारतीय नवयुवकों में एक प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गयी। उनके दृष्टिकोण तथा मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन होने लगा। अंग्रेजों की न्यायप्रियता से उनका विश्वास उठ गया और वे वैधानिक साधनों तथा कांग्रेस की भिक्षा–वृत्ति की नीति से ऊब गये अतः उन्होंने उग्र साधनों को अपनाये जाने का समर्थन किया। उन्होंने क्रमिक सुधारों के स्थान पर 'पूर्ण स्वराज्य' की मांग की तथा स्वराज्य को अपना 'जन्म सिद्ध अधिकार' घोषित किया तिलक, विपिन चन्द्र पाल तथा लाला लाजपत राय के नेतृत्व में उग्रवादियों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों को नया मोड़ दिया। ''भारतीय राजनीति को एक नया रूप दिया गया, कांग्रेस की भिक्षा–वृत्ति की नीति पर अधिक जोर–शोर से आक्रमण किया जाने लगा।'' यह केवल मध्यम तथा शिक्षित वर्ग तक ही सीमित न रहा, बल्कि इसने् जन–आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। भारतीय राजनीति पर उग्रवादियों का आधिपत्य 1919 अर्थात् महात्मा गांधी के पदार्पण तक बना रहा। अतः 1906–1919 की अवधि को उग्रवादी आन्दोलन का युग कहा जाता है।

उदारवादी युग की भाँति उग्रवादी युग में भी दो विचारधाराएं पायी जाती है– उग्रवादी और क्रांतिकारी। उग्रदल का राजनीतिक आन्दोलन में और ब्रिटिश वस्तुओं तथा संस्थाओं के बहिष्कार द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में विश्वास था। क्रांतिकारी दल को पश्चिमी क्रांतिकारी साधनों में विशेषकर बम और पिस्तौल द्वारा आतंकवाद, राजनीतिक हत्याओं ओर राजनीतिक डकैतियों में विश्वास था। दोनों विचारधाराओं में मौलिक समानता थी। उनका उद्देश्य एक था– अंग्रेजी राज से छुटकारा पाना और पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति, अन्तर था तो केवल दोनों के साधनों में, दोनों के मार्ग भिन्न थे। उग्रवादी शांतिपूर्ण पर सक्रिय साधनों में विश्वास करते थे, जबकि क्रांतिकारी शक्ति और हिंसा का मार्ग अपनाने के पक्ष में थे। दोनों विचारधाराओं की तुलनात्मक विवेचना करते हुए गुरूमुख निहाल सिंह ने कहा है कि :–

''इन दोनों में धार्मिक भावना समाई हुई थीं, किन्तु दोनों का मार्ग अलग था। दोनों ही विचारधाराओं के नेतागण साहसी व्यक्ति थे। उनमें आत्म–बलिदान और स्वतन्त्रता की भावना थी, प्रबल देश–प्रेम था और विदेशी राज्य के प्रति घृणा थी। पुराने कांग्रेसियों की भाँति उन्हें अंग्रेजों की उदारता और सच्चाई में विश्वास नहीं था और न उनकी राजनीतिक भिक्षा–वृत्ति में ही कोई निष्ठा थी। उन्हें तो आत्मनिर्भर एवं स्वतन्त्र कार्यो में विश्वास था। इन नेतागणों की प्रेरक भावनाएँ एक ही थीं, वे भारत और उसकी जनता के पश्चिमीकरण के विरूद्ध थे, वे प्रबल ही नही वरन् उग्र राष्ट्रवादी थे, उनका उद्देश्य था– स्वतन्त्र भारत जो फिर प्राचीन वैभव, समृद्धि एवं पवित्रता से परिपूर्ण हो। दोनों में भेद केवल मार्ग का था।''

उग्रवादियों का प्रभाव कांग्रेस की नीतियों एवं कार्यक्रम पर व्यापक रूप से पड़ा, जबकि क्रान्तिकारियों का कार्य–क्षेत्र मुख्यतः बंगाल तथा कुछ अन्य प्रान्तों तक सीमित रहा।

उग्रवाद के उदय के कारण :– भारतीय राजनीति में उग्रवाद के प्रादुर्भाव के निम्न कारण उल्लेखनीय है –

सरकार द्वारा कांग्रेस की मांगों की उपेक्षा :– अपने प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सरकार का प्रशासनिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक सुधारों की ओर ध्यान आकर्षित करना था। उदारवादी कांग्रेसी नेताओं को अंगेजों की न्यायप्रियता तथा सच्चाई में विश्वास था। अतः उन्हें पूरी आशा थी कि ब्रिटिश सरकार उनके सुधार–प्रस्तावों को अवश्य ही अपनाएगी। कांग्रेस की मांगों के फलस्वरूप ही अंग्रेजों ने कतिपय सुधार–सम्बन्धी कानूनों का निर्माण भी किया। 1892 ई. में भारतीय परिषद् अधिनियम पास कर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय परिषदों के संगठनों तथा शक्तियों में परिवर्तन लाये गये, लेकिन

इस सुधार अधिनियम से भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। गोपाल कृष्ण गोखले ने 1893 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में कहा कि ''विधान परिषदों के विषय में जो कानून बनाये गये है, वे सुधार–योजना का उद्देश्य ही नष्ट कर देते हैं।'' सन् 1892 ई. के सुधार अपूर्ण और अपर्याप्त थे तथा उनकी उपयोगिता संदिग्ध थी। अतः कांग्रेस ने प्रतिवर्ष सुधार–सम्बन्धी मांगों का प्रस्ताव पास करना जारी रखा और वह सरकार से यह प्रार्थना करती रही कि परिषदों की सदस्यता तथा अधिकारों को वृहत् बनाया जाए। लेकिन सरकार ने कांग्रेस के अनुरोध की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप नवयुवकों का वैधानिक साधनों तथा कांग्रेस की भिक्षा–वृत्ति की नीति से विश्वास उठने लगा। उन्हें विश्वास हो गया कि संवैधानिक तरीके से उनकी मांगों की पूर्ति होना असम्भव है। अतः उन्होंने उग्रवादी और क्रांतिकारी मार्गों को अपनाना श्रेयष्कर समझा। बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि ''कांग्रेस की नरमी और राजभक्ति स्वतन्त्रता प्राप्त करने योग्य नहीं है। केवल प्रस्ताव पास करने और अंग्रेजों के सामने हाथ पसारने से राजनीतिक अधिकार नहीं होंगे, बल्कि उनके लिए युद्ध करना होगा।'' लाला लाजपत राय ने भी कहा था कि ''भारतीयों को अब भिखारी बने रहने में संतोष नहीं करना चाहिए और न उन्हें अंग्रेजों की कृपा पाने के लिए गिड़गिड़ाना चाहिए।''

उग्रवादी आन्दोलन का प्रारम्भ :– कांग्रेस ने 1885 ई. से लेकर 1906 ई. तक अनेक मांगें की थीं। उन मांगों को ब्रिटिश सरकार ने पूरा नहीं किया था। इसलिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपत राय का कांग्रेस की नीतियों से मतभेद उत्पन्न हो गया। 1906 तक कांग्रेस में दादा भाई नौरोजी, सर फीरोज शाह मेहता, गोखले, मदनमोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और रमेशचन्द्र दत्त इत्यादि नेताओं का अधिक प्रभाव था। इनका अभी तक अंग्रेजों की सद्भावना और न्याय में विश्वास हिला नहीं था परन्तु तिलक और लाजपतराय अंग्रेजों के पास बार–बार प्रार्थना–पत्र भेजना व्यर्थ समझते थे।

उदारवादियों तथा उग्रवादियों के सिद्धान्तों में अन्तर :– उग्रवादी पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में थे। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने कहा था, ''स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।'' उदारवादी कौंसिल में जाने के लिए अधिक स्थान और अधिकारों की मांग करते थे, परन्तु उग्रवादी कौंसिलों में चुने हुए सदस्यों तथा अधिक अधिकारों की मांग को अधिक महत्व नहीं देते थे। उदारवादी ब्रिटिश राज्य को एक बड़ा भारी उपकारी या ईश्वरीय कृपा समझते थे। परन्तु उग्रवादी ब्रिटिश राज को बड़ा उपकारी और सभ्यता सिखाने वाला नहीं मानते थे। उनका भारत की सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता में पूरा विश्वास था। उग्रवादी स्वदेशी कपड़े के पक्ष में और विलायती कपड़े के बहिष्कार के लिए प्रचार करते थे। इससे उदारवादी सहमत नहीं थे, वे अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण की कड़ी निन्दा करते थे। तिलक का विचार था कि विदेशी सरकार को भारत पर सामाजिक सुधार लादने का कोई अधिकार नहीं है। वे अंग्रेजों से अधिकार मांगने की बजाए उन्हें निकालना चाहते थे परन्तु इसके लिए वे क्रांतिकारी या हिंसात्मक उपायों के बजाए अहिंसात्मक आन्दोलन के पक्ष में थे। वे कहते थे, कि भारत की सब बुराइयों का कारण विदेशी राज है, इसके जाने के बाद ही बुराइयों को ठीक किया जा सकेगा। अरविन्द घोष भी उग्रवादी नेता थे, उन्होने कहा था।

''हमारा वास्तविक शत्रु कोई बाहरी शत्रु नहीं बल्कि हमारी अपनी शिथिलता और कायरता है। एक अधीन राष्ट्र स्वतन्त्रता द्वारा ही उन्नति के द्वार खोलता है और स्वतन्त्रता के लिए बलिदान की आवश्यकता है। राजनीति की आराम–कुर्सी पर बैठकर विदेशी सत्ता नहीं हिलाई जा सकती। अपने पराक्रम और शक्ति से ही विदेशी शासन् का विरोध कर सकते हैं।''

लाला लाजपतराय और विपिनचन्द्र पाल भी उग्रवादी दल के स्तम्भ थे। विपिनचन्द्र पाल ने 'वन्दे मातरम्' समाचार पत्र की स्थापना की। लाला लाजपतराय ने 1905 में इंग्लैण्ड से लौटकर कहा था–

''भारत के देशभक्त आत्म–निर्भरता और बलिदान से ही देश का हित कर सकते हैं। अंग्रेजी जनता भारत के राजनीतिक प्रान्तों में कुछ रूचि नहीं रखती है और न भारतीयों की चिन्ता करती है।''

इसके विपरीत गोखले सच्चे उदारवादी थे, वे रानाडे के शिष्य थे। उन्होंने अपने गुरू महादेव गोविन्द रानाडे से न केवल व्यवहार में बल्कि सिद्धान्तों में भी सहनशीलता का मार्ग अपनाना सीखा था। उनका विचार था कि भारत का पुनर्निर्माण राजनीतिक उत्तेजना की आंधी में नहीं हो सकता है। वे आवश्यक समझते थे कि अंग्रेजों को भारतीयों की योग्यता के बारे में विश्वास कराया जाए और धीरे–धीरे उनसे अधिकार प्राप्त करके उन्हें दिखाया जाए कि भारतीय स्व–शासन् के योग्य हैं। डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने तिलक और गोखले में अन्तर बतलाते हुए लिखा है –

''गोखले नरम थे, तो तिलक गरम थे। गोखले वर्तमान विधान में परिवर्तन चाहते थे, तो तिलक उसे नए सिरे से बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पड़ता था, तो तिलक की नौकरशाही से भिड़न्त रहती थी। गोखले कहते थे–जहां सम्भव हो ब्रिटिश सरकार को सहयोग करो, जहां आवश्यक है, वहाँ विरोध करो। तिलक कहते थे कि इस विदेशी सरकार का विरोध हर तरह से करो, गोखले शासन और उसके सुधार की ओर अधिक ध्यान देते थे, तिलक राष्ट्र और उसके निर्णय को सबसे मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तिलक का सेवा और कष्ट। गोखले का उद्देश्य था, स्व–शासन् जिसके लिए जनसाधारण को अंग्रेजों की कसौटी पर खरा उतर कर अपने को योग्य सिद्ध करना था। तिलक का उद्देश्य था स्वराज्य जो प्रत्येक भारतवासी का जन्मसिद्ध अधिकार था और जिसे वे विदेशियों की परवाह किए बगैर लेकर ही रहना चाहते थे। गोखले अपने समय के थे, तिलक अपने समय से बहुत आगे। तिलक सर्वसाधारण जनता की ओर देखते थे तो गोखले उच्च वर्ग की तरफ देखते थे। गोखले अंग्रेजी के द्वारा प्रचार करते थे, तो तिलक मराठी के द्वारा। गोखले की कार्य–प्रणाली का उद्देश्य विदेशियों के हृदय को जीतना था, तिलक उन्हें देश से हटाना चाहते थे। गोखले दूसरों की सहायता पर विश्वास करते थे, तो तिलक अपने आप पर और जनता पर भरोसा रखते थे। गोखले का अखाड़ा था, कौंसिल भवन, तिलक की अदालत थी, गांव की चौपाल।''

ऊपर लिखे विचारों से यह परिणाम निकालने की आवश्यकता नहीं कि उदारवादियों का आन्दोलन व्यर्थ था या वे विदेशी सरकार के भक्त थे। उदारवादी तथा उग्रवादी दोनों ही देशभक्त थे और दोनों के ही तरीकों और कार्यों से किसी–न–किसी तरह लाभ ही पहुंचा। शुरू–शुरू में देश में ऐसी ही परिस्थिति थी कि यदि ब्रिटिश सरकार से बिल्कुल सहयोग न किया जाता, तो कांग्रेस पनप ही नहीं सकती थी। इसलिए एकदम स्वराज्य मांगना उचित नहीं था, शुरू–शुरू में ब्रिटिश सरकार को कौंसिलों के सुधार के लिए विवश करना और बजट पर बहस करने का अधिकार प्राप्त करना भी बहुत ही महत्वपूर्ण कारनामा समझा जाता था और यह सत्य भी है जैसा कि बाद के भारत के संवैधानिक विकास ने सिद्ध किया। दूसरी और ब्रिटिश सरकार के पास केवल अपनी मांगों के प्रार्थना–पत्र भेजना काफी नहीं था, बल्कि अहिंसात्मक आन्दोलन करना तथा देशवासियों को राष्ट्रीय शिक्षा देना और संगठित करना आवश्यक था। यह कार्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं था और उस समय की परिस्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि अत्यन्त कठिन था। इसके लिए ही तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाजपतराय और अरविन्द घोष को ब्रिटिश सरकार के हाथों बहुत कष्ट सहन करने पड़े। उग्रवादियो, क्रांतिकारियों और आतंकवादियों के आन्दोलनों से ही विवश होकर ब्रिटिश सरकार को उदारवादियों को प्रसन्न करने की नीति अपनानी पड़ी तथा 1909 ई. में कुछ सुधार करने पड़े।

उग्रवादी आन्दोलन के प्रारम्भ होने के कारण :– अब हम यह बतलाते हैं कि उग्रवादी आन्दोलन क्यों उत्पन्न हुआ ? निम्नलिखित तत्वों ने इसकी उत्पत्ति में सहायता दी –

अनुदार दल का खराब शासन :– भारत में उग्रवाद के उत्थान के सीधे कारण की तलाश अनुदार दल के बुरे शासन् में की जा सकती है। 1882 ई. से 1902 ई. तक कुछ समय को छोड़कर जबकि उदार दल इंग्लैंड में सत्तारूढ़ रहा है, इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री सेलिसवरी रहे। श्री आर. सी. दत्त ने लिखा है कि सेलिसबरी स्वयं साम्राज्यवादी नहीं था परंतु यह समय के बहाव के साथ बह जाता था जब उसमें विरोध करने की शक्ति नहीं रहती थी। लॉर्ड हैमिल्टन, जो कि लन्दन में भारत के कार्यालय का प्रधान रहा, भारत की ओर कोई सहानुभूति नहीं रखता था। उसने् कर्जन को 20 सितम्बर, 1899 ई. को लिखा,

''मेरा विचार है कि शासन को वास्तविक खतरा, अब नहीं बल्कि 50 वर्ष के पश्चात् जो होगा, वह संगठन और आन्दोलन के पश्चिमी विचारों के प्रसार को और अपनाना होगा। यदि हम शिक्षित हिन्दू दल को दो भागों में बाँट सकते हैं जिनके परस्पर विरोधी विचार हों, तो हमें इस प्रकार की फूट से अपनी सरकार की वर्तमान पद्धति पर शिक्षा के प्रसार के कारण होने वाले लगातार और तीक्ष्ण आक्षेपों के विरूद्ध अपनी स्थिति दृढ़ करनी चाहिए।''

उस समय में जबकि हैमिल्टन अपने पद पर था, युद्ध की अद्वितीय आपत्तियां, अकाल, महामारी (प्लेग) भारत में फैले परन्तु वह भारत के कष्टों की ओर से उदासीन रहा। इससे ब्रिटेन में भारत के शासन् के विरूद्ध बड़ा भारी रोष उत्पन्न हुआ।

1892 के सुधारों पर असंतोष तथा सरकार द्वारा कांग्रेस की मांगों की उपेक्षा :– 1892 के कौंसिल ऐक्ट के द्वारा जो सुधार किए गए थे, वे बहुत अपर्याप्त तथा निराशाजनक थे। उनके द्वारा भारतीयों को कुछ वास्तविक अधिकार नहीं दिए गए थे। केन्द्रीय विधान

परिषद् तथा प्रान्तीय परिषदों में सरकारी बहुमत कायम रखा गया और सरकार सब कार्य अपनी इच्छा के अनुसार कर सकती थी। चुने हुए सदस्य सीधे जनता के द्वारा नहीं चुने जाते थे बल्कि यूनिवर्सिटियों, नगरपालिकाओं, चैम्बर ऑफ कामर्स इत्यादि के द्वारा चुने जाते थे, इसलिए वे जनता के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं थे। इसके अतिरिक्त यदि वे चाहते, तो भी सरकार के विरूद्ध कुछ नहीं कर सकते थे क्योंकि कौंसिलों (परिषदों) में सरकारी अधिकारियों की तुलना में उनकी संख्या थोडी थी। बजट और प्रश्न पूछने के जो अधिकार दिए गए थे, वे भी अत्यन्त सीमित थे। इसलिए कांग्रेस का इन सुधारों से असन्तुष्ट होना स्वाभाविक था। 1906 तक कांग्रेस विधान परिषदों के विस्तार, चुने हुए सदस्यों की संख्या में वृद्धि और उनके अधिका अधिकार, न्याय–सुधार, इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षाओं को भारत में करवाने इत्यादि की मांगें करती रही परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इन मांगों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिए कांग्रेस में कुछ नेता जैसे लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय ऐसे पैदा हो गए जो इन मांगों के लिए प्रार्थना–पत्रों को ब्रिटिश सरकार के सामने भेजना व्यर्थ समझने लगे।

''लाला लाजपतराय ने इस नई भावना को निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया– ''भारतीयों को अब भिखारी बने रहने में सन्तोष नहीं होना चाहिए, और न उन्हें अंग्रेजों की कृपा पाने के लिए गिड़गिड़ाना ही चाहिए।

लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोष भी अपनी मांगों को मनवाने के लिए ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन करने, विदेशी कपड़े के बहिष्कार करने और शिक्षा द्वारा नवयुवकों को संगठिठत करने के पक्ष में थे।

हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान :– कांग्रेस के नरम दल के नेता (गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनन्दमोहन घोष, मदन मोहन मालवीय, रास बिहारी घोष इत्यादि) ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहकर भारत के लिए स्वशासन् चाहते थे। वे ब्रिटिश राज्य को भारत से समूल नष्ट नहीं करना चाहते थे क्योंकि वे महसूस करते थे कि ब्रिटिश राज्य के कारण भारत की अनेक क्षेत्रों में उन्नति हुई है। कुछ लोग ब्रिटिश संस्कृति तथा सभ्यता की श्रेष्ठता में इतना विश्वास रखते थे कि ''वे भारत के साथ इंग्लैण्ड का सम्बन्ध ऊंचे और शानदार उद्‌देश्यों की प्राप्ति के लिए ईश्वरीय देन समझते थे।'' तिलक, लाजपतराय, अरविन्द घोष और विपिनचन्द्र पाल इन विचारों की हँसी उड़ाते थे, उन्होंने तथा स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती और मिसिज ऐनी बेसेन्ट ने दिखाया कि किस प्रकार भारत की संस्कृति तथा सभ्यता पश्चिमी संस्कृति तथा सभ्यता से श्रेष्ठ है, किस प्रकार भारत का भूतकाल उज्ज्वल था और किस तरह यह दुबारा बनाया जा सकता है। अरविन्द घोष का कहना था, ''स्वतन्त्रता हमारे जीवन का उद्‌देश्य है और हिन्दू धर्म ही हमारे इस उद्‌देश्य की पूर्ति करेगा। राष्ट्रीयता एक धर्म है और ईश्वर की देन है।'' बंगाल में नवयुवक काली और दुर्गा को प्रेरक शक्तियाँ मानते थे। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'आनन्दमठ' द्वारा लोगों को 'वन्देमातरम्' का राष्ट्रीय गान दिया।

तिलक ने 1907 ई. में अपने कलकत्ता भाषण में कहा था, ''विदेशी शासन् भारत के लिए एक अभिशाप है और नौकरशाही (सरकारी अधिकारियों की मनमानी हुकूमत) को दबाने के लिए प्रभावशाली आन्दोलन करना होगा।'' विपिनचन्द्र पाल अधिराज्य स्थिति में विश्वास नहीं रखते थे अर्थात् वे भारत को ब्रिटिश सत्ता के नाम–मात्र रूप के अधीन रखते हुए इसके लिए स्वशासन् नहीं चाहते थे बल्कि पूर्ण स्वराज्य चाहते थे। तिलक और विपिनचन्द्र पाल स्वराज्य–प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना करने को तैयार नहीं थे। वे इसको ब्रिटिश सरकार से भिक्षा और भेंट के रूप में नहीं चाहते थे बल्कि जनता के त्याग और बलिदान के द्वारा अंग्रेजों से जीतना चाहते थे। उनके भाषणों से जनता में बहुत जागृति फैली और सोये हुए भारत की आंख खुली।

भारत का आर्थिक शोषण :– अंग्रेजों ने अपने काल में भारत का खूब आर्थिक शोषण किया था। अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में लाखों घरेलू उद्योग–धन्धे प्रचलित थे। अंग्रेजों ने इंग्लैंड को लाभ पहुंचाने के लिए उन सब को धीरे–धीरे अनेक उपायों से समाप्त कर दिया और भारत को केवल कच्चे माल की मण्डी बना दिया। भारत से कच्चा माल ले जाकर वे अपने कारखानों में उससे अनेक वस्तुएं बनाते थे और उनको लाकर भारत में ही बेच देते थे, इस तरह से अंग्रेज करोड़ो रूपया प्रतिवर्ष भारत की निर्धन जनता से कमाते थे। इसका यह स्वाभाविक परिणाम निकला कि भारत निर्धन होता गया और उसमें दिन–दूनी रात–चौगुनी बेकारी फैलती गई। दादा भाई नौरोजी, रमेशचन्द्र दत्त तथा अन्य कई नेताओं ने अपनी पुस्तकों और भाषणों में ब्रिटिश सरकार के इस रवैये की तीव्र आलोचना की।

आर्थिक दुर्दशा :– 19वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में

देश में आर्थिक संकट पैदा हो गया। सन् 1876 ई. से 1900 ई. तक देश के विभिन्न भागों में 18 बार दुर्भिक्ष या अकाल का प्रकोप हुआ। सन् 1896–1897 ई. तक में बम्बई में सबसे भयंकर अकाल पड़ा। यह अकाल 70 हजार वर्गमील में फैला हुआ था तथा लगभग दो करोड़ लोग इसके शिकार हुए। सरकार ने दुर्भिक्ष से पीड़ित व्यक्तियों की सहायता करने का अवश्य प्रयत्न किया, किन्तु उसकी नीति बहुत शिथिल थी तथा सहायता–कार्य के लिए उत्तरदायी प्रशासन्–तंत्र अपर्याप्त तथा उत्साहहीन था। अगर सरकार ने पूरी ताकत और उत्साह से सहायता–कार्य का बीड़ा उठाया होता तो अकाल इतना भीषण रूप धारण नहीं करता। अकाल ने भारतीयों की आंखें खोल दी कि विपत्तिकाल में वे विदेशी सरकार की सहायता पर भरोसा नहीं कर सकते हैं। उन्होंने यह महसूस किया कि अगर राष्ट्रीय सरकार होती तो देशवासियों को इतनी संख्या में अकाल और भुखमरी के मुंह में नही जाना पड़ता। अतः उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि ब्रिटिश शासन् का अन्त वे अवश्य करेंगे भले ही हिंसात्मक मार्गों को ही क्यों न अपनाना पड़े।

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति से भी भारतीय जनता में बड़ा असंतोष फैला हुआ था। सरकार की आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का हित करना था न कि भारतीयों का। कपास पर आयात–कर बढ़ाया गया तथा भारतीय मिलों में तैयार किये हुए माल पर उत्पादन–कर लगाया गया जिसके परिणामस्वरूप विदेशी माल सस्ता रहा और भारतीय कपड़ा उद्योग को बड़ी हानि पहुंची। सरकार की आर्थिक नीति के विरूद्ध भारतीयों में घोर असंतोष फैल गया। वे सरकारी नीति का विरोध करने लगे, और विदेशी माल का बहिष्कार होना शुरू हो गया।

प्लेग का प्रकोप :– अभी अकाल का घाव भरा भी नहीं था कि बम्बई प्रेसिडेंसी में 1897–1898 ई. में प्लेग का प्रकोप हो गया। पूना के आस–पास भयंकर प्लेग फैला जिसमें सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार 1 लाख 73 हजार व्यक्तियों की मृत्यु हुई। महामारी को रोकने के लिए तथा रोगियों के सहायतार्थ सरकार द्वारा उठाये गये कदम से जनता में गहरा क्षोभ तथा असंतोष फैला। सरकार ने सबसे बड़ी गलती यह की कि उसन् उन सरकारी अधिकारियों को सहायताकार्य की पूरी जिम्मेवारी सौंप दी जो अंग्रेज थे तथा जिनमें उत्साह की कमी थी। इसके अतिरिक्त सरकार ने निःसंदेह अनेक ठोस कदम उठाये, लेकिन उन्हें चालाकी तथा चुस्ती से लागू नहीं किया गया। प्लेग कमिश्नर रैंड ने सैनिकों को सेवा–कार्य सौंपा और उन्हें घरों में घुसने निरीक्षण करने और रोग–ग्रस्त व्यक्तियों को अस्पताल पहुंचाने का अधिकार दिया गया। इससे कट्टर हिन्दुओं की धार्मिक भावना को गहरी चोट लगी। कई स्थानों पर दंगे शुरू हो गये। प्रेस ने सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की। एक नवयुवक ने रैंड तथा उसके सहयोगी लेफ्टिनेंट ऐस्ट को अपनी गोली का शिकार बनाया। सरकार इन आतंकवादी कारनामों से तिलमिला उठी। उसन् कठोर कदम उठाये। महाराष्ट्र में साम्राज्यवाद का तांडव शुरू हो गया। 'केसरी' के सम्पादक तिलक को सरकार–विरोधी भावनाएं उभारने के लिए 18 मास का कठोर कारावास दिया गया। उन्होंने प्रिवी परिषद् में अपील की, लेकिन उसे रद्द कर दिया गया। कई अन्य राष्ट्रवादियों को प्राण–दण्ड तथा देश से निर्वासित कर दिया गया। इससे देश में विद्रोह की आग भड़क उठी तथा जनता में असंतोष की लहर दौड़ पड़ी। 'हिन्दुओं' ने इन घटनाओं के प्रति उत्पन्न घृणा को अभिव्यक्त करते हुए कहा था कि ''विगत 40 वर्षो में ऐसी घटना नहीं घटी थी जिसन् जनता में उसकी असमर्थता तथा राजनीतिक गुलामी के प्रति इतनी अधिक चेतना पैदा की हो जितना कि बम्बई सरकार की करतूतों ने की।''

राजनीतिक कारण :– उग्रवाद के विकास में राजनीतिक कारणों का महत्वपूर्ण हाथ रहा। विशेषकर ब्रिटिश सरकार तथा भारत स्थित उसके वायसरायों की अनुदार तथा साम्राज्यवाद नीति ने भारतीय जनता में विद्रोह की भावना को जगाया। 1892 से 1904 ई. तक इंग्लैण्ड में अनुदार दल का शासन् रहा, जिसन् उग्र साम्राज्यवाद की नीति का अनुसरण किया। वह भारतीयों को किसी प्रकार का राजनीतिक अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। इस अवधि में भारत में तीन वायसराय हुए। लॉर्ड लैंसडाउन, लॉर्ड एल्गिन द्वितीय और लॉर्ड कर्जन। ये तीनों दर्धर्ष साम्राज्यवादी थे तथा भारतीयों की राजनीतिक मांगों के प्रति उन्हें जरा भी सहानुभूति नहीं थी। उन्होंने कठोर प्रतिक्रियावादी नीति को अपनाया जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय जनता का अंग्रेजों की न्यायप्रियता से विश्वास उठ गया और उनके मन में यह बात घर कर गयी कि अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए उन्हें अपने पैरों पर खड़ा ही होना होगा। यहां तक कि उदारवादी नेता भी खुलकर ब्रिटिश प्रतिक्रियावादी तथा साम्राज्यवादी नीति का विरोध करने लगे। सन् 1862 ई. में गोखले द्वारा लैंसडाउन की नीति के विरोध में व्यक्त किये गये विचार इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

''सरकार जिस प्रतिगामी नीति का अनुसरण कर रही है जिनका सम्बन्ध शिक्षा, स्थानीय स्वशासन् तथा राजकीय सेवओं से है, उसका परिणाम सरकार के लिए भयानक सिद्ध हो सकता है।''

लॉर्ड एल्गिन द्वारा चलाये गये दमनचक्र ने आग में घी का काम किया। उसने् बड़ी कठोर नीति का अनुसरण किया जिसके कारण भारतीयों में असंतोष की भावना का तीव्र गति से विस्तार हुआ। बाल गंगाधर तिलक की गिरफ्तारी तथा उन्हें कठोर कारावास का दण्ड, नट–बन्धुओं का देश से निष्कासन् तथा सरकार के अन्य क्रूरतापूर्ण कृत्यों ने सम्पूर्ण देश में क्रोध तथा प्रतिशोध की लहर फैला दी। लार्ड कर्जन की शासन्–नीति ने इस भावना को और भी तीव्र बना दिया। कर्जन साम्राज्यवाद का दृढ़ स्तम्भ था और वह भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को समूल नष्ट कर देना चाहता था। उसके अनेक प्रतिक्रियावादी राजनीतिक कार्यो ने भारतीयों में अविश्वास तथा क्रोध की भावना को पूर्ण रूप से दृढ़ बना दिया।

धार्मिक राष्ट्रवाद :– जैसा कि हम पहले देख चुके हैं प्रारम्भिक दिनों में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में था जो पाश्चात्य सभ्यता के पोषक थे तथा पाश्चात्य धर्म, संस्कृति एवं साहित्य से प्रभावित थे। इनके साथ कुछ भारतीयों ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन चेतना प्रदान की जो भारतीय संस्कृति तथा अतीत गौरव के पोषक थे। इन्होंने हिन्दू धर्म को पुनर्जागृत किया तथा भारतीयों का ध्यान उनके प्राचीन गौरवमय अतीत की ओर आकर्षित किया। इन धार्मिक पुनरूत्थानवादी नेताओं में स्वामी विवेकानन्द, विपिनचन्द्र पाल और अरविंद घोष उल्लेखनीय हैं। स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं ने नवयुवकों में मातृभूमि के प्रति गौरव की भावना को कूट–कूटकर भरा। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारत के धार्मिक निशान की पूर्ति स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद ही सम्भव है। तिलक ने हर पश्चिमी चीज का विरोध किया और भारत के लिए अपार प्रेम की शिक्षा दी। लाला लाजपत राय ने पाश्चात्य सभ्यता से ओत–प्रोत भारतीयों की घोर निन्दा की और उन्हें अपने देश के अतीत के गौरव को अपनाने के लिए संदेश दिया। विपिनचन्द्र पाल ने काली और दुर्गा का आव्हान कर दलितों को संदेश दिया। अरविन्द घोष ने मातृभूमि के लालों को यह याद दिलाया कि ''स्वतन्त्रता हमारे जीवन का ध्येय है और इसकी प्राप्ति हिन्दू धर्म से ही सम्भव है।'' थोड़े में पुनरूत्थानवादी नेताओं ने धर्म की आड़ में उग्र राष्ट्रीयता का प्रचार किया। सम्पूर्ण देश में हिन्दू पुनरूत्थानवाद की लहर दौड़ पड़ी और इसने नवयुवकों को विशेष रूप से प्रभावित किया, परिणामतः वे उग्र वर्ग क्रांतिकारी मार्ग के माध्यम से, तथा जीवन–उत्सर्ग एवं कष्ट–सहन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए लड़ने को तैयार हो गये।

प्रवासी भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार :– ब्रिटिश उपनिवेशों में रहने वाले भारतीयों के साथ बड़ा ही अन्यायपूण, अभद्र तथा असभ्य–व्यवहार किया जाता था। आरम्भ में अंग्रेज भारतीयों को मजदूर के रूप में इन उपनिवेशों में ले गये जहाँ उनके राजनीतिक अधिकार तो क्या, सामाजिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। भारतीयों को अंग्रेज काला आदमी कहते थे और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। अंग्रेजी समाचार पत्रों द्वारा जाति–भेद की नीति का तीव्र प्रचार हो रहा था। जाति–भेद की नीति इतनी जोर पर थी कि दक्षिणी अफ्रीका में, प्रवासी भारतीयों के साथ तिरष्कार पूर्ण एवं निन्दनीय व्यवहार किया जाता था। यहां तक उन्हें कुछ विशेष स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने, कुछ फुटपाथों पर चलने तथ रेलवे के ऊंचे दर्जों में यात्रा करने का अधिकार नहीं था। विभेद नीति अपनी चरम सीमा पर उस समय पहुंच गयी जब कि ट्रांसवाल सरकार ने कानून बनाकर भारतीयों को अपने अंगुली–चिन्ह दे कर पंजियित कराना अनिवार्य कर दिया। इस नियम के विरूद्ध महात्मा गांधी ने सत्याग्रह चलाया। भारतीयों ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए जी–तोड़ कोशिश की तथा काफी आर्थिक सहायता दी। भारतीयों ने यह महसूस किया कि उपनिवेशों में उनके साथ दुर्व्यवहार का प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकार के जाति–भेद की नीति तथा उदासीनता है। अतः ब्रिटिश सरकार की आलोचना तथा विरोध का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया।

जाति–भेद की नीति :– भारत द्वारा ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों के साथ दुव्यर्वहार का प्रमुख कारण अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी जाति–भेद की नीति थी। भारतीयों को निम्न प्रजाति का समझा जाता था तथा उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। आंग्ल भारतीय समाचार–पत्र खुले रूप से अंग्रेजों को भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करने की भावना को प्रोत्साहन देते थे। उन्हें दण्ड देना तो दूर रहा, सरकार की ओर से उन्हें प्रोत्साहन ही मिलता था। अंग्रेज भारतीयों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते थे और अंग्रेज अपराधियों को दण्ड तक नहीं दिया जाता था। यहां तक कि अगर कोई अंग्रेज किसी भारतीय की हत्या भी कर देता तो उसे नाममात्र की सजा दी जाती थी। लॉर्ड कर्जन की नीतियों ने जाति–भेद को काफी प्रोत्साहित किया।

उसने भाषण में स्वयं कहा था कि पश्चिमी लोगों में सभ्यता और पूर्वी लोगों में मक्कारी पायी जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षित भारतीयों तक को गालियाँ दी जाती थीं तथा उन्हें किसी भी पद के लिए सर्वथा अयोग्य समझा जाता था। जाति–भेद की नीति ने भारतीयों में प्रतिशोध की भावना को उभारा और उन्हें उग्र क्रांतिकारी बना दिया।

नवयुवकों का भिक्षा–वृत्ति वाली नीति पर से विश्वास का अन्त :– राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस ने भिक्षा–वृत्ति की नीति को अपनाया था। उसका उद्देश्य सरकार का ध्यान अपनी मांगों की ओर आकर्षित करना तथा उनकी पूर्ति के लिए निवेदन करना था। लेकिन यह नीति अंग्रेजों में नीति तथा विचार–परिवर्तन लाने में असफल रही। लॉर्ड कर्जन के शासन्काल में तो इस नीति का उल्टा ही प्रभाव पड़ा। भारतीयों की मांगों के प्रति सरकार का रूख अधिक कड़ा हो गया। फलतः नवयुवकों के हृदय में सरकारी नीति के प्रति बड़ा असंतोष तथा रोष उत्पन्न होना आरम्भ हो गया और उनका विश्वास अंग्रेजों पर से उठ गया। तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं ने यह अनुभव किया कि उदारवादियों द्वारा प्रतिपादित नीति के अवलम्बन से कोई लाभ नहीं। अतः उनके नेतृत्व में नवयुवकों ने उग्र कार्यक्रम तथा क्रांतिकारी साधनों को अपनाने का निश्चय किया। उन्हें पूर्णतया विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों के कष्टों के प्रति पूर्णतया उदासीन है तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना होगा।

भारतीय राष्ट्रवाद : गदर आंदोलन :– 1914 ई. में अचानक छिड़े प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रीयता के प्रहरियों को झकझोरा, उन्हें उद्वेलित किया। उस समय यह धारणा प्रचलित थी कि ''ब्रिटेन पर किसी भी तरह का संकट भारत के हित में है उसके लिए एक मौका है।'' इस मौके का कई जगहों पर कई तरह से फायदा उठाया गया। उत्तरी अमरीका में गदर क्रांतिकारियों और भारत में लोकमान्य तिलक तथा ऐनी बेसेंट व उनके स्वदेशी संगठनों ने इस मौके का लाभ उठाया। गदर क्रांतिकारियों ने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया, जबकि स्वदेशी संगठनों ने स्वराज के लिए देशव्यापी आंदोलन छेड़ा।

गदर आंदोलन :– उत्तरी अमेरिका का पश्चिमी सागर तट 1914 ई. के बाद से पंजाबी अप्रवासियों का स्थासी घर बनने लगा था। भारी संख्या में पंजाबी यहां आकर बसने लगे थे। इनमें से अधिकतर जालंधर और होशियारपुर के किसान थे, जो यहाँ रोजी–रोटी कमाने का साधन ढूँढने आए थे, कुछ लोग सीधे गाँवों से आए थे, कुछ लोग पहले से ही सुदूरपूर्व के देशों, जैसे मलाया और फिजी में जाकर बस गए थे। इनमें ज्यादातर ब्रिटिश सेना के सेवानिवृत्त सैनिक थे। ब्रिटिश सेना में इन्हें अपने गाँव व देश से बाहर की जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला था। आर्थिक संकटों और बाहर जाकर एक सुखी जीवन जीने के सपनों ने इन्हें विदेश जाने के लिए उत्प्रेरित किया। विदेश जाने के लिए इन्होंने अपने सारे समान और जमीन जायदाद को या तो बेच दिया या गिरवी रख दिया।

लेकिन इनका भावुक सपना सच्चाई से बहुत दूर था। इनमें से ज्यादातर को कनाडा और अमरीका में घुसने नहीं दिया गया, विशेषकर उन लोगों, को जो सीधे गाँवों से आए थे और पश्चिमी सभ्यता के तौर–तरीकों से अनभिज्ञ थे। जिन्हें बसने की इजाजत मिली, उनके साथ अत्याचार हुआ। जातीय द्वेष भड़क उठा, गोरे मजदूर इन्हें फूटी आँखों नहीं देखना चाहते थे। इसलिए गोरे मजदूरों और उनके संगठनों ने भारतीयों के प्रवेश के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। गोरे मजदूरों का वोट भुनाने वाले राजनीतिक नेताओं ने भी इनका साथ दिया। तत्कालीन भारतीय गृह सचिव ने भी भारतीयों के विदेश में बसने पर प्रतिबंध लगाने की माँग की। उनको आशंका थी कि ''भारतीयों को गोरे मजदूरों के साथ नजदीकी संपर्क होने से उनके मन में अंग्रेजों के प्रति जो इज्जत की भावना है, उसको क्षति पहुँचेगी और ब्रिटेन आज हिंदुस्तान पर इसी इज्जत के कारण काबिज है, न कि ताकत के बल पर। उन्हें यह भी चिंता थी कि भारतीय कहीं समाजवादी विचारधारा से प्रभावित न हो जाएँ। वे जानते थे कि इन भारतीयों के प्रति भेदभाव बरता ही जाएगा और इस तरह का बरताव उन्हें हिंदुस्तान में राष्ट्रीय आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित करेगा। इन तमाम आशंकाओं और चिंताओं का नतीजा यह हुआ कि 1908 ई. में कनाडा में भारतीयों के घुसने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

संघर्ष का शंखनाद :– अंग्रेजी हुकूमत के तरफदार इन देशों के सौतेले व्यवहार से भारतीय बहुत क्षुब्ध हुए और उनके जहन में राजनीतिक संघर्ष की चिंगारी सुलगने लगी। 1907 ई. में ही पश्चिमी तट पर निर्वासित जिंदगी व्यतीत कर रहे रामनाथ पुरी ने **'सरकुलर–ए–आजादी'** (आजादी का परिपत्र) बाँटा, जिसमें स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया गया था। तारकनाथ दास ने वैंकूवर में 'वैंकूवर फ्री हिन्दुस्तान' शुरू किया, जिसकी भाषा काफी उत्तेजक व राष्ट्र भावना से ओतप्रोत थी। जी.डी. कुमार ने वैंकूवर में

'स्वदेश सेवकगृह' की स्थापना की और गुरूमुखी में 'स्वदेश सेवक' नामक अखबार भी निकालना शुरू किया। इसके माध्यम से सामाजिक सुधारों की आवाज उठाई गई और 1910 ई. में भारतीय सेना से अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का आह्वान किया गया।

इस समय तक तारकनाथ दास और जी.डी. कुमार वैंकूवर छोड़ चुके थे और अमरीका में आ गए थे। यहाँ 'सिएटल' में इन्होंने 'यूनाइटेड इंडिया हाऊस' की स्थापना की। यहाँ पर शनिवार को 20 से 25 भारतीय मजदूर इकट्ठे होते और इनके बीच जी.डी. कुमार व तारकनाथ दास भाषण करते। **'यूनाइटेड इंडिया हाऊस'** संगठन में ज्यादातर लड़ाकू राष्ट्रवादी छात्र थे। धीरे–धीरे इनका संपर्क **'खालसा दीवान सोसायटी'** से होने लगा और 1913 ई. में इन दोनों संगठनों ने लंदन में ब्रिटेन के सचिव महोदय को इनसे मिलने की फुरसत ही नहीं मिली। लेकिन भारत में यह प्रतिनिधिमंडल वाइसराय तथा पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर से मिलने में कामयाब हुआ। इससे भी बड़ी कामयाबी यह थी कि इस प्रतिनिधिमंडल की भारत यात्रा की खबर पाकर लाहौर, लुधियाना, अंबाला, फीरोजपुर, जालंधर और शिमला में कई सार्वजनिक सभाएं हुई। आम जनता और प्रेस का इन्हें भारी समर्थन मिला।

कनाडा और अमरीका में भारतीयों के इस लगातार आंदोलन ने प्रवासी भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जगाई और उन्हें एकताबद्ध किया। भारतीयों के खिलाफ विदेशों के कड़े अप्रवासी कानूनों को बदलवाने के लिए इस प्रतिनिधिमंडल ने ब्रिटिश और भारतीय सरकार की मदद लेनी चाही, पर ये सरकारें राजी न हुई। इससे भारतीय और भी क्षुब्ध हुए और अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आजादी की लड़ाई की जमीन तैयार हौने लगी। सबसे पहले इस आंदोलन में प्राण फूँका एक सिक्ख ग्रंथी भगवान सिंह ने। वह मलेशिया और हांगकांग में काम कर चुके थे। वैंकूवर में 1913 ई. के शुरू में उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हथियार उठाने और उसे उखाड़ फेंकने का आह्वान किया और जनता से अपील की कि वह 'वंदेमातरम्' को क्रांतिकारी सलाम माने। लेकिन वह कनाडा में केवल तीन ही महीने रह पाए कि सरकार ने उन्हें निकाल दिया।

अमरीका केंद्र बना :– इसके बाद अमरीका राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बन गया। यहाँ राजनीतिक माहौल जरा ज्यादा खुला हुआ था। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई लाला हरदयाल ने, जो अमरीका में राजनीतिक निर्वास का जीवन बिता रहे थे। हरदयाल अप्रैल 1911 ई. में केलिफोर्निया पहुँचे, थोड़े दिनों तक स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में अध्यापन कार्य किया और जल्दी ही राजनीतिक गतिविधियों में शरीक हो गए। 1912 ई. के गर्मी के मौसम में वह अमरीकी बुद्धिजीवियों, मजदूरों एवं उग्रवादियों के विभिन्न संगठनों में घूम–घूमकर अराजकतावादी व श्रमिक संघवादी आंदोलन पर भाषण देते रहे। उन्होंने अप्रवासी कानून से भारतीयों को होने वाली कठिनाइयों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। लेकिन भारत छिपी क्रांतिकारी भावना को जगाया। उन्हें फिर यह भरोसा हो गया कि हथियारबंद क्रांति से अंग्रेजी हुकूमत का तख्त पलटा जा सकता है, उन्होंने एक परचा **'युगांतर'** जारी किया, जिसमें हार्डिंग पर हमले को उचित ठहराया गया था।

इसी बीच पश्चिमी अमरीकी तट पर बसे भारतीय किसी नेता की तलाश में थे। उन्होंने 1907 में पंजाब आंदोलन के लिए मशहूर अजीत सिंह को निमंत्रित करने पर विचार भी किया था, लेकिन उन्हें वहीं अपना नेता मिल गया। लाला हरदयाल इसके लिए तैयार भी हो गए। मई 1913 ई. में पोर्टलैंड में 'हिंदी एसोसिएशन' का गठन हुआ। काशीराम के घर में इसकी पहली बैठक में भाई परमानंद, सोहन सिंह भाकना और हरनाम सिंह 'तुंडिलाट' व अन्य लागों ने भाग लिया। इस बैठक में हरदयाल ने लोगों से कहा, "अमरीकियों से मत लड़िए, यहाँ जो आजादी आपको मिली है, उसका इस्तेमाल अंग्रेजों से लड़ने में कीजिए। जब तक आप अपने देश में आजाद नहीं हो जाते, आपके साथ अमरीकियों के समान व्यवहार नहीं किया जाएगा। भारत की गरीबी और उसके पतन के लिए अंग्रेजी हुकूमत जिम्मेदार है, अतः इसे उखाड़ फेंकना जरूरी है। यह काम प्रार्थना पत्रों से नहीं, सशस्त्र विद्रोह से ही संभव है। इस संदेश को घर–घर पहुँचाइये। भारतीय सैनिकों को विद्रोह के लिए तैयार कीजिए। आप सब लोग भारत जाइए और जनता का समर्थन प्राप्त कीजिए।"

लाला हरदयाल की यह अपील लोगों ने तुरंत मान ली। फौरन एक समिति का गठन किया गया और एक साप्ताहिक अखबार 'गदर' निकालने तथा इसे मुफ्त में बाँटने का निर्णय किया गया। सेनफ्रांसिस्कों में 'युगांतर आश्राम' नाम से एक मुख्यालय खोलने का भी निर्णय किया गया। पोर्टलैंड की पहली बैठक के निर्णयों को मंजूरी देने के लिए अनेक नगरों और कस्बों में कई बैठकें आयोजित की गई और अंत में इन बैठकों के प्रतिनिधि ऐसेटोरिया में मिले और पोर्टलैंड में किए गए सभी निर्णयों को अपनी मंजूरी दी। इस प्रकार गदर आंदोलन शुरू हो गया।

आंदोलनकारियों ने बड़े पैमाने पर प्रचार कार्य शुरू किया। खेतों और कारखानों में जाकर अप्रवासी भारतीयों से संपर्क करने लगे। ज्यादातर अप्रवासी पंजाबी कारखानों में नौकरी और खेती करते थे। युगांतर आश्रम राजनीतिक कार्यकर्ताओं का मुख्यालय, उनका घर और शरणस्थली बन गया। पहली नवंबर 1913 ई. को 'गदर' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। यह उर्दू में था। 9 दिसंबर से यह गुरूमुखी में भी छपने लगा।

अंग्रेजी हुकूमत का कच्चा चिट्ठा :– अखबार का नाम जानकार ही लोग समझ सकते थे कि इसका मकसद क्या है। किसी को यदि कोई आशंका रही होगी, तो वह अखबार के नाम के साथ लिखी यह पंक्ति 'अंग्रेजी राज का दुश्मन' पढ़ने से खत्म हो गई होगी। हर अंक के पहले पृष्ठ पर छपता था–'अंग्रेजी राज का कच्चा चिट्ठा।' यह 14 सूत्रीय कच्चा चिट्ठा था, जो अंग्रेजों के कुशासन् का उदाहरण देता था, जैसे अंग्रेजों द्वारा भरतीय संपदा की लूट, भारत में प्रतिव्यक्ति औसत आय का कम होना, भूराजस्व बढ़ाते जाना, स्वास्थ्य पर खर्च का बजट कम और सेना पर खर्च का बजट ज्यादा, भारतीय उद्योग व कला का सत्यानाश, महामारी और प्लेग से लाखों भारतीयों की मौत, भारतीय करदाताओं के पैसे के बल पर अफगानिस्तान, बर्मा, मिस्त्र, फारस व चीन का अतिक्रमण, अंग्रेजों द्वारा अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए भारत के विभिन्न राज्यों में आपसी मनमुटाव पैदा करना, भारतीयों की हत्या करने वाले व भारतीय महिलाओं को अपमानित करने वाले अंग्रेज नागरिकों के प्रति सरकार का नरम व भेदभावपूर्ण रवैया, हिंदुओं और मुसलमानों से पैसा उगाहकर ईसाई धर्म प्रचारकों को देना व उन्हें प्रोत्साहित करना इत्यादि। अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन को तेज करने के लिए ये बातें हर सप्ताह अखबार में छापी जातीं। इस 'कच्चे चिट्ठे' के आखिरी दो सूत्र इन समस्याओं का समाधान बताते थे। पहला, भारत की आबादी 31 करोड़ है, 7 करोड़ भारतीय राज्यों की और 24 करोड़ 'ब्रिटिश इंडिया' की, जबकि अंग्रेजों की कुल संख्या 1,18,562 है। जिनमें 79,614 अधिकारी व सैनिक हैं तथा 38,948 अन्य अंग्रेज शामिल हैं। दूसरा, 1857 ई. के विद्रोह को 56 वर्ष बीत चुके हैं, अब दूसरे विद्रोह का वक्त आ गया है।

यह कच्चा चिट्ठा बहुत ही सरल भाषा में लिखा जाता था और साथ ही सावरकर, तिलक, अरविंद घोष, मैडम कामा, श्यामजी कृष्ण वर्मा, अजीत सिंह और सूफी अंबा प्रसाद के विचार व लेख छापे जाते थे, जो भारतीयों को संघर्ष की प्रेरणा देते थे। इसके अलावा 'अनुशीलन समिति', 'युगांतर' और रूस के गुप्त संगठनों से प्रशंसनीय व साहासिक कार्यों की जानकारी भी दी जाती थी।

लेकिन जनता को सबसे अधिक प्रभावित किया 'गदर' में छपी कविताओं ने। बाद में 'गदर की गूँज' नाम से इन कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हुआ और इसे मुफ्त में बाँटा गया। ये क्रांतिकारी कविताएँ धर्मनिरपेक्षता से ओतप्रोत थीं। बतौर उदाहरण एक कविता का भावार्थ था–''हमें पंडितों और मुल्लाओं की जरूरत नहीं, भजन और प्रार्थनाओं की जरूरत नहीं, इससे हम भटक जाएँगे, यह लड़ने का वक्त है, अपनी तलवारें खींच लो।''

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. राम जोशी एण्ड कीर्तिदेव देसाई – दुवर्डस ए मोर कम्पेटीटिव सिस्टम इन इण्डिया, एसियन सर्वे, नवम्बर, 1978।
2. महेन्द्र प्रसाद सिंह – दि कांग्रेस संटेनियल, इण्डियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, अक्टूबर–दिसम्बर, 1985।
3. जैम्स मैनर – एनामी इन इण्डियन पालिटिक्स, इकॉनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, ऐनुअल नम्बर, मई 1983।
4. प्रवीण के. चौधरी – अग्रेरियन अनरेस्ट इन बिहार, ए केस स्टडी ऑफ पटना डिस्ट्रिक्ड 1960–84 जनवरी 2/9/1988।
5. डॉ. आर. के. परूथी – आधुनिक भारत (1905–1919) समाजवाद राष्ट्रवाद और महात्मा गांधी, अर्जुन पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008।
6. किट्टु रेड्डी प्रस्तावना किरीट जोशी, – मेरा भारत इतिहास और संस्कृति, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इण्डिया), नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009।
7. डॉ. के. पी. सिंह – भारत का राष्ट्रीय आंदोलन शासन् एवं राजनीति, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, प्रथम संस्करण, 1988 एवं द्वितीय संस्करण, 1990।
8. एम.एल.धवन – भारत का राष्ट्रीय आंदोनल एवं स्वतंत्रता संघर्ष, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008।
9. रश्मि पाठक – भारत में अंग्रेजी राज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009।
10. रजनी कोठारी – पालिटिक्स इन इण्डिया,

ओरिएण्ट लांगमैन्स, 1970।

11. डब्ल्यू. एच. मारिस – दि गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स ऑफ इण्डिया, हंचिसन्, नण्डन, 1971।
12. होर्स्ट हार्टमैन – पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1982।
13. आर. उन. हार्डग्रेन – इण्डिया–गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स इन ए डेवल–पिंग नेशन, हारकोर्ट ब्रेस एण्ड बर्ल्ड न्यूयार्क, 1970।
14. के.पी.सिंह – भारतीय सरकार और राजनीति, खण्ड 2 पुष्प– राज प्रकाशन, रीवा इलाहाबाद, 1979।
15. एन.एन. वोहरा, सब्यसाचि भट्टाचार्य, – अनुवाद राघवचेतन राय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2009।
16. विपिन चन्द्र – आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2009।
17. सुमित सरकार – आधुनिक भारत, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण, 1993।
18. कुसुम वाजपेयी – आधुनिक भारत का इतिहास, इशिका पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर राजस्थान, भारत, प्रथम संस्करण 2011।
19. डॉ. आर. के. परूथी – आधुनिक भारत, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011।
20. डॉ. शैलेन्द्र श्रीवास्तव – स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, साहित्य निधि प्रकाशन, दिल्ली वर्ष 1994
21. निर्मल कुमार – भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, समानांतर प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 1990
22. जे. आर. सिवाच – डाइन मिक्स ऑफ इण्डियन गवर्नमेंट, एण्ड पालिटिक्स, स्टलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985।
23. के.पी. सिंह – भारतीय सरकार और राजनीति पुष्पराज प्रकाशन, रीवा–इलाहाबाद, 1976।
24. तारा चन्द्र – भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास, भाग–2, प्रकाशन विभा, नई दिल्ली, 1982।
25. वी.एन. सिंह, जनमेजय सिंह – भारत में सामाजिक आंदोलन, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

ग्रामीण नेतृत्व में महिलाओं का उभरता प्रतिनिधित्व

Sakarlal Batti
Assistant Professor, Political Science, Government PG College, Waidhan Singrauli, (M.P.)

हमारे देश में महिलाओं की आबादी देश की कुल जनसंख्या का लगभग आधा है अतः महिला प्रतिनिधियों को सशक्त बनाये बिना समाज व देश के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रत्येक परिवार की नींव महिला होती है जिसके कंधे पर परिवार समाज व देशरूपी भवन का निर्माण किया जाता है। भारत गांवों का देश है और भारत की उन्नति, प्रगति इसके बिना सम्भव नही है। जब महिलाये हर क्षेत्र में पुरूषों के साथ कदम से कदम मिलाकर अपनी अन्तनिर्हित क्षमता के बल पर आत्म विश्वास और साहस के साथ पुरूष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व का अहसास दिलाने का सफल प्रयास कर रही हैं। विश्व के महिला समाज ने सदा से ही अपने को सामाजिक, धार्मिक, विधिक शैक्षणिक, आर्थिक व सांस्कृतिक हर क्षेत्र में उपेक्षित समझा और उसकी यह पीड़ा सदा से ही संवेदित करती रही कि उसे पुरूष के अधीन ही परतन्त्र, पराश्रमी, पराधीन जीवन क्यों जीना पड़ता हैं।

वर्तमान में पंचायती राज के माध्यम से महिला सशक्तीकरण की समीक्षा मानवाधिकार के नजरियें से भी की जा रही हैं।'' दुनिया को महिलाओं की दृष्टि से देखों'' महिलाओं के अधिकार मानवाधिकार हैं। भारत के ग्रामीण नेतृत्व में हर स्तर पर महिलाओं की व्यापक भागीदारी को विश्व स्तर पर सही ढ़ंग से प्रस्तुत करना हैं। सामाजिक आयाम के साथ – साथ आर्थिक आयाम भी महिला प्रतिनिधियों के आर्थिक सशक्तीकरण हेतु पंचायती राज संस्थाओं से जुड़ा है जिसमें निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही ग्रामीण महिलाओं को रोजगार मुहैया कराना होगा। साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा की ग्रामीण स्तर पर विकास और लोकतान्त्रिक क्रियाकलापों से गांव की आम महिला भी सहयोग प्रदान कर सकें।

महिला प्रतिनिधयों का वर्चस्व :– पिछले कुछ वर्षो में राजनीतिक एवं प्रशासन के क्षेत्र में भी महिला को सशक्त हस्तक्षेप बढ़ा हैं। इनमें से कई राजनीति के शिखर तक भी पहुंच रही हैं और इस तरह अपने नेतृत्व को साबित कर रही हैं। लेकिन राजनीति के शिखर पर पहुचने वाली कुछेक महिला नेताओं से निष्कर्ष निकालना भी सही नही हैं। कि इससे आम महिलाओं की समस्या और स्थिति में सुधार हो जाएगा क्योंकि महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने में पुरूष वर्चस्व वाली सभी राजनीतिक पार्टियां अनाकानी और टालमटोल कर रही थी उन्हें यह डर सता रहा था कि इसके कारण कही उनकी अपनी सत्ता न छिन जाए। ग्रामीण नेतृत्व में पंचायत की सीटों पर जो आरक्षण महिलाओं को दिए गयें हैं। उसके कारण उनकी स्थिति और चेतना में निश्चित रूप से महिलाओं का उभरता हुआ प्रतिनिधित्व में बदलाव व विकास हुआ हैं। महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक बराबरी करने का बेहतर अवसर मिला हैं जिसको रूढ़ीवादी ताकतों ने संघर्षमय और चुनौतीपूर्ण बना दिया था। निश्चय ही यह कहा जा सकता हैं कि नेतृत्व के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका इस समय दुनिया में सबसे अहम हैं। सर्वजन – शिक्षा जो सुशासन की देन है महिलाओं का सशक्तीकरण उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रता देकर किया हैं। इसके अलावा शिक्षा ने महिला के लिए नये आयामों का संचार किया हैं, जिससे वह हर क्षेत्र में अपनी योग्यता एवं सक्षमता दिखाने की स्थिति में हैं। पंचायतो में आरक्षण करके सरकार ने महिलाओं के लिए विशाल क्षेत्रों को खोल दिया हैं जिनमें वह पूरी शक्ति से भाग ले रही हैं।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को आरक्षण व नेतृत्व प्रदान करना एक महत्वपूर्ण कदम है। वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका सक्रिय रही है। नेतृत्व क्षमता के कारण महिला जनप्रतिनिधि अपने अधिकार व कर्तव्य के प्रति भी सचेत है इन पर ग्रामीण की परिस्थितियों व हालातों को बदलने तथा ग्रामीण विकास की नई जिम्मेदारी डाली है निश्चित ही ग्रामीण नेतृत्व में महिला शक्ति को बल मिला है इस तरह महिलाओं को अपने विकास समाज में स्थान बनाने एवं सशक्तिकरण का स्वर्णिम अवसर मिला है महिला प्रतिनिधियों के नेतृत्व के कारण निष्पक्ष व पारदर्शी कार्यप्रणाली का प्रशासन पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है, जो एक बदलाव की ओर इंगित करता है, उनका यह नेतृत्व आगे आने वाली पीढ़ी के लिए एक आर्दश है वैसे ग्रामीण नेतृत्व में महिलाओं को सत्ता मे भागीदारी के अवसर तो प्राप्त हुए है परन्तु उचित मार्गदर्शन, प्रशिक्षण व शिक्षा के अभाव में उन्हें सही

दिशा प्राप्त नही हुई हैं। महिलाओं में नेतृत्व क्षमता विकसित करने के लिए शासन एवं समाज तथा सरकारी संगठन, राष्ट्रीय दल महिला समूहों को एक साथ कार्य करना होगा है।

भारत में महिलाओं को त्रिस्तरीय अवसरों की उपलब्धता हैं। प्रथम, राजनीतिक दलों के स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से महिलाओं की भागीदारी दिखाई पड़ती हैं। वह शहरी परिवेश हो अथवा ग्रामीण, राष्ट्रीय राजनीति से लेकर पंचायत तक में महिलाओं को प्रतिनिधित्व करने का सुवसर मिल रहा हैं। द्वितीय संस्थागत स्तर पर, राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना महिला अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध संगठन हैं जिसने विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। महिला आयोग की स्थापना के पश्चात एक महत्वपूर्ण प्रयास 73 वां व 74 वां संवैधानिक संशोधन रहा हैं। जिसके अंतगर्त महिलाओं को स्थानीय स्तर 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया।

मध्यप्रदेश पंचायती राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम में एक महत्वपूर्ण संवैधानिक संशोधन अधिनियम 2007 द्वारा किया गया इस संशोधन के माध्यम से आरक्षित किये गये संस्थानों की कुल संख्या में से महिलाओं के लिए आरक्षित कम से कम एक तिहाई शब्द के स्थान पर आधे शब्द प्रतिस्थापित किये गये अर्थात् महिलाओं का आरक्षण 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया। प्रत्येक ग्राम पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या में से कम से कम आधे स्थान जिसके अन्तर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है। महिलाओं के लिए आरक्षित किये गये और ऐसे स्थान विहित प्राधिकृत द्वारा विहित रीति में ग्राम पंचायत में भिन्न – भिन्न वार्डो के लिए लॉट निकालकर और चक्रानुक्रम में आवंटित किये जा सकेगें।[5] कि महिलाओं के अधिकारों एवं नेतृत्व को वास्तविक रूप से क्रियान्वित किया जा सके तृतीय आन्दोलन की राजनीति के स्तर पर राष्ट्रीय, क्षेत्रीय अथवा स्थानीय मुद्दों पर संगठित हो कर प्रतिरोध प्रदर्शित करना एवं उसके माध्यम से राजनीतिक निर्णय निमार्ण प्रक्रिया को प्रभावित करना भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं। महिलाओं की परिस्थिति पर कमेटी की रिपोर्ट 'समानता की ओर' से उल्लेख किया गया है कि भारतीय राजनीति परिदृश्य में किसी एक कारक और राजनीतिक व्यवहार के मध्य परस्पर सम्बन्ध था। विभिन्न क्षेत्रो से राजनीतिक व्यवहार का आदेश विभिन्न सम्बन्धों को दर्शाता हैं और उन पर प्रभाव डालता हैं क्योंकि वे सब राजनीतिक व्यवहार द्वारा अन्त संबन्धित होते है जैसे – महिलाओं की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां, सांस्कृतिक मानक और विस्तृत समाज में महिलाओं की भागीदारी की ओर सभी क्षेत्रों का दृष्टिकोण वर्तमान ग्रामीण परिदृश्य इस बात को दर्शाता है कि अब भी महिलाए समाज के हाशिये पर है वे इतनी जागरूक नहीं हो पाई है कि ग्राम सभा की बैठकों में भाग लेने के लिए तत्पर रहें। आम ग्रामीण महिलाओं को शायद जानकारी नहीं हैं। कि अब ग्राम सभा को 73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा संवैधानिक मान्यता मिल गई हैं इसलिए जरूरी है कि आम महिलाओं की सक्रिय भूमिका पंचायती राज के दर स्तर पर हो एवं एक मजबूत महिला समिति का गठन हो हाल ही में ये मध्यप्रदेश बिहार, आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान व महाराष्ट्र में ज्यादा सक्रिय हुई हैं। नवीन पुर्ननिर्वाचित पंचायतो में प्रवेश के बाद भारत की ग्रामीण नेतृत्व में महिलाओं ने आत्मविश्वाश के साथ अपनी छवी बदलने की कोशिश शुरू कर दी है।

ग्रामीण नेतृत्व में महिलाओं प्रतिनिधियों ने अपने आत्म विश्वास से पंचायतों के अन्दर एवं बाहर अपनी भागीदारी से ग्रामीण नेतृत्व विकास के स्तर को और सशक्त बनाया हैं। महिलाओं की क्षमताओं को लेकर सबसे ज्यादा संदेह ग्राम पंचायतों में ही प्रकट किया गया था। लेकिन महिलाओं के सफल नेतृत्व ने उनकी क्षमताओं को और उभारने का काम किया हैं। महिला जनप्रतिनिधियों को प्रोत्साहन के लिए प्रति वर्ष उनके अपने क्षेत्र में ग्रामीण विकास कार्यो के आधार पर उन्हें सम्मानित करने की परम्परा प्रारम्भ की जाये। इसके साथ ग्रामीण नागरिकों की सक्रिय भागीदारी ग्रामीण नेतृत्व में निश्चित रूप से सहायक होगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कुमावत, डॉ. ललित, ''पंचायती राज एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व'' क्लासिकल पब्लिसिंग, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ क्रमांक 86।
2. सिंह, डॉ. निशान्त, ''पंचायती राज और महिलाये,'' सुनील साहित्य मोहल्ला, बढ़ियाल बाटा चौक, पालम गांव दिल्ली, 2008, पृष्ठ क्रमांक 14।
3. उम्मन एम. ए. एवं दत्ता अभिजित पंचायत राज एण्ड देअर फायनेंस कन्सेप्ट पब्लिशिंग नई दिल्ली 1991.
4. कुमार गिरीश एवं घोष बुद्धदेव बंगाल पंचायत इलेक्शन 1993, ए स्टडी इन पार्टीसिपेशन कन्सेप्ट

पब्लिशिंग कं नई दिल्ली 1996.

5. कोठारी रजनी, पंचायत राज से असेस्मेण्ट इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली मई 13, 1961 पुष्ठ 757.
6. खन्ना बी. एस. पंचायत राज इन इंडिया – रूरल लोकल सैल्फ गवर्नमेंट दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली 1994.
7. सिसोदिया, डॉ. यतीन्द्र सिंह ''पंचायती राज व्यवस्था'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमिक, भोपाल, 2001 पृष्ठ क्रमांक 11।
8. जैन, डॉ. पुखराज, फड़िया, डॉ. बी. एल. भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2009, पृष्ठ क्रमांक 22।
9. मध्यप्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज संशोधन अधिनियम 2007।
10. वर्मा, आर. के – पॉलिटिकल लीडरशिप, अमर प्रकाशन, दिल्ली 1991.
11. वैंकटरगैया एम. एवं रामरेड्डी जी – पंचायत राज इन आंध्र प्रदेश स्टेट चैंबर ऑफ पंचायत राज, हैदराबाद 1987.
12. विद्या के. सी. – पॉलिटिकल, एम्पावरमैंट ऑफ वुमन एट द ग्रासरूट्स कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1999.

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

भारतीय राजनीति में जातिवाद की भूमिका

डॉ. राकेश रंजन
प्राचार्य, शकुनी चौधरी कॉलेज ऑफ एजुकेशन, पार्वती नगर, तारापुर (मुंगेर)

सार :– भारत में जाति एक महत्वपूर्ण कारक है जो राजनीति को आकार प्रदान करती है। न केवल जाति राजनीति को प्रभावित करती है बल्कि राजनीति भी जाति को प्रभावित करती है। जाति एवं राजनीति के बीच संबंधों को दो पहलुओं से देखा जा सकता हैः चुनावी और गैरचुनावी। जाति मतदान व्यवहार का निर्णायक तत्व मानी जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही भारतीय राजनीति के आधुनिक स्वरूप का विकास हुआ और तव यह उम्मीद की जाने लगी कि देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होगी और भारत से जातिवाद समाप्त हो जायेगा लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ बल्कि जातिवाद ने न केवल समाज में बल्कि राजनीति में भी प्रवेश करके उग्र रूप धारण कर लिया है। आज वस्तुस्थिति यह है कि भारत में जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, और धार्मिक प्रवृतियों को ही प्रभावित किया है, बल्कि राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केन्द्र ही नहीं राजस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए बहुत ही खतरनाक है। इसके कारण राष्ट्रीय एकता एवं विकास का मार्ग लगभग अवरूद्ध हो रहा है।

कीवर्ड :– दलित, सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक, संविधान, राज्य–समाज।

परिचय :–भारत में जाति एक महत्वपूर्ण कारक है जो राजनीति को आकार प्रदान करती है। न केवल जाति राजनीति को प्रभावित करती है बल्कि राजनीति भी जाति को प्रभावित करती है। जाति एवं राजनीति के बीच संबंधों को दो पहलुओं से देखा जा सकता हैः चुनावी और गैरचुनावी। जाति मतदान व्यवहार का निर्णायक तत्व मानी जाती है। भारतीय राजनीति के अन्तर्गत वैसे तो बहुत सारे मुद्दे भरे पड़े हैं और उन प्रमुख मुद्दों में जातिवाद सर्वोपरि है। जातिवाद किसी न किसी प्रकार हमारी राजनीति को प्रभावित करती है। जातिवाद नामक मानसिकता को सुधारने का प्रयास संविधान निर्माण के समय से ही किये जा रहे है। कभी यह सुधार किन्हीं राजनेताओं के द्वारा तो कभी सुधार प्रस्ताव के द्वारा। इसका गवाह इतिहास स्वयं है। आज राजनीति में या मनुष्य के जीवन को यदि सबसे ज्यादा प्रभावित कुछ करता है, तो वह है– "जातिवाद"। इसकी जड़े प्राचीनकाल से ही इस कदर भारतीय राजनीति में जमी हुई है कि इसे निकाल फेंकने का प्रयास भर मानव मात्र कर पाया है। तमाम प्रयासों के बावजूद भी जातिवाद भारतीय राजनीति में अपनी जड़ों को जमाये हुए हैं, जो वर्तमान राजनीति में एक भयंकर बीमारी प्रतीत होता है।

हमारे समाज में एक बड़ी ही व्यापक और मुख्य भूमिका अति–पिछड़ों तथा दलितों की है, दलितों का हमारे जीवन में प्राचीन काल से ही विशेष भूमिकाएँ रही हैं, ये समाज के ऐसे वर्ग है, जो अपना एक अलग महत्व रखते हैं। भारत में ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में जाति प्रथा किसी न किसी रूप में एक गंभीर सामाजिक कुरीति के रूप में व्याप्त है।

वैदिक काल में वर्ग–विभाजन किया जाता था, जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था। यह जातिगत न होकर गुण एवं कर्म पर आधारित था। समाज चार वर्गों में विभाजित था। धामिर्क तथा वेदों से जुड़े कार्य ब्राह्मण करते थे. देश की रक्षा तथा प्रशासन से जडु कार्य क्षत्रिय करते थे, कृषि और व्यापार का कार्य वैश्य करते थे तथा शूद्र को इन तीनों वर्णों की चाकरी करनी पड़ती थी। वर्ण–व्यवस्था आरै जाति–व्यवस्था में सबसे बड़ा अंतर यह है कि वर्ण का निर्धारण व्यवसाय से होता था, जबकि जाति का निश्चय जन्म से होता था। इस प्रकार जाति–प्रथा भ्रष्ट सिद्ध होती गई।

प्रो0 रूडोल्फ के अनुसार "भारतीय राजनीतिक लोकतंत्र के संदर्भ में जाति वह धुरी है, जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है, कि इसके जरिए भारतीय को लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।" प्रो0 रजनी कोठारी ने भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है।

भारत में जाति के आधार पर ही सामाजिक व्यवस्था का संगठन हुआ है। राजनीति केवल सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मात्र है, इसलिए सामाजिक व्यवस्था राजनीति का स्वरूप निर्धारित करती है। लोकतांत्रिक समाज में राजनीतिक प्रक्रिया जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है, ताकि उनका सहयोग और समर्थन के द्वारा अपनी राजनीतिक

स्थिति को और भी अधिक मजबूत बना सके। भारतीय राजनीति सदैव 'जाति' के इर्द–गिर्द धूमती है, यदि किसी व्यक्ति विशेष को राजनीति में सफलता चाहिए तो वह किसी संगठित जाति का सहारा लेता है। वर्तमान में जाति विशेष का संगठन ही ज्यादातर राजनीति में भाग ले रही है। अतः स्पष्ट है कि वर्तमान में जाति का विशेष महत्व 'राजनीति' में है।

समाज के विभिन्न वर्गों तथा जातियों का समर्थन पाने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के नेता उन सब संस्थानों के खिलाफ थे जिनकी प्रवृति भारतीय जनता को विभाजित करने की थी। सार्वजनिक प्रदर्शन विशाल जनसभाओं और सत्यागह्र संघर्षों में सामुहिक रूप से भाग लेने से जाति चेतना कमजोर पड़ गयी, जो लोग स्वतंत्रता और समानता के नाम पर विदेशी शासन से आजादी के लिए लड़ रहे थे, वे जाति व्यवस्था का समर्थन नहीं कर सकते थे। इस प्रकार आरंभ से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और वस्तुतः संपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन जातिगत विशेषाधिकारों का विरोधी था। उसने जाति लिंग धर्म के भेदभाव के बिना व्यक्ति के विकास के लिए समान नागरिक अधिकारों तथा समान स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।

दलितों के मसीहा कहे जाने वाले बाबा साहब डॉ0 भीम राव अम्बेडकर अपना सारा जीवन जातिगत जलुम के खिलाफ लड़ने में लगा दिया। उन्होनें अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ (All Indian Depressed Classess Federation) की स्थापना इसी उद्देश्य से की ताकि दलितों में जागृति की भावना को विकास हो। अनुसूचित जनजातियों के कई अन्य नेताओं ने अखिल भारतीय दलित वर्ग परिषद् (समिति) की स्थापना की। दक्षिण भारत में गैर ब्राह्मणों ने बीसवीं सदी के तीसरे दशक के दौरान ब्राह्मणों द्वारा अपने उपर लादी गई नियोर्ग्यताओं के खिलाफ संघर्ष करने के लिए 'आत्मसम्मान' आंदोलन चलाया। सारे भारत में मंदिर प्रवेश पर रोक तथा इसी तरह के अन्य प्रतिबंधों के विरोध में दलित जातियों ने अनेक सत्याग्रह आंदोलन चलाये।

अम्बेडकर अपनी मृत्यु के बाद दलितों के लिए एक आदर्श के रूप में उभरे जिससे दलितों को काफी लाभ मिला है। वे इनके लिए एक उदाहरण और प्रेरणा दोनों ही रहे हैं। वे उच्च कोटी के बुद्धिजीवी थे, जिन्होने उच्च जातियों द्वारा बनाये गये घेरे को तोड़ा तथा अपनी मृत्यु के कई दशकों के बाद भी वे अपने अनुयायियों को ऐसा करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। दरअसल अम्बेडकर के व्यक्तित्व ने पूरे देश में दलितों को एक सूत्र में बाँधा है।

परंपरागत भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था की संपूर्ण संरचना इस प्रकार थी जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सवोर्च्च थी, लेकिन आज सामाजिक व्यवस्था की रूप–रेखा राज्य के द्वारा बनाए गए कानूनों द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक मूल्यों के उदय के साथ ही धार्मिक विश्वास स्वयं ही लौकिक जीवन से दूर हट रहे हैं। व्यक्तियों को संविधान द्वारा समानता का अधिकार दिया गया है अतः व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण आज जातिगत स्थितियों से न होकर उसकी योग्यता और कुशलता के आधार पर हो रहा है। जाति–व्यवस्था की संरचना स्तरण में जिन व्यक्तियों को अस्पृश्य दलित अथवा अंत्यज मानकर समस्य अधिकारों से वंचित कर दिया गया था, उनकी स्थिति में आज काफी परिवर्तन हुआ है। महात्मा गांधी और अंबेडकर के प्रयत्नों से इन व्यक्तियों को समान अधिकार ही नहीं दिये गये, बल्कि सभी सरकारी नौकरियों व राजनीतिक संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर दिये गए हैं, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार हो सके।

समकालीन भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। विधवा विवाह को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इतना ही नहीं कानून के द्वारा भी ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है। पारंपरिक जाति–व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपने से निम्न जाति के सदस्यों द्वारा स्पर्श किये गए भोजन को ग्रहण नहीं करती थी। जबकि वर्तमान में जाति का यह आधार लगभग समाप्त ही हो गया है। आजकल शहरों में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ कारखानों में काम करते हैं और अवकाश के समय सब साथ बैठकर भोजन करते हैं। होटल, जलपानगृहों तथा उत्सवों में भी सभी जातियों के व्यक्ति उस भोजन को ग्रहण करते हैं जो किसी भी जाति के अज्ञात व्यक्ति के द्वारा बनाये गए हो। जिनका स्पर्श करना भी जाति–व्यवस्था द्वारा कभी वर्जित था।

जाति व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी जाति के सदस्यों से ही अधिकतम संपर्क बढ़ाए, उच्च जातियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखे और निम्न जातियों से दूरी बनाए रखे। आज बहुत सी उच्च जातियाँ अपने स्वार्थो को पूरा करने के लिए उन सभी व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करती है। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित होता था जो अनवुांशिक होता था। वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त हो चुका है। नगरों में सभी जातियों के व्यक्ति अपने–अपने अलग व्यवसाय में लगे होते हैं। इस तरह

अब व्यवसायिक जीवन की गतिशीलता ने सभी जातियों को समान जीविकोपाजर्न का अवसर प्रदान किया है।

माननीय सुप्रीम कोर्ट ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के निर्णय में स्पष्ट रूप से लिखा है– "संविधान ने जाति व्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया और इसने विधि के समक्ष समता का आश्वासन दिया। अनुछेद 15(2) और 16)2) के अन्तर्गत जाति के प्रति निर्देश केवल इसे समाप्त करने के लिए है।" इसी निर्णय में आगे लिखा गया है "अब जाति व्यवस्था, जिसे संविधान के रचयिताओं ने समाप्त कर दिया है, विभिन्न रूपों में अपना घृणित सिर उठाने का प्रयत्न कर ही है।"

स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि माननीय सुप्रीम कोर्ट (भारत के संविधान) ने जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं किया है बल्कि संविधान ने 'अस्पृश्यता' को समाप्त किया है, न की जाति व्यवस्था को। संविधान के अनुछेद 15(2) ने जाति को धर्म, मूलवंश, लिंग और जन्म स्थान के साथ रखा है। स्पष्ट है, संविधान ने न धर्म को समाप्त किया है, न मूलवंश को, न लिंग को न जन्म स्थान को। लिखा यह गया है कि 'कोई नागरिक केवल, धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमे से किसी के आधार पर – (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या (ख) राज्य निधि में पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुँओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक सभागत के स्थानों के उपयोग के संबंध या शर्त के अधीन नहीं होगा। लेकिन माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने आदेश में यह भी लिखा है कि इस अनुच्छेद ने जाति को समाप्त कर दिया है। संविधान के अनुच्छेद 16(2) में लिखा गया है कि 'राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उदभ्व, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जायगो। इसमें संविधान ने जाति या धर्म को समाप्त करने की कोई बात नहीं कही है।

1952 में पहली बार लोकसभा चुनाव हुआ था उस समय की राजनीति में दलितों की कोई खास भागीदारी नहीं थी। राजनीति में दलित और आदिवासियों की वोट की ताकत का महत्व का एहसास नहीं था। भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा होता है, उस क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है, ताकि संबंधित प्रत्याशी की जाति के मतदाओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। सभी राजनीतिक दलों द्वारा यह माना जाता है, कि राज्यस्तरीय मंत्रिमण्डलों में प्रत्येक प्रमुख जाति का मंत्री अवश्य होना चाहिए। केवल प्रांतीय स्तर पर ही नहीं बल्कि ग्राम पंचायती स्तर भी यह भावना काम करती है। 'मेयर' के अनुसार 'जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत हैं। कोई भी राज्य ऐसा नहीं है, जहाँ पर राजनीति जातिवाद से प्रभावित नहीं हो रही है। केरल, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा, बिहार, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि सभी राज्यों की राजनीति पर जातिवाद स्पष्ट रूप से हावी है।

जाति के आधार पर भेदभाव भारत में स्वतंत्रता से पहले भी विद्यमान था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद प्रजातंत्र की स्थापना होने से समझा गया कि जातिगत भेद समाप्त हो जायेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। राजनीतिक संस्थाएँ भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। फलस्वरूप जाति का राजनीतिकरण हो गया। जाति का राजनीतिकरण आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक साम्प्रदायिक सद्भाव एवं समरसता का निर्माण करने हेतु आधार नहीं बनाया जा सकता।

वैसे तो संविधान द्वारा अस्पृश्यता को लेकर अनेकों कानून बनाए गए, परन्तु जाति–विहीन समाज की स्थापना संविधान की अंतरात्मा नहीं बन पाई। अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई परन्तु जाति व्यवस्था स्वयं बनी रही। अनुच्छेद 17 का अंबेडकर द्वारा किया गया प्रारूप यह था कि रैंक, जन्म, व्यक्ति, परिवार, धर्म या धार्मिक रूढ़ि और रीति–रिवाज से उत्पन्न किसी विशेषाधिकार या नियोर्ग्यता को समाप्त किया जाता है, परंतु इसे न तो प्रारूप समिति ने स्वीकार किया और न ही संविधान सभा ने स्वीकार किया। बिना चर्तुवर्ण या जाति का नाम लिए अंबेडकर ने इन पर आधारित विशेषाधिकारों या नियोर्ग्यताओं को समाप्त करने का प्रयास किया था और यदि उसे स्वीकार किया गया होता तो वह सामाजिक समता तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा के ज्यादा समीप होता। 1930 के दशक में मंदिर प्रवेश के लिए हरिजनों को प्रदान की जाने वाली व्यवस्था पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अंबेडकर ने स्पष्ट किया था, कि 'यदि हिन्दू धर्म उनका धर्म' होना है, तो उसे सामाजिक एकता का धर्म होना होगा। मात्र हिन्दू संहिता का संशोधन कर मंदिरों में प्रवेश दिलाना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता है कि जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता के जनक चर्तुवर्ण के सिद्धांत को समाप्त किया जाय।' आर0 सी0 मजुमदार ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया है कि इसका मात्र संतोषजनक

उत्तर यह हो सकता था कि तीन हजार वर्षों से पुरानी व्यवस्था एक दिन में समाप्त नहीं होगी और इसके लिए धीरे–धीरे प्रयास जारी रहेगा। परंतु गाँधी सहित किसी हिन्दू नेता ने यह स्पष्ट रूप से जाति व्यवस्था के विरुद्ध विचार व्यक्त नहीं किया।

प्रत्येक राज्य में दलित अल्पसंख्यक हैं, जो विभिन्न जातियों के साथ मिश्रित जनसंख्या वाले समुदायों के लोगों के साथ रहते हैं। इसका अर्थ यह है, कि चुनाव के समय वे उन निर्वाचन क्षेत्रों में भी निर्णायक प्रभाव डाल सकते हैं, संघ के सभी राज्यों में और हर राज्य के प्रत्येक जिले में 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के बीच उनका वोट है इसलिए राजनीतिक दलों को अधिकांश लोकसभा और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों में दलित हितों का ध्यान रखना पड़ता है। दलित मतदाता लगभग 300 निर्वाचन क्षेत्रों के निर्णय में असरदार भूमिका निभाते हैं।

पूरे देश में दलितों को तकरीबन एक ही तरह के संरचनात्मक दमन का सामना करना पड़ा है। इस समान अनुभव के कारण राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर दलितो ं की गोलबंदी बढ़ाने में मदद मिली है। इसका कारण यह है कि जाति व्यवस्था पूरे भारत में एक ही तरह से कार्य करती है। तमिलनाडु के गांवों की तरह उत्तर प्रदेश के गांवों में भी दलितों को सबसे निम्न कोटि का कार्य दिया जाता है, उन्हें उच्च जाति की बस्तियों से दूर बसने पर मजबूर किया जाता है। उन्हें दूषित जन स्रोतों से ही पानी लेने की अनुमति दी जाती है, आरै मंदिर में प्रवेश पर रोका जाता है। इसलिए वे गांवों, जिलों और राज्यों के बीच क्षैतिज एकजूटता और जुड़ाव का विकास कर सकते हैं।

जातिप्रथा के कारण समाज टुकड़ों में बंट गया, व्यक्ति–व्यक्ति के बीच भेदभाव बढ़ता गया, अहंकार और द्वेष के फलस्वरूप भारतवासी कभी एक नहीं हो सके, फलस्वरूप भारतवासियों को हमेशा विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा।

अति–पिछड़े और दलित एक छोटी संख्या वाली जातियाँ हैं और इनका ठिकाना गाँव शहर में जहाँ–तहाँ फैला हुआ है, और इनकी इस अवस्था के कारण लोकतांत्रिक राजनीति में या चुनावों में इनका कोई खास योगदान नहीं रहता। ये ज्यादा समय अपनी जीविकोपाजर्न की समस्याओं को सुलझाने में लगे होने के कारण ज्यादा समय राजनीतिक चुनावों को नहीं दे पाते। शिक्षा के अभाव के कारण भी इनमे ं कोई बड़ा राजनीतिक नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता।

वर्तमान में धीरे–धीरे सरकारी योजनाओं के लाभ लेते हुए अब इनमें चेतना जागृत हो रही है, इनका रूझान अब शिक्षा तथा विकास की ओर अगस्रर हो रहा है, जिससे राजनीति में भी इनकी भागीदारी बढ़ रही है। ये धीरे–धीरे संगठित होकर एक बड़े वोट बैंक मे ं तब्दील हो रही है।

समय के साथ–साथ अब पिछड़ी जातियों को विधानसभा चुनाव में टिकट भी दिये जा रहे हैं, यहाँ तक की वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी वैश्य समुदाय से आते हैं। इसके अलावा सुशील मोदी जो बिहार सें हैं भी वैश्य समुदाय से हैं इसके साथ–साथ उपेन्द्र कुशवाहा भी अति पिछड़ी जाति से आते हैं, वर्तमान जनतांत्रिक राजनीति मे विद्यमान हैं।

निष्कर्ष :– अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज जातिगत भेद–भाव से इस कदर भरा पड़ा है, जो भयानक बीमारियों की तरह हमारे समाज को जकड़े हुए है। इसका निदान खोज पाना कठिन मालुम पड़ता है। यह केवल व्यक्ति–व्यक्ति के बीच खाई पैदा नहीं कर रही, बल्कि राष्ट्रीय एकता के मार्ग में भी बाधा पहुंचाने का कार्य कर रही है। श्रीनिवास का मत है कि ”परंपरावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है, कि ये राजनीतिक संस्थाएँ अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं है।” अतः जातिवाद देश समाज और राजनीति के लिए बाधक सिद्ध प्रतीत होती है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय राजनीति में जाति व्यवस्था इस प्रकार की स्थितियों का निर्धारण कर रही है और गरीब हमेशा दलित अशिक्षित सामंतवादी उपनिवेश बने रहे। जात–पात बहुल हमारे इस समाज से यह अपेक्षा भी कैसे की जा सकती है, कि समाज में व्याप्त यह भयंकर बीमारी अचानक से चमत्कारिक ढंग से ठीक हो जाय। इस सच्चाई को कोई कितना भी नकारे लेकिन आज भी भारतीय जनतंत्र की राजनीति के केन्द्र में नागरिक न होकर जाति ही है। देश के स्वतंत्र होने के बावजूद भी समाज से यह बीमारी दूर नहीं हो सकी है। भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को तो गैरकानूनी घोषित कर दिया, लेकिन अभी भी अस्पृश्यता समाज से मिटी नहीं। इसके फलस्वरूप आज भी समाज का काफी बड़ा हिस्सा मानवाधिकारों से वंचित है।

संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में यह संभावना व्यक्त की गई है कि स्वतंत्र भारत में जाति धार्मिक संप्रदाय की तरह शास्वतता प्राप्त करेगी। डॉ0 धुर्ये ने स्पष्ट किया है कि जाति की भावना राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रतिकूल है। न्यायमूर्ति ‘एस0 बी0 वाड’ ने अपनी पुस्तक में इंगित किया है कि जाति–विहिन समाज की स्थापना

संविधान में सकारात्मक रूप में घोषित उद्देश्य में नहीं रखा गया है। उन्होनें विचार व्यक्त किया है, कि जिस प्रकार अनक्ु 17 में अस्पृश्यकता का उन्मूलन किया गया है और 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा संपति के मूल अधिकार को समाप्त किया गया है, उसी प्रकार जाति व्यवस्था को भी उन्मूलित कर दिया जाना चाहिए था। परंतु ऐसा नहीं किया गया। यदि ऐसा किया गया होता, तो अनुच्छेद 32 जाति व्यवस्था उन्मूलन संबंधी अधिकार के विरुद्ध प्राप्त होता।

लोकतंत्र व्यक्ति को इकाई मानता है, न कि किसी जाति या समूह को। जाति और समूह के आतंक से मुक्त रखना ही लोकतत्रं का आग्रह है। लोकसभा तथा विधानमंडलों के लिए जातिगत आधार पर आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों तथा पदोन्नतियों के लिए भी जातिगत आरक्षण को अपनाया गया है। हरिजनों और अनसुचित जातियों को प्रत्येक स्थान पर यहाँ तक की मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्त्तियों के लिए भी आरक्षण दिया गया है। यह कहाँ तक उपयुक्त है। आरक्षण व्यवस्था को समाप्त कर इसका आधार सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बनाया जाय। जाति प्रथा भारत में ही नहीं अपितु विश्व के प्रत्येक दशे में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। पिछड़ी जातियाँ संविधान में दी गई आरक्षण की व्यवस्था को बढ़ाने हेतु सरकार पर दबाव डालती है।

स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था में निश्चित तौर पर अनके परिवर्तन परिलक्षित हुए है, परंतु इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति की वंशानुगत सदस्यता स्तरण तथा इसके सजातीय विवाह संबंधी पक्षों में कोई विशेष परिवतर्न नहीं हुआ है। भारतीय जातीय व्यवस्था आधुनिक परिवर्तनों के साथ अभी भी अपनी निरंतरता बनाए हुए है। तमाम परिवर्तनों के बावजूद समकालीन भारत में जाति–व्यवस्था अपने अनकुलन की अदभ्ुत क्षमता एवं लोकशाही में संख्याबल की महत्ता के कारण अपनी निरंतरता को बनाए हुए हैं। आज भी भारत के ग्रमीण समाजों में व्यक्ति की पहचान उनकी जाति से होती है। आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की होड़ में विभिन्न जातियाँ एकता की जगह प्रतिस्पर्द्धात्मक एकता का विकास हुआ है। शहरों में भी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद एक प्रमखु क्रियाविधि के रूप में क्रियाशील है। हमारे देश के बुद्धिजीवी और राजनीतिक नेता इस संदर्भ में ईमानदारी के साथ सोचे और इस समस्या एवं इससे उत्पन्न अन्य समस्याओं का समाधान करने हेतु गंभीरतापूर्वक प्रयास करें।

संदर्भ :–

- अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ, पृष्ठ 726
- भारत का संविधान, भारत सरकार, 1991,
- श्रीनिवासन, एम0एन0,आधुनिक भारत मे ं जाति,
- श्राजकिशोर, जाति का जहर,

उद्भट कृत नाट्यशास्त्र की टीका

डॉ. आनन्द कुमार दीक्षित
प्राचार्य, विवेकानन्द इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट एण्ड टेक्नोलॉजी, इटावा

संक्षेपिका :— नाट्यशास्त्र आचार्य भरत की नाट्य संदर्भित आद्या कृति है। इस अप्रतिम ग्रन्थ में सहृदय सामाजिक को आह्लादित करने वाले रस तत्त्व के सूत्र ''विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगात् रस निष्पत्तिः'' के माध्यम से आचार्य प्रवर ने न केवल विभावो, अनुभावो, व्यभिचारि भावो अपितु स्थायी भावो पर भी प्रकाश डाला है। उपमा, रूपक, दीपक और यमक अलंकारो के साथ छत्तीस लक्षणों की भी चर्चा की है जो कालान्तर में अलंकारों में परिणत हो गये। नाट्यशास्त्र के प्रमुख टीकाकारो में भट्टलोल्लट, शंकुक, भटनायक और आचार्य अभिनवगुप्त विश्रुत हैं। किन्तु अनेको काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में निहित अन्र्तसाक्ष्यों से प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या आचार्य भट्टोदभट ने भी नाट्यशास्त्र की टीका लिखी थी? इस जिज्ञासा के सामाधान में प्रस्तुत शोध पत्र आचार्य उद्भट को भी नाट्यशास्त्र की टीकाकार सिद्ध करता हैं।

की—वर्ड :— नाट्यशास्त्र, आचार्यभरत, समवकार रस, अलंकार, लक्षण, अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, उद्भट, दशरूपक, धनन्जय, पंचसन्धि।

'शाङ्गर्भदेव' ने 'संगीतरत्नाकर' में आचार्य 'उद्भट' का नाम नाट्यशास्त्र के टीकाकारों में गिनाया है।[1] यद्यपि अभी तक उद्भट कृत टीका अपने मूल कलेवर में प्राप्त तो नहीं हो सकी है किन्तु आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की स्वरचित टीका में उल्लेख करते हुए लिखा है—

अनेन श्लोकेन कोहलादिमतेनेकादशांगत्वं उच्यते,
न तु भरते,
तत्संग्रहीतस्यापि पुनरत्रोद्देशात् निर्देशे चैतत्
क्रमव्यत्यासनादित्युद्भटः नेति
भट्टलोल्लटः — वयं त्वत्र तत्त्वं अग्रे वितनिष्याम
इत्यास्तां तावत्।[2]

अर्थात् इससे स्पष्ट है कि भरत के नाट्यशास्त्र के एक अन्य टीकाकार लोल्लट ने भी पाठ की व्याख्या से सम्बन्धित उद्भट के कुछ विचारों को मान्यता नहीं दी है।[3]

आचार्य अभिनव गुप्त ने अभिनवभारती के माध्यम से नाट्यशास्त्र (9/182 भाग—2 पृ.—70) के इस श्लोक का भिन्न रूप से पाठ प्रस्तुत किया है।

उत्तानोधस्त लस्त्र्यश्रोग्रगोधोमुख एव च।
पंच प्रचारा हस्तस्येति भट्टोद्भटः पठति',

तथा 28/76 (भाग 2 पृष्ठ—441) पर टीका करते हुए आचार्य अभिनव ने आचार्य उद्भट से भिन्न पाठ प्रस्तुत किया है।

दशरूपकों में रूपक के एक भेद 'समवकार' हेतु नाट्यशास्त्र (18/76) में निम्न पाठ है—

'उष्णिग्गायत्र्याद्यान्यन्यानि च बन्ध कुटिलानि।
वृत्तानिसमवकारे कविभिस्तानि प्रयोज्यानि।।,

यहां 'तानि प्रयोज्यानि' के स्थान पर 'नैव प्रयोज्यानि' पाठ आचार्य उद्भट द्वारा समादृत है ऐसा अभिनव भारती कार का मत है किन्तु उन्होंने उद्भट के समान ही पाठ मानकर टीका की है।[4] नाट्यशास्त्र पर आचार्य उद्भट की टीका के प्रश्न पर कुछ विद्वान काव्यालङ्कारसारसंग्रहकार उद्भट से भिन्न किसी दूसरे उद्भट को उसका टीकाकार मानते हैं तथा अपने इस विचार के समर्थन में उनका तर्क है कि आचार्य उद्भट एक अलंकारवादी आचार्य हैं, वे शब्दार्थ धर्म को ही मान्यता प्रदान करते हैं और 'रस' रूपी तत्त्व को रसवद्—अलङ्कार में रखकर उसे गौण स्थान प्रदान करते हैं साथ ही अलङ्कारवादी आचार्य भामह के अनुयायी भी हैं तो क्या उपरोक्त मान्यताओं वाले आचार्य उद्भट रसोद्रेक आप्लावित अंतसवाले कवि के हृदय से निकले रस तत्त्व से जीवलोक को आनन्दमग्न कर देने वाले वाङ्मय को काव्य मानने वाले आचार्य भरत के ग्रंथ की टीका कर सकते हैं ?...............किन्तु अपने ही तर्कों को शिथिल बनाते हुए उन्ही विद्वज्जनों का कहना है कि संभव है कि भामह आदि ने भी श्रव्यकाव्य को ही अलङ्कार प्रधान मानकर वहाँ रस की अलङ्कारता संभव कही हो और दृश्य काव्य में रस की प्रधानता मानी हो तथा रस की स्थिति की दोनो जगह एकरूपता न मानी हो। अस्तु वही आलङ्कारिक मान्यतावादी आचार्य उद्भट जब रसवत् अलङ्कार के वर्णन में 'नव नाट्ये रसास्मृताः' कहते हैं तो उन्हे दृश्य काव्य की रसप्रधानता ईप्सित है ऐसा प्रतीत होता है।[5] इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि यही आचार्य उद्भट नाट्यशास्त्र के टीकाकार हो भी सकते है।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने डॉ. गणेश त्रयम्बकदेशपाडें के ग्रंथ 'भारतीय साहित्यशास्त्र' का सन्दर्भ देते हुए लिखा है कि डॉ. देशपांडे ने उपरोक्त

ग्रन्थ में डॉ. शंकरन, श्रीरामस्वामी, डॉ. सुनील कुमार डे, म.म. पी.वी.काणे, के मतों का खण्डन करते हुए यह स्थापना की है कि आरंभ में काव्य चर्चा, नाट्यचर्चा से ही निकली और कालक्रमेण पृथक हुई।[6] भामह दण्डी उद्भट आदि भरत के विरोध के किसी अन्य सम्प्रदाय के अविष्कारक नहीं थे और न दृश्यकाव्य में रस की प्रधानता के विरोधी ही अपितु भामह दण्डी आदि तो श्रव्य काव्य पर शोधरत थे दश्यकाव्य पर तो आचार्य भरत आदि ने विस्तार पूर्वक विचार कर ही लिया था। इस प्रकार भामह, दण्डी आदि के द्वारा सहजतया जो विचार विकासमान थे आचार्य उद्भट उसी धारा के उन्नायक हैं इस प्रकार उन्हें आचार्य भरत का विरोधी कहकर उनके नाट्यशास्त्र के टीकाकार होने का विरोध करना उचित नहीं प्रतीत होता।

आचार्य कुंतक ने रसवदलंकार निरूपण के अवसर पर आचार्य उद्भट कृत रसवत् अलङ्कार की परिभाषा–

'रसवद्दर्षितस्पष्ट श्रंगारादि रसादयम्' की आलोचना की है आचार्य कुंतक के अनुसार–

''यद्यपि रसवद्रससंश्रयात इति कैश्चिल्लक्षणमकारि तदपि न सम्यक् समाधेयतामधितिष्ठति तथाहि रसः संश्रयो यस्यासौ रसः संश्रयः तस्मात् कारणादयं रसवदलङ्कारः सम्पद्यते। तथापि वक्तव्यमेव कोऽसौ रस व्यतिरेकवृत्तिरन्यः पदार्थः। काव्यमेवेति चेत्तदपि पूर्वमेव प्रयुक्तम्। तस्यस्वात्मेति क्रिया विरोधादलंकारत्वानुपपत्तेः.. रसपेशलमितिपाठे न किंचिदत्रतिरिच्यते।''[7]

तथा म.म. काणे महोदय का मानना है कि आचार्य कुंतक ने भामह द्वारा प्रस्तुत दीपक अलङ्कार की तीन व्याख्याओं को दोशयुक्त माना है। भामह के उदाहरण का निरूपण कर कुन्तक ने उद्भट निरूपित 'अन्तर्गतोपमाधर्माः' इन शब्दों का उसमें अन्तर्भाव करना उपयुक्त माना है। कुन्तक ने उद्भट को 'अभियुक्ततरैः' अर्थात् अत्यन्त विद्वान इस विशेषण से सम्बोधित किया है।[8] इससे भी आचार्य उद्भट की व्याख्यातृता सिद्ध होती है। भारती सात्वती, कैशिकी तथा आरभटी वृत्तियों के वर्णन प्रसंग में आचार्य उद्भट ने आचार्य भरत के विचारों की सम्यग् आलोचना प्रस्तुत की है। उत्सृष्टिकांक संज्ञक नाट्यभेद की परिभाषा में नाट्यशास्त्र में दिया है[9] कि यह (उत्सृष्टिकांक) स्त्री के रूदन से पूर्ण होता है तथा भारती वृत्ति के अतिरिक्त अन्य किसी वृत्ति का अस्तित्व नहीं रहता है। परन्तु करूण रस के अभिनयार्थ, जहाँ मूर्च्छा या मृत्यु का प्रदर्शन हो वहाँ वाणी और भारती वृत्ति प्रयुक्त नहीं होती। नाट्यशास्त्र (22–25) में यह वर्णन वाक्प्रधाना आदि के रूप में आया है[10] किन्तु गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज संस्करण में यह प्रकरण (20.26) पर प्रस्तुत है। उपर्युक्त कारणों से आचार्य उद्भट ने वृत्ति चतुष्टय अर्थात् भारती, सात्वती, कौशिकी तथा आरभटी नामक चार वृत्तियों को न मानकर मात्र तीन वृत्तियों–

1. न्याय चेष्टा वृत्ति।
2. अन्याय चेष्टावृत्ति।
3. फलसंवित्तिवृत्ति (मूर्च्छा या मृत्यु हेतु) अथवा फल वृत्ति।

आचार्य अभिनव गुप्त ने आचार्य उद्भट के एक श्लोक का सन्दर्भ निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि–

तस्मात्फलसंविच्याख्या वृत्तिः वाक्चेष्टयोः फलानुभव इति यस्या लक्षणम्

साभ्युपगन्तव्या अवश्यं चैतत् अन्यथा मूर्च्छामरणादौ वाक्चेष्टयोरभावेनिवृत्तिकतैवस्यात्।...... तस्मात् चेष्टात्मिका न्यायवृत्तिरन्यायवृत्तिर्वाग्रूपा तत्फलभूता फलसंवित्तिरिति त्रयमेव युक्तमिति भट्टोद्भटो मन्यते।[11]

आचार्य अभिनव गुप्त का कथन है कि शकलीगर्भ नामक किसी आचार्य के मत के अनुयायी पॉच प्रकार की वृत्तियॉ 1– भारती 2– सात्वती 3–कैशिकी 4– आरभटी तथा 5– आत्मसंवृत्ति (उद्भट कृत फलवृत्ति)
मानते हैं जो अभिनव भारती के निम्नलिखित उद्धरण से स्वतः स्पष्ट है–

''यच्छकली गर्भमतानुसारिणो मूर्छादावात्मसंवित्ति लक्षणंपच्चमी वृत्ति। सकल कार्य निर्वृत्यनुमेयां............................आत्मव्यापार रूपां मन्यन्ते . ...तन्मतं भावानां बाह्य ग्रहण स्वभावत्वमुपयादयद्भिः भट्टलोल्लट प्रभृतिभिः पराकृतम्।[12]

यद्यपि प्रस्तुत संस्करण के सम्पाइक ने 'शकलीगर्भ' नाम उद्भट का ही माना है किन्तु डॉ. पी. वी. काणे इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते हैं।[13]
डॉ. काणे महोदय इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं।

1. अभिनव भारती में लगभग आधा दर्जन बार 'उदभट्' का नाम आया है और यहॉ कहीं भी यह उल्लेख नहीं, है कि एक ही व्यक्ति 'उद्भट' का दूसरा अन्यनाम शकलीगर्भ क्यों प्रस्तुत किया गया?
2. वृत्ति के सम्बन्ध में शकलीगर्भ का मत उद्भट के मत से भिन्न है इसका उल्लेख भी अभिनव भारती में दृष्टव्य है।

आचार्य लोल्लट ने आचार्य उद्भट तथा 'शकलीगर्भ' की प्रस्तुत वृत्ति विषयक मतों का खण्डन किया है[14] तथा आचार्य 'अभिनवगुप्त' भरत सम्मत वृत्ति चतुष्टय को ही मान्यता प्रदान करते हैं।[15]

दशरूपक में धनंजय ने वृत्तियों के प्रसङ्ग में उद्भट के अनुयायियों के मत का निराकरण करते हुए उनकी पॉचवी वृत्ति को न मानकर चार ही वृत्तियों को मानते हुए कहा है–[16]

नार्थवृत्तिरतः परा।
चतुर्थी भारती सापि वाच्यानाटक लक्षणे।।60।।
कैशिकी सात्वतीं चार्थवृत्तिमारभटीमिति।
पठन्तः पंचमीं वृत्तिमौद्भटाः प्रतिजानते।।61।।

अर्थात् उद्भट के अनुयायी भारती वृत्ति के साथ कैशिकी, सात्वती अर्थवृत्ति तथा आरभटी इनका निर्देश करते हुए पॉचवीं (अर्थवृत्ति नामक) वृत्ति को स्वीकार करते हैं परन्तु इन (कैशिकी, सात्वती तथा आरभटी) से भिन्न कोई अर्थवृत्ति नामक वृत्ति नहीं हैं।

1. संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास भाग–1 पृ. –34–सुशील कुमार डे–अनु. मायाराम शर्मा–बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
2. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–पृ.–60 पी.वी. काणे, इन्द्रचन्द्रशास्त्री–मोतीलाल बनारसीदास–1994
3. दशरूपक–धनन्जय–2/60–61– श्रीनिवास शास्त्री सम्पादित–साहित्यभण्डार–1987 पृ.–197

इसी प्रकार श्रंगारप्रकाश में भोज ने भी औद्भट मत को ही ध्यान में रखकर दशरूपक के समान पंचवृत्तियों का उल्लेख करते हुए पंचम वृत्ति के रूप में 'मिश्र' नामक अर्थवृत्ति को माना है।[17] उनके अनुसार–

यत्रारभट्यादिगुणास्समस्ताः मिश्रत्वमाश्रित्यमिथः प्रथन्ते।
मिश्रेति तां वृत्तिमुशन्ति धीराः
साधारणीमर्थचतुष्टयस्य।।

मुखदिसंधिशु (च) व्यप्रियमाणानां (नाय) कोपनायकादीनां मनो वाक्काय–कर्मनिबन्धनाः पंचवृत्तयः भवन्ति भारती आरभटी कैशिकी सात्वती विमिश्रा चेति।

शारदातनय ने अपने भावप्रकाशन नामक ग्रंथ में भोज एवं धनन्जय के मत को प्रकट करते हुए कहा है कि कुछ लेखक उद्भट की अर्थवृत्ति को स्वीकार न कर उसके स्थान पर मिश्र नामक पॉचवी वृत्ति मानते है।[18] किन्तु डॉ. वी. राघवन धनन्जय तथा शारदातनय के इस कथन को कि औद्भट अर्थवृत्ति नामक पॉचवीं वृत्ति को मानते है' अशुद्ध मानते है और भोज सम्मत पॉचवी विमिश्रा वृत्ति को न तो नवीन मानते हैं और न अतिरिक्त अपितु शेष चारो वृत्तियों का सम्मिश्रण मानते हैं।[19]

आचार्य अभिनवगुप्त ने पंचसन्धियों में से चतुर्थ 'अवमर्ष' नामक सन्धि (नाट्यशास्त्र 21/42) के आचार्य उद्भट के प्रतिपादन का निम्नलिखित रूप से खण्डन किया है।

यदाह भट्टोद्भटः। नासान्वेषणं
भूमिरवमृष्टिरवमर्ष इति
तच्वेदं व्याखानं लक्ष्य विरूद्धं युक्तया च।[20]

आचार्य उद्भट द्वारा नाट्यशास्त्र (21/17) की व्याख्या के रूप में पंच सन्धियों तथा सन्ध्यङ्गों को आचार्य भरत के अनुसार करने का निर्देश स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है किन्तु–

''पुनरेष्शामिति पुनः शब्दो विशेषद्योतको लक्षण
एवायं क्रमो न निबन्धने इति यावत्।
तेन यदुद्भट प्रभृतयो अङ्गानां सन्धौ क्रमे च
नियममाहुस्तद्युक्त्यागमविरूद्धमेव,''[21]

लिखकर आचार्य अभिनव गुप्त ने उद्भट के उपरोक्त मत का खण्डन किया है और कहा है कि यह न तो तर्क संगत है न कवि परम्परानुकूल ही है।

उपर्युक्त विवरणों को देखते हुए डॉ. पी.वी. काणे महोदय का मानना है कि अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र के 6, 9 तथा 19वें अध्यायों पर उद्भट की टीका का उल्लेख किया है जिससे प्रतीत होता है कि आचार्य उद्भट ने सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र पर टीका लिखी होगी।[22]

डॉ. सुशील कुमार डे महोदय का मानना है कि नाट्यशास्त्र के अनेक अध्यायों यथा अध्याय 6, 9, 18 और 21 आदि में दिये विषयों पर आचार्य उद्भट के विचारों का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलने से यही संभव होता है कि उन्होंने सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र पर टीका लिखी थी। किन्तु शकलीगर्भ के विशय में ऐसा अनुमान उचित प्रतीत नहीं होता अपितु वे संभवतः उद्भट और लोल्लट के मध्यवर्ती काल में हुए थे और उन्होंने नाट्य विद्या के कुछ प्रकरणों पर लिखा होगा, किन्तु भरत पर उन्होंने कोई टीका लिखी या नहीं यह स्पष्ट नहीं होता है।[23]

इस प्रकार नाट्यशास्त्र की टीकाओं अभिनवभारती तथा भट्टलोल्लट की टीका से प्राप्त विवरणों द्वारा स्वतः सिद्ध होता है कि डॉ. पी.वी. काणे, और डॉ. सुशील कुमार डे, अभिनव गुप्त और भट्टलोल्लट द्वारा पर्याप्त तथ्यों और तर्को द्वारा समादृत आचार्य उद्भट ने नाट्य शास्त्र की टीका की रचना की है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशंकुकाः। भट्टाभिनवगुप्ता" च श्रीमत्कीर्तिधरोऽपरः 1–संगीत रत्नाकर–1/19
2. अभिनव भारती–अध्याय–6 श्लोक 10, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज संस्करण
3. अभिनव भारती–पृ.–266 भाग–1–गा. ओ.सी.सं.
4. नैव प्रयोज्यानीत्युद्भटः पठति स्रग्धरादीन्येव प्रयोज्यानि नाल्पाक्षराणीति व्याचष्टे। अभिनव भारती पृ.441 भाग–2।
5. रसवद्दर्शित स्पष्ट श्रंगारदिरसादयम्। स्वशब्दस्थायि संचारि विभावाभिनयास्पदम्।।44।।
   श्रृंगार हास्य करूण रौद्रवीर भयानकाः। वीभत्साद्भुतशान्ता" च नव नाट्ये रसाः स्मृताः।।45।।
   काव्यालङ्कारसारसंङग्रह–उद्भट–चतुर्थवर्ग (रसवदालङ्कार निरूपण)
6. काव्यालङ्कारसारसंङग्रह और लघुवृत्ति की व्याख्या–डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी हिन्दी साहित्य सम्मेलन–1968 भूमिका पृ.–3
7. वक्रोक्ति जीवितम्–कुन्तक–तृतीय उन्मेश
8. संस्कृत काव्यशास्त का इति.–पी.वी.काणे–अनु. इंद्रचन्द्रशास्त्री–मोती लाल बनारसी दास–1994 पृ.–290
9. नाट्यशास्त्र–अध्याय–20 (66–100) चौखम्बा संस्करण्।
10. नाट्यशास्त्र–अध्याय–22–(25) वही।
11. अभिनव भारती–भाग–2–पृ.–451, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज संस्करण।
12. अभिनव भारती–पृ.–452– तदेव
13. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–पी.वी. काणे अनुवादक इन्द्रचन्द्र शास्त्री–पृ.–59–मोतीलाल बनारसीदास–1994
14. संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास भाग–1 पृ.–34–सुशील कुमार डे–अनु. मायाराम शर्मा–बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
15. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–पृ.–60 पी.वी. काणे, इन्द्रचन्द्रशास्त्री–मोतीलाल बनारसीदास–1994
16. दशरूपक–धनन्जय–2/60–61– श्रीनिवास शास्त्री सम्पादित–साहित्यभण्डार–1987 पृ.–197
17. श्रृंगार प्रकाश–भोज–द्वादश प्रकाश
18. भारती सात्वती चैव कैशिक्यारभटीति च। औद्भटाः पंचमीमर्थवृत्तिं च प्रति जानीते।। अर्थवृत्तेरभावात्तु वि (मि) श्रां तां पंचमीपरे 1–भावप्रकाशन–शारदातनय
19. श्रृंगार प्रकाश का समीक्षात्मक अध्ययन–बी. राघवन–अनु.प्रभुदयाल अग्निहोत्री– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी–1963 पृ.–220
20. अभिनवभारती भाग–3, अध्याय–19 पृ.–28, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज संस्करण।
21. अभिनवभारती भाग–3, अध्याय–19 पृ.–36–गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरिज संस्करण।
22. संस्कृत काव्यशास्त्र का इति.–पी.वी.काणे, अनु. इद्रचंद्र शास्त्री–मोतीलाल बनारसीदास–1994, पृ.–60
23. संस्कृत काव्य" शास्त्र का इतिहास–सुशील कुमार डे–अनु. मायारामशर्मा–पृ.–34–बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी–1973

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य की चुनौतियाँ

डॉ. शारदा कुमारी
+2 शिक्षिका, वि. +2 उ. वि. मऊ, बाजिदपुर, दक्षिण

'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' इस पंक्ति का उच्चारण करते ही हर भारतवासी के तन–मन में वीरता की लहर दौड़ उठती है, सुभद्रा जी की ये कविताएँ प्रेम एवं देशभक्ति से सम्बन्धित हैं, जो लोगों के हृदय को आवेग एवं आह्लाद से सराबोर कर देती है। ऐसी महान राष्ट्रीय काव्यधारा की कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान का साहित्य समाज में चुनौतियों से भरा हुआ है। चूँकि साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्यकारों की उत्पत्ति और निर्माण समाज से ही होता है। समाज में घटित हो रही घटनाओं को एक साहित्यकार ही हु–बहू चित्रित करता हैं हिंदी जगत में कितने ही साहित्यकार अपनी 'कलम के सिपाही' बनकर सेवारत रहे हैं। साहित्य के माध्यम से समाज में उठने वाले प्रश्नों को वाणी प्रदान करते हैं।

सुभद्रा जी के साहित्य में समसामियक देश प्रेम भारतीय इतिहास बोध एवं तत्कालीन संस्कृति की गहरी छाप है, जो वर्तमान साहित्य में न के बराबर दिखाई पड़ता है और साहित्य समाज को चुनौती देता है। क्योंकि आज का साहित्य प्रेम की कविताओं और राजनीति के चंगुल में इस कदर फँस चुका है कि यहाँ इसी स्वार्थपूर्ण रचनाकर्म में साहित्यकारों की लेखनी भी फँस चुकी है।

अतः इस समय सुभद्रा जी का साहित्य रचनाकारों के लिए चुनौती लिए हुए है। सुभद्रा जी की रचनाएँ हमें उस परिस्थिति का आईना दिखाती हैं, जब हमारा देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, लेकिन कलम की ताकत फिर भी साहित्यकार संभालकर रखे थे, क्योंकि उनमें राष्ट्रीयता की भावना थी। सुभद्रा जी की रचनाओं में दो प्रवृत्तियाँ बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं– पहली राष्ट्रीय भावना और दूसरी हिंदुस्तान के नवजागरण के रूप में जन साधारण के आम जीवन का चित्रण। उन्होंने अपनी राष्ट्रपरक रचनाओं में जिस प्रतिभा के साथ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय भावनाओं को समसामयिक जीवन के तात्कालिक संदर्भों से जोड़ा, यह आज हमारे लिए चुनौती पूर्ण है। आज हम राजनीति की छलनाओं के अधीन होकर जी रहे हैं। इन राजनीतिक छलनाओं ने जातीय स्मृतियों को मिटाने का अभियान चला रखा है। ''साहित्य जीवन को 'जानने' का तर्क प्रस्तुत करता है और तर्क सांस्कृतिक अस्मिता के स्तर पर भीतर–बाहर झाँकने का एक कीमती मौका प्रदान करता है।''[1] हमें भूलना नहीं चाहिए कि हिंदी प्रदेशों के नवजागरण और सुधार युग को सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने रचना कर्म से जन–मन तक पहुँचाने का काम निर्भयता से किया है।

बुंदेलखंड में लोक शैली के छंद को लेकर उसी में 'झाँसी की रानी' जैसी रचना प्रस्तुत करना उनकी प्रतिभा, देशक्ति और गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय देता है। यही कारण था कि राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में 'झाँसी की रानी' को अँगरेज सरकार ने जब्त कर लिया था, फिर भी वह हिंदी भाषा–भाषी जनता के लोककंठ में समादृत था–

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सब ने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सब ने मन ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में
वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेले हर बोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।।[2]

'झाँसी की रानी' कविता की इस पंक्तियों ने देश में राष्ट्रीयता की अलख जगाई थी और भारतीय जनमानस को एक नई दिशा प्रदान की।

इस प्रकार हम यह जान सकते हैं कि सुभद्रा जी के रचना कर्म में स्वाधीनता संघर्ष के दिनों की वह प्रेरणा व्याप्त है और इस प्रेरणा में एक मादक सुगंध भी है जो स्वाधीनता संघर्ष के दिनों के प्रति चौकन्ना और दृष्टि सम्पन्न बनाती है। यह रचना कर्म निर्जीव चमत्कारवादी तरीके से पैदा नहीं हुआ है, अपितु इसमें आजादी के लिये किये गए संघर्ष का वह मैदान है जो सर्वजनशीलता के सब जोखिमों और खतरों का सामना करते हुए सृजनशील हो जाता है। आजादी के आस–पास पैदा हुई एक पीढ़ी जो अपने सपनों के

मुरझाते दिनों के साथ बूढ़ी हो रही है– उसे सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं एवं कहानियों की स्मृति आज भी तरोताजा किये हुए हैं। वे अभी भी 'झाँसी की रानी' 'वीरों का कैसा हो बसंत' जैसी अमर कविताओं के साथ अंतरंग संवाद स्थापित किये हुए हैं। सुभद्रा जी की कविताओं–कहानियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की पीढ़ी की कच्ची उम्र की मिट्टी पर एक ऐसी अनुपम प्रतिमा गढ़ी कि उस प्रतिमा का सौन्दर्य वर्णन कर पाना कठिन है। हम लोगों ने 'झाँसी की रानी' कविता का गहनार्थक स्वाद तो तब नहीं पाया लेकिन अपने शोधकार्य के दिनों में इस कविता में पाया कि इस कविता का अर्थ संश्लिष्ट और समाज–समय के बहुमुखी यथार्थ से निर्मित हुआ हैं– इतना ठोस यथार्थ जैसा हीरे का क्रिस्टल हो। पूरी कविता मुर्दा मर्यादाओं वाली नैतिकता को चुनौती देती है और नारी के भीतर छिपी 'दुर्गा शक्ति' से साक्षात्कार कराती है।

वर्तमान समय में सुभद्रा जी का साहित्य हमारे बदलते सामाजिक मूल्यों के लिए भी एक चुनौती है। क्योंकि परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है। सामाजिक स्थिति बहुत तेजी से बदल रही है। ऐसे में मनुष्य एक झंझावात में फंसा हुआ है। बाह्य रूपों से चारों ओर भौतिक एवं आर्थिक प्रगति दिखाई पड़ती है। सुख–सुविधा के अनेकानेक साधनों का अंबार लगता जा रहा है। दिन प्रतिदिन नए–नए अविष्कार हो रहे हैं। पर आन्तरिक दृष्टि से मनुष्य टूट रहा है। उसका संसार के प्रति विश्वास, समाज के प्रति सद्भाव और जीवन प्रति उल्लास धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है।

सुभद्रा जी ने अपनी कहानी के संदर्भ में कहा है कि ''रूढ़ियों और सामाजिक बन्धनों की शिलाओं पर अनेक निरपराध आत्मायें प्रतिदिन ही चूर–चूर हो रही है। उनके हृदय बिन्दु जहाँ मोतियों के समान बिखरे पड़े हैं। मैंने तो उन्हें केवल बटोरने का प्रयत्न किया है। मेरे इस प्रयत्न में कला का लोभ है और अन्याय के प्रति लोभ भी। सभी मानवों के हृदय एक से है। वे पीड़ा से दूषित अत्याचार से रुष्ट और करुणा से द्रवित होते हैं।''[3]

अब तो समाज में चारों ओर आपसी सौहार्द, समरसता एवं सात्विकता के स्थान पर कुटिलता, दुष्टता और स्वार्थ परता की दृष्टिगोचर होती है। समाज सेवा का क्षेत्र हो या धर्म– अध्यात्म अथवा राजनीति का, चारों ओर अवसरवादी, सत्तालोलुप, आसुरी प्रवृत्ति के लोग ही दिखाई देते हैं। शिक्षा एवं चिकित्सा के क्षेत्र, जहाँ कभी सेवा के उच्चतम आदर्शों का पालन होता था। आज सभी व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धा के केन्द्र बन गए हैं।

सुभद्रा जी का साहित्य हमारे युवा पीढ़ी के लिए भी एक बड़ी चुनौती है क्योंकि पहले युवा पीढ़ी को अपने आदर्श ढूढ़ने के लिए परिवार व समाज के अतिरिक्त पुस्तकों का भी सहारा रहता था, जो कि भारतीय संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर है। आज वेद, उपनिषद, पुराण आदि को पढ़ना या उन पर चर्चा करना तो दूर, उनका नाम लेना भी पिछड़ेपन की निशानी समझी जाती है। आदर्श व देशप्रेम साहित्य के प्रति अभिरूचि में भारी कमी आयी हैं। अश्लील एवं स्तरहीन साहित्य की भरमार है। उच्च स्तरीय साहित्यिक रचनाएँ पढ़ने की परम्परा लुप्त हो रही है। युवा वर्ग समझा ही नहीं पाता कि वह क्या पढ़े, और कैसे पढ़े? आज वह किसी सज्जन, वीर, महात्मा और महापुरूष को अपना आदर्श बनाने के स्थान पर टी.वी. और फिल्मों के पर्दे पर खोजता है। वहाँ उसे हिंसा, अश्लीलता आदि के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। भारत की बहुमूल्य सांस्कृतिक परम्पराओं की अवहेलना करता है। पाश्चात्य संस्कृति के जीवन मूल्य को अपनाती युवा पीढ़ी अपने देश की संस्कृति को देय दृष्टि से देखने लगी है। आज अपने युवा पीढ़ी को जगाने के लिए सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी एवं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि जैसे राष्ट्रीय–सांस्कृतिक धारा साहित्यकार एवं उनके साहित्य उन्हें परिचित कराना होगा। उनके भी मन में देश के प्रति प्रेम एवं समर्पण की भावना जगानी होगी, जो हमारी महान कवयित्री सुभद्रा के साहित्य में मिलती हैं।

सुभद्रा जी की कविता 'मातृ–मंदिर' में देशभक्ति के भाव से निम्नलिखित शब्दों के मोतियों में पिरोया है–

देव ! वे कुंजें उजड़ी पड़ी
और वह कोकिल उड़ ही गई।
हटाई हमने लाखों बार
किन्तु वे घड़ियाँ जुड़ ही गई।।[4]।।

तो दूसरी ओर दर्प की ध्वनि गूँजती है–

विजयिनी माँ के वीर सुपुत्र
पाप से असहयोग ले ठान।
गुँजा डालें स्वराज्य की तान
और सब हो जावें बलिदान।।[5]।।

राजनीतिज्ञों के दुष्चक्र ने तो युवा पीढ़ी को और अधिक उलझा दिया है। शिक्षा केन्द्र तो पूरी तरह से राजनैतिक द्वन्द्व का अखाड़ा बन गया है। इस युद्ध में युवावर्ग का प्रयोग कच्चे माल की तरह हो रहा है। उच्च आदर्शों एवं प्रेरणा स्त्रोतों के अभाव में वे नित नए कुचक्रों में उलझते जा रहे हैं। सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व बोध से कटे हुए ऐसे लोगों का जीवन मात्र स्वार्थपरता के संकुचित घेरे तक ही सीमित रह जाता है।

इतिहास साक्षी है कि संसार में जिनती भी महत्वपूर्ण क्रान्तियाँ हुई हैं, उनमें युवाओं की भूमिका सदैव ही अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय युवावस्था ही होता है। उत्साह एवं उमंग से भरपूर युवाओं में पहाड़ से टकराने की ललक होती है। कठिन से कठिन परिस्थितियों से भी जूझने का साहस होता है।

हिन्दी साहित्य की सुभद्रा कुमारी चौहान ऐसी साधिका हैं जिन्होंने किसी बंधन या वाद का डंका नहीं पीटा, न ही किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, बल्कि रूढ़ियों, प्रथाओं, बाल विवाह, विधवा स्त्रियों के साथ हो रहे अत्याचारों एवं सामाजिक बंधनों से स्वयं को ही मुक्त कर एक नई दिशा एवं सोच नारियों को देने की कोशिश की।

सुभद्रा जी के विषय में उनकी पुत्री सुधा चौहान ने लिखा है– ''शाम को खूब जोरों का खेल जमता था, कभी धमा–चौकड़ी होती तो कभी गम्भीर तरह के खेल होते, महिला समिति की सभा होती, लड़कियाँ स्त्री–सुधार पर पर्दे के विरोध और शिक्षा पर जोर–शोर से भाषण देतीं, आपस में ही सभापति बन जाती, कोई मंत्री कोई वक्ता।।''[6]

रानी लक्ष्मी बाई का व्यक्तित्व सुभद्रा जी के लिए प्रेरणा स्त्रोत था। इसी प्रेरणा के जरिये उन्होंने साहित्य और राजनीति को समरस बना दिया। उन्हें अपने देश, अपनी संस्कृति और गौरव से बहुत लगाव था। यह सब उनके कथा साहित्य का मर्म हैं। स्त्री–स्वातंत्र्य की भावना भी उनकी कहानियों में व्यक्त की गई है।

उनकी अधिकतर कहानियाँ नारी की पीड़ा की ही अभिव्यक्ति करती हैं। ''यदि अपने किसी आत्मीय के सच्चे और निःस्वार्थ प्रेम को समझने और उसके भूल करने को ही उन्माद कहते हैं, तो ईश्वर ऐसा उन्माद सभी को दे। क्या कहा वह मेरा कौन था? यह तो मैं नहीं कह सकती, पर कोई था अवश्य और ऐसा था, मेरे इतने निकट था कि आज वह समाधि में सोया है औ मैं बावली की तरह उसके आसपास फेरी देती हूँ।''[7]

निःसंदेह सुभद्रा कुमारी चौहान का हिंदी साहित्य में एक अमिट स्थान है। भले ही उन्होंने किसी वाद या आन्दोलन के तहत साहित्य–सृजन न किया हो फिर भी उनकी कहानियाँ नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं। हम सुभद्रा जी की कविता का आदर करते हैं। उसमें मादकता है, सौन्दर्य है और हृदय को वीरता से भर देने की मनोहर झाँकी भी है। सुभद्रा जी हिंदी–साहित्य की कोकिला हैं, जो भावना की ऊँची डाल पर बैठ कर गाती है। उस समय हृदय–मुकुल विकसित हो उठता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हिंदुस्तानी त्रैमासिक, भाग–65, अंक–4, अक्टूबर–दिसम्बर 2004 लेख– 'बुंदेले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी'– डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–80
2. 'मुकुल' कविता संग्रह– सुभद्रा कुमारी चौहान, पृष्ठ–47, पंचम संस्करण, सन् 1944
3. संदर्भ ग्रंथ– बिखरे मोती– पृष्ठ 15
4. 'मुकुल' कविता संग्रह की कविता मातृ–मंदिर, पृष्ठ– 83, संस्करण पंचम, सन्–1944
5. मुकुल' कविता संग्रह की कविता मातृ–मंदिर, पृष्ठ– 85, संस्करण पंचम, सन्–1944
6. सुधा चौहान– मिला तेज से तेज, हंस प्रकाशन, पृष्ठ–39
7. उन्मादिनी– सुभद्रा कुमारी चौहान, पृष्ठ–9

बिहार राज्य के मिट्टि की बनावट का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. समरजीत कुमार सिन्हा
भूगोल विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

मिट्टियां धरातल की उपरी असंगठित परत होती है। यह पैतृक चट्टानों के विघटन से प्राप्त होती है तथा सतह के पास ही भिन्न–भिन्न गहराईयों पर पाई जाती है। ये मृत पिण्ड नहीं होती बल्कि एक जटीली प्रयोगशाला होती है, जो सभी प्रकार के जीव–जन्तुओं का समर्थन करती है। मानवीय सभ्यता का इतिहास मिट्टि से ही आरंभ होता है। मिट्टियों का उपरी भाग मानव सभ्यताओं के लिए महत्वपूर्ण होती है। दरभंगा जिले की मिट्टि नेक नदियों द्वारा हिमालय पर्वत से लाई गई अवसादों द्वारा निर्मित है। हिमालय पर्वत की चट्टान जब अपक्षयीत हो जाती है तो बहते हुए जल उसे अपने साथ उतरी बिहार में पहुंचा देते हैं। नदियों द्वारा निक्षेपित पदाथों में स्थान–स्थान पर अंतर पाया जाता है कहीं मिट्टि के बालू का अंश अधिक होता है तो कहीं क्ले का, कहीं–कहीं बालू एवं क्ले समान मात्रा में भी पाई जाती है।

सामान्य तौर पर दरभंगा जिले की मिट्टियां खादर, भांगर, तराई तथा लेवी किस्म की है। खादर क्षेत्र जिले के दक्षिण भाग में निचले मैदान में मिलती है, जिसमें बालू एवं सिल्ट का मिश्रण पाया जाता है। स्थानीय लोगों द्वारा इसे बलसुदरी भी कहा जाता है। बालू की मात्रा कम होने के कारण सुप्रवाहित होती है और रब्बी एवं मूल जड़ वाले फसलों के लिए उपयोगी होती है। बिना सिंचाई के इन पर खेती संभव हो जाती है, क्योंकि इन्हें भौम जल से आर्द्रता प्राप्त हो जाती है। भांगर मिट्टि क्षेत्र के उतरी भाग में पाई जाती है यह पुराने निक्षेप द्वारा निर्मित होती है। यह सामान्य तौर पर क्षेत्र के ऊँचे भागों में मिलती है जहां बाढ़ नहीं पहूँच पाती। यह मिट्टि भारी होती है तथा इसमें क्ले की मात्रा अधिक पाई जाती है। भांगर मिट्टि में उतम प्रवाह नहीं मिलता और रबी मौसम में इसकी जुताई कठिन हो जाती है। इस मिट्टि में धान की उतम खेती होती है क्योंकि क्ले की परतें जल को नीचे की ओर रीसने नहीं देती। कम रिसाव के कारण मिट्टि में लिच्छालन भी नहीं होती। कहीं–कहीं सतह पर क्षारीय तत्वों का निक्षेपण हो जाता है, जो मिट्टि को अनुर्वर बना देता है। तराई मिट्टियां दरभंगा जिले के उतर भाग में 3 से 8 किलोमीटर की चौड़ाई में पाई जाती है। इसमें प्रवाह कम हो पाता है। उत्पाइकता की दृष्टि से यह सामान्य कोटि की मिट्टि है। इसका रंग भूरा होता है। लेवी मिट्टियां सबसे नूतन जलोढ़ होती है जिसमें चूना युक्त पदार्थ कम मिलती है, ये मिट्टियां मुख्य नदी के किनारे पाई जाती है। इसका रंग उजला से हल्का भूरा होता है।

भूआकृतिक स्वरूप भूसंरचना का प्रत्यक्ष कार्य है। साथ ही, भूसंरचनात्मक नियन्त्रण में विकसित, इसे धरातलीय अभिव्यक्ति माना जाता है। प्रदेश विशेष का भूआकृतिक स्वरूप धरातल के अच्चावचीय भिन्नताओं को भी परिलक्षित करता है। वास्तव में भूआकृतिक स्वरूप के गठन में भूगर्भिक संरचनाओं के नियन्त्रण के साथ–साथ भूआकृतिक मूलक भौतिक प्रकियाओं का संयुक्त रूप से योगदान रहता है। स्वभावतः किसी भी देश का भूआकृतिक स्वरूप धरातल में उच्चावचीय विभिन्नताओं एवं धरातल पर जल प्रवाह तन्त्र के क्षेत्रीय विन्यास का प्रदर्शन माना जा सकता है। प्रादेशिक उच्चावचीय विभिन्नताओं एवं धरातल पर जल प्रवाह तन्त्र के क्षेत्रीय विन्यास का प्रदर्शन माना जा सकता है। प्रादेशिक उच्चावचीय विभिन्नताएँ, मूलतः भूसंरचना के संदर्भ में, शैल प्रकृति (कड़ा या मुलायम) तथा शैल स्तर विन्यास का परिणाम होती है। भूआकृतिक स्वरूप से जुड़े परिणाम एवं परिमाप का नियामक, होती है। भूआकृतिक स्वरूप से जुड़े परिणाम एवं परिमाप का नियामक, प्रतयक्ष रूप से सर्वाधिक नदियों से सम्बन्धित जलीय प्रक्रियाएँ पायी गयी हैं। स्वभावतः दरभंगा के भूआकृतिक स्वरूप का परिज्ञान अनिवार्यत इसकी (i) धरातलाकृति तथा (ii) जलप्रवाह तन्त्र विन्यास की विवेचना से प्रेरित माना गया है, जिन्हें दो अध्यांशो में प्रस्तुत किया गया है।

1. **दरभंगा की धरातलाकृति** – दरभंगा की धरातलाकृति में स्पष्टतः लगभग एकरूपता की विशेषता अवलोकित होती है। भूसंरचनात्मक नियन्त्रण में तथा जलप्रवाह प्रणाली विन्यास के अनुरूप उच्चावचीय परिलक्षणें के परिप्रेक्ष्य में दरभंगा के भूआकृति स्वरूप या प्राकृतिक बनावट को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(अ) उतरी बिहार का प्राकृतिक स्वरूप–गंगा नदी से द्विभाजित उतरी बिहार दक्षिणी बिंहार के भूखण्ड उपप्रादेशिक परिप्रेक्ष्य में भूआकृतिक स्वरूप में भिन्नता व्यक्त करते हैं। उतरी बिहार भूभाग लगभग आयताकार

धरातलीय इकाई की पहचान प्राप्त करता है। इस धरातलीय खण्ड का भौतिक फैलाव बिहार राज्य के कुल क्षेत्रफल के लगभग 61.75 प्रतिशत के अनुपात में है। इस तरह, यह बिहार का वृहता भूआकृतिक स्वरूपीय खण्ड के रूप में वृहद बिहार मैदान का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी अवस्थिति परिस्थितिकी पहचान उतर में नेपाल–बिहार की सीमा, पश्चिम में उतर प्रदेश–बिहार सीमा, पूरब में पश्चिम बंगाल–बिहार सीमा तथा दक्षिण में उतर बिहार एवं दक्षिण बिहार की विभाजक सीमा गंगा नदी से सुनिश्चित होती है। इस तरह 56,580 वर्ग कि.मी. के क्षेत्रीय विस्तार के इस भूभाग की सीमा में बिहार के छपरा, तिरहुत, दरभंगा, कोसी, पूर्णिया, प्रमंडलों के सभी जिले मुंगेर प्रमण्डल के खगड़िया तथा बेगुसराय जिलों और भागलपुर के नवगछिया अनुमण्डल का समावेश है।

यद्यपि उतरी बिहार की भौतिक पहचान समतल मैदान की है, तथापि संरचनात्मक उदभवशीलता की सूक्ष्मताओं तथा भूआकृतिमूलक प्रक्रियाओं के प्रभाव में सुक्ष्म धरातलीय विविधता का विका वांछित है। संपूर्ण उतरी बिहार धरातलाकृति की सूक्ष्म विविधताओं के अनुरूप मुख्यतः दो उपखण्डों में विभाज्य है– (i) गंगा का जलोढ़ तथा (ii) उतरी–पश्चिमी पर्वतपदीय भाग।

(i) गंगा को जलोढ़ मैदान :– उतरी बिहार का गंगा मैदान जलोढ़ निर्मित धरातल का प्रतिनिधत्व करता है। क्षैतिज संरचना के इस मैदान खण्ड का निर्माण हिमालय से निकली नदियों द्वारा अवसाद के रूप में बांगर एवं खादर के निक्षेप से हुआ बताया गया है। उच्चावचीय विभिन्नताएँ अन्तर्नदीय क्षेत्रों तथा प्राकृतिक तटबन्धों की उपस्थिंति में दृष्टिगत होती हैं। इस भाग की सामान्य ढाल उतर–पश्चिमी भाग में ढाल प्रवणता ज्यादा सामान्य है। इस भाग की धरातलीय ढ़ाल गंगोन्मुख है अर्थात उतर से दक्षिण और उतर–पश्चिम से दक्षिण–पश्चिम। बिहार के उतरी गंगा मैदान का 402 किलोमीटर की लम्बाई में उच्चावचीय मान मात्रा 30.5 मीटर का है। गंगा नदी से संलग्न मैदानी भाग की ऊँचाई पश्चिम में समुद्र तल से 60.9 मीटर तथा पूर्व में 30.5 मीटर है, जबकि इस मैदानी भाग की औसत ऊँचाई समुद्र तल से 76.2 मी. की है।[1]

उतरी बिहार के जलोढ़ मैदान के प्राकृतिक स्वरूप में सूक्ष्म भिन्नताओं के आधार पर निम्नलिखित धरातलारकृतियों की पहचान की गई है–

(i) तराई क्षेत्र – बिहार की उतरी सीमा से संलग्न संकीर्ण पट्टी के रूप में पश्चिम से पूर्व विन्यास का तराई क्षेत्र है। इसे शिवालिक श्रृंखला का निचला भाग माना गया है। इस पट्टी की ऊँचाई दक्षिण में संलग्न उपतराई मेखला में अधिक है, हालांकि तराई क्षेत्र लगभग समतल धरातल का भाग है।

(ii) उप तराई क्षेत्र – तराई पेटी से सटे दक्षिण मे उपतराई क्षेत्र की लम्बी मेखला है। इस क्षेत्र की भूआकृतिक विशेषताएँ दलदल भूमि, मध्य में नदी घाटियों तथा कहीं–कहीं अपेक्षाकृत उच्च भूमि की उपस्थिति में पायी जाती है।

(iii) उच्च बांगर क्षेत्र – पुराने जलोढ़ से निर्मित प्राकृतिक तटबन्ध तथा दोआब मैदान की विशेषता इस तथ्य में निहित है कि ये आसा–पास के मैदान क्षेत्र से ऊँचे हैं। अपने आस–पास के क्षेत्र से इसकी ऊँचाई सामान्यतः 6.8 मीटर से 7.6 मीटर तक है।

(iv) निम्न खादर क्षेत्र – उतरी बिहार का पश्चिम में गण्डक तथा पूरब में कोसी नदी क्षेत्रें तक विस्तृत निम्न खादर क्षेत्र बाढ़ मैदान का प्रतीक है। धरातलीय परिप्रेक्ष्य में इस भाग में उच्चभूमि या टीलों का सर्वथा अभाव है। यह वास्तव में महानंदा, कोसी, बूढ़ी गण्डक, तथा गण्डक नदियों के जलोढ़ विस्तार का प्रतिफल है जो लगभग प्रति वर्ष बाढ़ प्रभावित रहता है।

(v) गंगा से संलग्न बाढ़ क्षेत्र – निम्न विस्तृत खादर प्रधान मैदानी भाग से भिन्न दक्षिण सीमान्त मेखला के रू' में गंगा बाढ़ का मैदान है। इस भाग में बालू और अवसाद की प्रधानता है। बिहार के उतरी मैदान का सम्पूर्ण प्रवाह तन्त्र इससे प्रभावित होता है। गण्डक के मेदान की प्रकृति भी निम्न खादर क्षेत्र से भिन्न है।

(vi) चौर, धार इत्यादि जैसे लघु धरातलीय तत्व – सामान्य बाढ़ के मैदानों के मध्य जल जमाव के स्थाई गडढ़े, नदियों के परित्यक्त मार्ग तथा छाड़न झील इत्यादि के रूप में स्थानीय उपस्थिति के चौर, धार तथा छाड़न झील इत्यादि उतरी बिहार के जलोढ़ मैदान की आवयश्कता धरातलीय विशेषताएँ हैं। इनका योगदान विस्तृत मैदान में तरभूमि के निर्माण में महत्वपूर्ण है। गंगा के निकट मैदानी क्षेत्रों में झीलों तथा नदियों के परित्यक्त प्रवाह मार्ग या छाड़न की बहुलता है।

(ii) उतरी–पश्चिमी पर्वतपदीय भाग – पश्चिमी चम्पारण के उतरी–पश्चिमी भाग में हिमालय पर्वत उत्थान के भूगार्भिक कम से जुड़े शिवकालिक श्रृंखला का पहाड़ी क्षेत्र है। चम्पारण के मसान क्षेत्र में जलोढ़ मैदान तृतीय कल्प के नवांतःशायी शैल पहाड़ियों के रूप में मिलते हैं। इस क्षेत्र के नवांतःशायी बालुकाष्म तथा मृतिका शैल की उपस्थित वलन और निक्षेप के प्रभाव से सम्बन्धित मानी गयी है। इन्हें स्वभावतः उपहिमालय के शिवालिक युग का प्रतिनिधि माना गया

है। धरातलीय विस्तार की दृष्टि से 586 वर्ग किमी. का यह पहाड़ी पेटी उतरी बिहार भूभाग के कुल क्षेत्रफल का मात्र 1.3 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करता है। इस भाग की दक्षिणी सीमा का निर्माण 160 मी. की समोच्च रेखा से होता है। स्थानीय उच्चावच तथा पहाड़ी श्रृंखलाओं के विन्यास के आधार पर इसके तीन उपविभागों की पहचान की गई है, जो निम्नवत है–

(i) रामनगर दून भाग – यह शिवालिक के दक्षिणी श्रृंख्ला का निम्न पहाड़ी खण्ड है। निम्न पहाड़ी भाग की इस श्रृंखला की लम्बाई एवं चौड़ाई क्रमशः 32.18 किमी. तथा 6 से 8 किमी. है। संतपुर के निकट इसकी ऊँचाई 241.70 मी. है।

(ii) हरहा घाटी क्षेत्र – रामनगर दून श्रृंखला के उतर हरहा घाटी क्षेत्र कुल 22.5 किमी. की लम्बाई में फैला है। इस क्षेत्र का अधिकांश भग समुद्र तल से 152.4 मी. ऊँचा है। इस घाटी क्षेत्र के दक्षिण मुख्य जलोढ़ मैदान ऊपर उठा हुआ है।

(iii) सोमेश्वर श्रेणी – उतरी सीमान्त अवस्थिति का सोमेश्वर श्रेणी क्षेत्र का विस्तार 74 किमी. की लंबाई में है तथा उसकी ऊँचाई 450 मी. तक की है। इस श्रृंखला की चोटी से होकर भारत–नेपाल सीमा रेखा गुजरती है। पश्चिम से पूर्व त्रिवेणी नहर के शीर्ष भाग एवं भिखना थोरी दर्रा के बीच बिहार में इस क्षृंखला की औसत चौड़ाई 4.8 किमी. से 6.4 किमी. तक है। दक्षिण में 152.4 मी. की ऊँचाई की सोमेश्वर श्रृंखला की अधिकतम ऊँचाई उतर में 609.3 मी. की बताई जाती है, जबकि इस श्रृंखला पर निर्मित सुमेश्वर किले की समुद्र तल से ऊँचाई 879.4 मीटर की है। इस प्राकृतिक भाग में सुमेश्वर दर्रा जूरी पानी सरिता के सहारे, दर्रा की स्थिति हरहा नदी घाटी के सहारे है। ये दर्रे बिहार से नेपाल के लिए सम्पर्क मार्ग को प्रदान करते है। इस भाग की एक विशेषता खडडों एवं कटकों की उपस्थिति में पायी जाती है।

(ब) दक्षिणी बिहार के प्राकृतिक स्वरूप – दक्षिणी बिहार का दूसरा प्रधान धरातलाकृतिक खण्ड है। इस भाग की अवस्थिति पारिस्थितिकी पहचान उतर में गंगा नदी, पश्चिम में बिहार– उतर प्रदेश की सीमा, दक्षिण में बिहार–झारखण्ड राज्य सीमा तथा पूर्व में बिहार–पश्चिम बंगाल की सीमा रेखा से चिन्हित होती है। बिहार का यह दक्षिणी प्राकृतिक भाग लगभग त्रिभुजाकार है, जिसका पश्चिमी आधार बिहार में गंगा के प्रवेश बिन्दु तथा गंगा के पश्चिम बंगाल में प्रवेश द्वार से निर्धारित होता है। भौगोलिक मानचित्र पर दक्षिण बिहार झारखण्ड के उतरी सीमान्त के संलग्न 150 मी. की समोच्च रेखा से प्रदर्शित होता है। पूरे बिहार के भूभागीय विस्तार के संदर्भ में दक्षिणी बिहार खण्ड 38.25 प्रतिशत का आनुपातिक हिस्सा प्राप्त करता है। लगभग 33.670 वर्ग किमी. में फैले दक्षिणी बिहार की भौगोलिक सीमा में बिहार के मगध, पटना प्रमण्डलों तथा मुंगेर भागलपुर प्रमण्डलों के गंगा के दक्षिण के जिले सम्मिलित हैं।[2]

उतरी बिहार के मैदानी प्राकृतिक स्वरूप की तुलना में दक्षिणी बिहार के मैदानी प्राकृतिक स्वरूप में क्षेत्रीय विभिन्नताएँ ज्यादा स्पष्ट हैं। संरचनात्मक गठन एवं भूआकृति मूलक प्रक्रमों के नियन्त्रण में विकसित धरातलीय विभिन्नताओं के आलोक में दक्षिणी बिहार को भी मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है – 1. गंगा का जलोढ़ मैदान तथा 2. अवशिष्ट पहाड़ी एवं पठार।

1. गंगा का जलोढ़ मैदान – इस मैदान का निर्माण झारखण्ड से गंगा की ओर प्रवाहित नदियों के जलोढ़ अवसादन से हुआ है। मेदान के निर्माण में संलग्न जलोढ़ों की प्रकृति उतर एवं दक्षिण में भिन्न है, यथा– दक्षिणी भाग में अपेक्षाकृत मोटे तथा गंगा नदी के निकट उतरी भाग में महीन जलोढ़ की प्रधानता है। दक्षिणी बिहार के मैदानखण्ड के धरातलीय स्वरूप को इसमें व्याप्त सूक्ष्म विविधताओं के अनुरूप समझा जा सकता है।

(i) गंगा के दक्षिणी तट से संलग्न ताल क्षेत्र – गंगा नदी के दक्षिणी पृष्ठ प्रदेश में फैला ताल क्षेत्र पश्चिम में पटना से पूरब में लखीसराय जिलों में अवस्थित है। ताल क्षेत्रें का सूक्ष्म सीमांकन पश्चिम में बख्तियारपुर एवं पूरब में किउल के बीच किया जा सकता है। ताल क्षेत्र की उपस्थिति का सम्बन्ध नदी तटबंध रेखा के दक्षिण की निम्नभूमि क्षेत्र में पुनपुन, फलगु, पैमान इत्यादि नदियों का बरसात में पानी भर जाने से है। दक्षिणी गंगा मैदान की सभी नदियाँ बरसाती है। वास्तव में इस मैदान की उतरोन्मुख नदियाँ गंगा के अपेक्षाकृत ऊँचे तटबन्ध रेखा से अवरूद्ध होकर पूर्व दिशा में सामानान्तर प्रवाहित होकर गंगा में मिलती हैं। ताल क्षेत्र एक विशाल जलमग्न भूभाग को प्रस्तुत करता है। यह वृख विहिन क्षेत्र है। ताल क्षेत्र की उत्पति से सम्बन्धित एक मान्यता यह भी है कि पूर्व में सोन नदी के प्रवाह मार्ग में बरसात में जदरीजी (Flood sheet) के जमाव का यह प्रतिफल है।

(ii) गंगा का तटबंध उच्च क्षेत्र – जलोढ़ मैदान की एक संकीर्ण पट्टी का विस्तार गंगा के दक्षिणी तट के संलग्न अपेक्षाकृत उच्च धरातल क्षेत्र है। विशिष्ट भूआकृतिक विशेषता से युक्त ताल क्षेत्र के निर्माण में मुख्य भूमिका इसी भाग का है।

(iii) सोन मैदान – सोन नदी के पश्चिम लगभग

आयताकार विस्तार का समतल मैदान दक्षिणी बिहार मैदान का एक विशिष्ट अंग है। सोन मैदान के निर्माण में बांगर तथा उतर में गंगा के समीप खादर जेसी स्थलाकृतिक लक्षणों की उपस्थिति है। यह उपविभाग दखिण बिहार का सर्वाधिक विस्तृत मैदान है।

(iv) झारखण्ड के उतरी सीमांत से संलग्न मैदान क्षेत्र – दक्षिण बिहार का मैदानी भाग झारखण्ड या 150 मी. सम्मोच्च रेखा की ओर जहाँ–जहाँ पहाड़ियों के उभार से पानी अपनी एकरूपता को खो देता है।

2- अवशिष्ट पहाड़ी एवं पठार क्षेत्र :– दक्षिणी बिहार के मैदानी प्राकृतिक स्वरूप के विकास में प्राकष्टर्शियरी विवर्तनिक भूसंचलन का भी सीमित प्रभाव रहा है, जिनका परिलक्षण कैमूर पठार तथा मध्यवर्ती भाग में यत्र–तत्र उभरी पहाड़ियों के रूप में हुआ है। झारखण्ड के राजमहल की पहाड़ियाँ बिहारा के दक्षिणी मैदान को पूर्व में संकीर्ण बना देती है। ये लघु पहाड़ियाँ प्राचीन रवेदार शैलों से निर्मित है। 111 मी. ऊँचा पीर–हारी छोटी से पहाड़ी बिहार शरीफ के निकट है। प्रेतशीला, रामशीला और जेठियन, वराकर की पहाड़ियाँ गया जिले में एकाकी अवशिष्ट पहाड़ियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। राजगीर तथा गिरीयक पहाड़ियों का विस्तार गया तक है। राजगीर पहाड़ियों की ऊँचाई 446 मी. की है। पूर्व में खड़गपुर–जमलापुर की पहाड़ियाँ अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हैं। इनका विन्यास इस मैदान के पूर्व में लगभग दो भागों में विभक्त करता दिखता हैं। खड़गपुर का त्रिभुजाकार पहाड़ी क्षेत्र 152.4 मी. से 304.8 मी. तक ऊँचा है।

इस तरह बिहार में भी दरभंगा का भूआकृतिक स्वरूप मूलतः मैदानी धरातल का परिचायक है तथा बहुधा नवीन भूसंरचना को परिलक्षित करता है। पश्चिम से पूर्व प्रवाहशील गंगा नदी के उतर लगभग आयताकार एवं दक्षिण में त्रिभुजाकार धरातलीय खण्ड लगभग पूर्णतः जलोढ़ मैदान के रूप में भूआकृतिक स्वरूप की स्थानीय विभिन्ताओं को प्रस्तुत करते हैं। उतर का मेदान दक्षिण मेदान की तुलना में आकार, आकृति एवं भूआकृकतिक एकरूपता की विशिष्टता प्रस्तुत करता है। दक्षिण का मैदान वास्तव में दक्षिण के झारखण्ड एवं उतर के मैदान का संक्रमित स्वरूप का प्रदर्शन करता है, जहाँ प्राचीन रवेदार चट्टानों से निर्मित पहाड़ियों की उपस्थिति धरातलाकृति में प्रभावी मैदानी प्रकृति में बदलाव का दृष्टान्त बनती है। दरभंगा का भूआकृतिक स्वरूप स्पष्टत :– (i) क्षैतिज धरातलीय विन्यास, (ii) पुराने एवं नवीन अवसादी जलोढ़ के मोटे और विस्तृत आवरण, (iii) यत्र–तत्र पहाड़ियों के उभार, (iv) एवं गंगोन्मुख जलप्रवाह तन्त्र के प्रभावी विन्यास जैसी विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति है।

जल प्रवाह तन्त्र विन्यास :– भूआकृतिक स्वरूप के निरूपण में जलप्रवाह प्रणाली की अहम भूमिका पाई गई है। नदियों के प्रवाह मार्ग, नदी जल की प्रवाह गति नदी, मार्ग की धरातलीय ढ़ाल प्रवणता से सामंजस्य प्रकृति, नदियों में उनके स्रोत एवं जलवायु क्षेत्र विशेष में अवस्थिति के अनुरूप जल परिमाण इत्यादि धरातल विशेष की भूसंरचनात्मक विशेषताओं के संदर्भ में अपवाह या जलप्रवाह तन्त्र निरन्तर धरातलाकृतियों के विविधता का कारण बनता है। जलप्रवाह तन्त्र से तात्पर्य प्रदेश विशेष में विभिन्न प्रकृति की नदियों के प्रवाह मार्गो की विन्यास व्यवस्था से सम्बन्धित है, जिसके अनुरूप एक मुख्य नदी से जुड़ी विभिन्न प्रकार की सहायक नदियाँ एक विशिष्ट नदी बेसिन का निर्माण करती है और जो बेसिन में प्राप्य धरातलीय जल को अपवाहित करता है। स्वभावतः जल प्रवाह तन्त्र की क्षेत्रीय पहचान प्रदेश की क्षेत्रीय पहचान प्रदेश की मुख्य नदियों या नदी बेसिनों की प्रादेशिक अवस्थिति के संदर्भ में सुनिश्चित होती है।[3]

जल प्रवाह तंत्र प्रादेशिक भूगोल की दृष्टि से प्रासंगिक है। कई दृष्टांतों में नदियाँ उपप्रादेशिक विभाजन की सीमाएँ बनाती हैं। बिहार के संदर्भ में इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। उदाहरण स्वरूप गंगा नदी बिहार के दो प्रधान धरातलीय खण्डों की उतरी एवं दक्षिणी सीमाओं को नियत करती है। उतर बिहार मैदान में (i) गोगा (Goga) : गोकरा–गण्डक के मध्य का क्षेत्र, (ii) गाका (Gaka) : गण्डक–कमला के मध्य के क्षेत्र, (iii) कोमा (Koma) : कोसी–महानेंदा के मध्य का क्षेत्र तथा दक्षिण बिहार में (i) कासो (kaso) : कर्मनासा–सोन का मध्य क्षेत्र, (ii) सोफ (soph) : सोन–फल्गु का मध्य क्षेत्र, (iii) फाकी (Phaki) : फल्गु–किउल के मध्य क्षेत्र एवं चाची (Chachi) : चान्दन–चीर के बीच की भूमि नदी परिसीमित धरातलीय भाग की अभिव्यक्ति है। इस तरह प्रकृति द्वारा भूआकृतिकम स्वरूपों के निरूपण में नदियों का योगदान अपनिहार्य है।

बिहार राज्य प्रदेश की भौतिक पहचान को सर्वाधिक नदी तत्व परिभाशित करता है। गंगा नदी का प्रवाह मार्ग राज्य के अपवाह तन्त्र के विकास में केन्द्रिय भूमिका अदा करता है, जिसमें उतरी बिहार एवं दक्षिणी बिहार की सभी बड़ी मुख्य नदियाँ अपनी सहायिकाओं के माध्यम से विभिन्न बेसिनों की जलराशि को गंगा में प्रवाहित करती है। बिहार के जल प्रवाह तन्त्र का

परिज्ञान उतर एवं दक्षिण बिहार की नदियों का धरातलीय विन्यास या प्रवाह मार्ग तथा क्षेत्रीय स्तर पर नदकी विशिष्टाओं को निम्न रेखा प्रतिमान द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है–

दरभंगा जिला में – खारा, कुशेश्वर, कनैल, अराई एवसं सिंगिया चौर (11401)

बिहार का जल प्रवाह तंत्र का विश्लेषण उतरी बिहार एवं दक्षिणी बिहार के गंगा मैदान में विभिन्न नदियों के प्रवाह मार्गविन्यास की जानकारी तथा प्रकृति से सम्बन्धित और सम्भव माना गया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. कौशिक एस.डी. मानव भूगोल रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2007 पृ. 160
2. मौर्य एस.डी सामाजिक भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 200 पृ. 205
3. वही
4. शर्मा दीप्ति और महेन्द्र कुमार, पर्यावरण संरक्षण, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2009.
5. हिन्दुस्तान टाईमस 16 जुलाई 2007.
6. मानस मुकेश, अंबेडकर का सपना, लोकमित्र, दिल्ली 2012 पृ. 19
7. डॉ. सिंह विरेन्द्र कुमार प्राचीन भारतीय संस्कृति, अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद 2011
8. श्याम सुंदर दास, कबीर ग्रंथावली।
9. सिन्हा प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा–बनारसीदास, दिल्ली।

सामाजिक चुनौतियाँ और जीवन मूल्य

डॉ. प्रेमलता श्रीवास्तव
डीएम 2/23, वीरांगना नगर, झाँसी, उत्तर प्रदेश

**''हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें बैठकर ये समस्याएं सभी''**

मैथलीशरण गुप्त के उक्त शब्द आज हर किसी के जुबान पर हैं लेकिन समझ कोई नहीं रहा है। सत्य, विश्वास, संवेदना, स्नेह, उदारता, सहयोग तथा परोपकार ये मानव जीवन के ऐसे आभूषण रहे हैं, जो न सिर्फ उसे अलंकृत करते हैं, बल्कि जीवन में सर्वोपरि बनाते हैं। इन मूलभूत तथ्यों को केंद्र में रखकर आज पुनः मूल्योंन्मुखी विकास की दिशा की ओर आत्मचिंतन एवं मंथन करने की आवश्यकता है।

विश्व ऐसे त्रासदीयुक्त वातावरण से गुजर रहा है, जिसमें संवेदनाओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया। यहां व्यक्तिवाद उस सीमा तक हावी है कि मानवीय संबंधों की जड़े बड़ी खोखली हो गई हैं। संवेदनशीलता, भावनात्मकता, परस्पर स्नेह, आपसी भाईचारा, सच्चाई, एक–दूसरे का भरोसा जैसे मूल्य मानव समाज के बुनियादी आधार हैं, मानव के व्यक्तिगत स्वार्थ और भोगवादी वृत्ति की चकाचौंध में विलीन होते दिखाई देते हैं।

उदारीकरण–निजीकरण–भूमंडलीकरण के दौर में प्रत्येक स्थानीयता, सामाजिकता, जातीयता और राष्ट्रीयता आपनी खोज फिर से करने को तत्पर हैं। ''भारतीयता की खोज आज के संदर्भ में दो दृष्टियों से आवश्यक है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में एक सांस्कृतिक अराजकता व्याप्त हो गई है। स्वदेश और स्वदेश की भावनाएँ अशक्त होती जा रही हैं। हम बेझिझक पश्चिमी अनुकरण कर अपनी अस्मिता खोते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति एक छोटे, पर प्रभावशाली, तबके तक सीमित है, पर उसका फैलाव हो रहा है। यदि इसे हमने बिन बाधा बढ़ने दिया तो हमें परंपराओं की संभव उर्जा से वंचित होना पड़ेगा। और हमारी स्थिति बहुत कुछ त्रिशंकु जैसी हो जाएगी। दूसरा कारण और भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति आज की दुनिया में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में उभर रही है।, न्यस्त स्वार्थ, जिसका उपयोग खुलकर अपने उद्देश्यों के लिए कर रहे हैं। उन पर रोक लग सकती है, यदि हम निष्ठा और प्रतिबद्धता से भारतीयता की तलाश करें। जाहिर है, निष्ठा ओर प्रतिबद्धता से भारतीयता की खोज नए सिरे से अपेक्षित है।[1]

सर्वोच्च न्यायालय ने देश और युवावों के हितों को ध्यान में रखते हुए मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए सन् 2002 में 'अरूणा राय व अन्य बनाम भारत सरकार व अन्य' मुकद्दमें में निर्णय देते हुए कहा ''इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि पिछले पांच दशकों में हर स्तर पर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निरंतर ह्मास हुआ है और स्वार्थपरता में वृद्धि हुई है। मूल्यों पर आधारित सामाजिक प्रणाली की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए हम भौतिकवादी समाज में बदलते जा रहे हैं। कोई इससे भी इंकार नहीं कर सकता कि 'सेक्यूलर' समाज में नैतिक मूल्यों का महत्त्व सर्वोपरि है। जिस समाज में कोई नैतिक मूल्य न हो, वहाँ न सेक्यूलर बचेगा, न सामाजिक व्यवस्था। नैतिक मूल्यों के बिना न सेक्यूलर समाज, न लोकतंत्र बचेगा। जैसा एस.बी. चव्हाण समिति ने नोट किया कि व्यक्ति में गुणों को ही मूल्य कहते हैं, और ये क्षीण होने लगें तो परिवार, समाज और देश के संपूर्ण बिखराव का कारण बन जाएंगे। जिस समाज में धन, सत्ता और पद के लिए सामाजिक और नैतिक मूल्य निरंतर खत्म हो रहे हों, क्या वहां शुरू से ही ठोस सामाजिक आधार नहीं होना चाहिए ताकि आदमी वयस्क होकर हर तरह की उग्रता, कुविचार, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार और शोषण के खिलाफ मिल कर संघर्ष कर सकें।

रामकथा पुरातन होते हुए भी चिरनूतन है। प्रत्येक व्यक्ति को श्रेष्ठ जीवन की प्रेरणा प्रदान करना ही इसका उद्देश्य है। रामचरितमानस से हम अपनी वर्तमान चुनौतियों का समाधान पा सकते हैं। भारतीय संस्कृति परिवारों की संस्कृति है। तमाम स्वांथलिप्सा और भौतिकता के बावजूद रिश्तों का सम्मान बहुत आवश्यक है। बड़ों के प्रति सम्मान, छोटों के प्रति उदारता और भ्रातृत्व भाव हमारे परिवारों का केंद्र रहा है। जिसके स्वरूप में आज परिवर्तन आया है। प्रेरणा और अदम्य साहस का परिचय कराते हुए तुलसीदास किष्किन्धाकाण्ड में लिखते हैं –

''एक बार कैसेहुं सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुं आनौ।।'' रामचरितमानस, तुलसीदास

राम का यह अटल विश्वास हताशा के क्षणों में पूरी मानव जाति के लिए प्रकाश–स्तंभ है। गला काट प्रतिस्पर्धा, रोजाना की चुनौतियाँ, सहारे की कमी, विश्वास का अभाव इस दौर की बड़ी चुनौतियां हैं। इन्हीं सबसे हार कर व्यक्ति खुद को छोटा या असहाय महसूस करता है। लेकिन ऐसे में भी धैर्य के साथ साहस का प्रयोग करके जीवन में सफलता पाई जा सकती है। हमेशा सत्य के लिए संघर्ष करना पड़ता है लेकिन मौन हो जाना या कार्य को छोड़ देना समस्या का हल नहीं है – **''निशिचर हीन करउं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।''**

राम अपने भुज बल से किष्किन्धा और लंका पर विजय प्राप्त करते हैं, किंतु उन्हें अपने अधीन नहीं रखते हैं। सोने की लंका का राज्य विभीषण को उस स्थिति में देते हैं, जब वे स्वयं वनवासी हैं, फलों के भोजन पर रह रहे हैं, घास–फूस की शैय्या पर शयन करते हैं। राज्य के प्रति निर्लिप्त, एकदम निस्पृह। सुख–साधन जुटाने की अंधी दौड़ में आज बहुत कुछ पाने के बावजूद लगभग हर कोई दुखी और अधूरा महसूस कर रहा है।

भारतीय दर्शन और जन सम्मत की दृष्टि से मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत जीवन को ही सफलता और प्रतिष्ठा का पर्याय माना गया है। यही व्यक्तित्व मूल्यांकन की कसौटी भी है। वर्तमान में विज्ञान और सूचना तकनीकी के बढ़ते प्रवाह, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण तथा संस्कार प्रधान शिक्षा के अभाव के कारण न केवल भारतीय जनमानस की सोच में बदलाव आया है बल्कि व्यक्तित्व मूल्यांकन तथा प्रतिष्ठा के पैमाने भी बदल गए हैं।

पहले व्यक्तित्व मूल्यांकन का पैमाना समाज निर्धारित करता था और प्रतिष्ठा भी समाज निर्गत थी किंतु आज दोनों ही चीजें व्यक्तिगत होती जा रही हैं। इसके साथ ही व्यक्तित्व मूल्यांकन और प्रतिष्ठा के नए प्रतिमान भी विकसित और परिभाषित होते जा रहे हैं, जिससे व्यक्तिगत निर्गत और समाज निर्गत मूल्यांकन तथा प्रतिष्ठा में अंतर्द्वंद्व की स्थिति निर्मित हो रही है। इस विरोधाभास के कारण मूल्यों का हनन तेजी के साथ हुआ, जिसने समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दिया। जनता द्वारा धन के प्रभाव में आकर दी जाने वाली सस्ती सामाजिक प्रतिष्ठा ने लोकप्रियता के लिए लालायित लोगों को कर्त्तव्यविहीन अध आर्थिकोपार्जन की ओर प्रेरित किया। धन प्रतिष्ठा का उच्चतम आदर्श बन बैठा, जिसे रातोरात पाने के लिए हर कोई व्यग्र हो उठा। इस प्रकार बंगला, मोटर–गाड़ी, नौकर–चाकर, कीमती कपड़े, मनचाहा भोजन एवं बैंक एकाउंट को सर्वोपरि माना जाने लगा। इस महत्त्वाकांक्षा ने व्यक्ति को सुख–सुविधाएँ तो उपलब्ध करा दीं परंतु उसे मूल्यों से च्युत कर दिया, जिसका प्रभाव व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व पर पड़ा है। वह अंदर से संवेदनशून्य और कृतित्रमता का जामा पहनकर जीने वाला मात्र एक मूल्यहीन प्राणी बनकर रह गया है।

मूल्हीनता ने अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। भौतिक विकास की द्रुतगामी दौड़ में व्यक्ति नैतिकता से बहुत दूर हो गया है। बढ़ती महत्त्वाकांक्षाएँ तथा बहुद्देशीय जीवन के कारण आज मनुष्य कथनी और करनी के संबंध में अपनाए जाने वाले दोहरे मापदंडों में जीने का आदी होता जा रहा है। यही कारण है कि आज का मानव मानसिक पीड़ाओं, वैयक्तिक कुंठाओं, अंतर्द्वंद्व एवं आर्थिक विषमताओं से संत्रस्त है।

स्वामी विवेकानंद ने मानव निर्माण की प्रक्रिया पर बल देते हुए व्यावहारिक दर्शन का समर्थन किया है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध **मनोवैज्ञानिक जीन प्याजे** ने भी कहा है कि **''व्यवहार हमारे ज्ञान का आधार बिन्दु है। मूल्यों का विकास भी इसी पर निर्भर करता है।''**

आज मानव विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों के बीच जीवन व्यतीत कर रहा है। वे प्रतिमान जितने संघर्ष भरे हैं, उतने ही चुनौतीपूर्ण भी हैं। ये निम्न चुनौतियाँ हैं जिनके कारण जीवन मूल्यों का ह्यास हुआ है –

- भौतिक विकास और आधुनिकता की भ्रामक धारणा के कारण नैतिक एवं आध्यात्मिक भावना का क्रमशः नाश हो रहा है।
- तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण असंतुलन की स्थिति।
- पारिवारिक संकल्पना का बदलता स्वरूप भावनात्मक संरक्षा का अभाव।
- विज्ञान एवं सूचना–तकनीकी का द्रुतगामी विकास तथा मनोवृत्तियों में परिवर्तन।
- पर्यावरण संकट के कारण नैसर्गिक संसाधनों की बढ़ती कमी।
- संचार साधनों का बढ़ता प्रभाव तथा जीवन शैली के प्रति बदलता नजरिया।

- शिक्षा का व्यावसायीकरण तथा बदलते मूल्य।
- सामाजिक–राजनीतिक जीवन में व्याप्त विघटन की प्रवृत्ति का नई पीढ़ी पर प्रतिकूल प्रभाव।
- यौनाचार, बढ़ते अपराध एवं भ्रष्टाचार की तेजी से पनपती विषबेल।
- व्यक्तित्व मूल्यांकन की कसौटी तथा प्रतिष्ठा के बदलते प्रतिमान।
- ज्ञान के बढ़ते क्षितिज तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण जीवन में आस्था व श्रद्धा की अपेक्षा तर्क एवं बौद्धिकता का बोलबाला।[2]

उपर्युक्त चुनौतियों के कारण जिन नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का हनन हुआ है, उसके कारण जीवन अत्यंत कठिन हो गया है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कई ऐसे समाजसुधारक, समाजसेवी, संत व मनीषी, दार्शनिक, चिंतक, शिक्षाशास्त्री, साहित्यकार तथा राजनेता हुए जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में निष्ठापूर्वक दायित्वों का निर्वहन करते हुए समाज में उन मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की, जो भारतीय संस्कृति के संवाहक थे। संत कबीर, तुलसीदास, राजाराममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फूले, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, महामना मदनमोहन मालवीय, प्रेमचंद्र मैथलीशरण गुप्त, डॉ. राधाकृष्णनन, राजगोपालाचारी, पं. रामचंद्र शुक्ल, माखनलाल चतुर्वेदी आदि अनेक नाम हैं, जिन्होंने अपने प्रेरणास्पद व्यक्तित्व एवं आचार–विचार एवं साहित्य से मानवीय मूल्यों के महत्त्व को प्रतिपादित करने का सार्थक प्रयास किया।

पश्चिम ने आइंस्टाइन ने के सिद्धांतों का अणु बम बनाने या अंतरिक्ष–यात्रा में तो उपयोग किया है परंतु अपने को, अपने भाव–जगत् को, समझने में नहीं। क्या आइंस्टाइन ने यह नहीं सिद्ध किया कि चेतना पदार्थ में और पदार्थ चेतना में परिवर्तित होता रहता है। जिस रोज पश्चिम आइंस्टाइन की मूल स्थापना के रहस्य को ठीक–ठीक हृदंगम कर लेता उस रोज उसे संस्कृति, काव्य और धर्म को जीवन के लिए प्रासंगिकता का भी बोध हो जाएगा। काव्य, कला और धर्म के बिना मानवीय भावों का साधारणीकरण हो ही नहीं सकता तथा इसके बिना जो संस्कति विकसित होगी उसमें भावों का संस्कार नहीं हो पाएगा क्योंकि ऐसा मनुष्य सभ्य दिखकर भी पशुवत् आचरण करेगा।[3]

परिवार को बालक के संस्कार निर्माण की प्रथम पाठशाला माना गया है। क्योंकि परिवार अर्थात् कुटुंब एक महाभाव है यह महाभाव मनुष्य को उसकी विराट सत्ता के साथ जोड़ता है। उसकी परिधि का विस्तार करता है।

उससे एक से बहुत होने की आकांक्षा को दृढ़ करता है। विधाता की सृष्टि का मूल भाव रहा – एकोऽहं बहुस्याम्। परिवार में बालक की प्रारंभिक संस्कारों के बीजारोपण करने का कार्य माता–पिता अथवा अभिभावक ही करते हैं, जो शनैः–शनैः अच्छी आदतों के रूप में विकसित होते हुए जीवन–मूल्यों का रूप ले लेते हैं। इसलिए व्यक्ति के जीवन–मूल्यों के स्रोत होते हैं – उसकी अपनी संस्कृति, उसके अपने संस्कार एवं अपना वंशानुक्रम। यहीं से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया भी शुरू होती है। स्वामी विवेकानंद ने इस संदर्भ में विचार उल्लेखनीय है। स्वामी जी के अनुसार "व्यक्ति का चरित्र और कुछ नहीं, उसकी आदतों और वृत्तियों का सार भर है। हमारी आदतें और वृत्तियाँ ही चरित्र का स्वरूप निर्धारित करती है। वृत्तियों की श्रेष्ठता और निकृष्ठता के अनुरूप ही चरित्र को सबलता और निर्बलता सुनिश्चित होती है। श्रेष्ठ चिंतन और आचरण के सतत् अभ्यास द्वारा प्रवृत्तियों का शोधन होता है और चरित्र गठन का कार्य मनोवांछित दिशा में आगे बढ़ता है।"

उदारवादी वैश्वीकरण के इस दौर में इस वैश्विक संस्कृति का निरंतर विस्तार हो रहा है। वैश्वीकरण के आर्थिक प्रभावों को लेकर मतभेद हो सकता है लेकिन विभिन्न संस्कृतियों पर इसके विलयनकारी तथा विघटनकारी प्रभावों को नकारना असंभव है। भारत की संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों के नकारात्मक तथा साकारात्मक पहलू दोनों ही हैं। लेकिन जो चिंता का कारण है वह भारत के धूमिल हो रही सांस्कृतिक अस्मिता। भारत का अभिजात्य वर्ग विदेशी संस्कृति तेजी से अपना रहा है तथा सांस्कृतिक आदर्शों में पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्य शुमार हो रहे हैं। प्रवृत्ति भारतीयता में संशोधन या सुधार की नहीं है बल्कि पश्चिमी मूल्यों का अंधानुकरण है। भारतीय पुनर्जागरण काल में भी पश्चिमी मूल्यों से प्रेरणा ली गई थी लेकिन भारतीय मूल्यों को नकार कर नहीं। यहा संस्कृति से जुड़े। एक बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दा विचारणीय है वह है भाषा का। भाषा किसी भी सभ्यता या समाज की अस्मिता तथा संस्कृति की वाहिका होती है। आज

इस वैश्वीकरण के दौर में विश्व की अन्य भाषाओं के साथ भारती का भी भविष्य सोचनीय है।

आर्थिक विकास के द्वारा ही भाषा तथा संस्कृति भी सुरक्षित रखी जा सकती है। विपन्नता की स्थिति में संस्कृति कभी भी फल–फूल नहीं सकती है। उदारवाद तथा वैश्वीकरण भारत को अवसर प्रदान कर रहा है कि भारत अपनी काबलियत विश्व में साबित करे। आवश्यकता उन अवसरों की है जिससे जन–जन में छिपी उद्यमिता तथा सृजनात्मक क्षमताएँ विकसित हो सकें। इसका महत्त्व आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा अंतरराष्ट्रीय है। यह सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक तत्त्व है।

आज भौतिकता के प्रतिस्पर्धात्मक युग में सबसे अधिक दबाव युवा पीढ़ी पर है जिसे न केवल विधिवत शिक्षा प्राप्त करनी है अपितु जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण अपना कर आगे बढ़ना है। अतः आवश्यक हो जाता है व्यापक एवं समग्र दृष्टिकोण बनाकर संवेदनायुक्त भावनाओं को जीवन में अपनाने की, जो हर युवा को समाज में उभरती समस्याओं एवं चुनौतियों के विषय में सोचने के लिए विवश कर सके। आज समाज में जो चुनौतियाँ विध्वंसात्मक तत्त्वों के रूप में व्याप्त हैं, इसके कारण न केवल सामाजिक असुरक्षा एवं अशांति का वातावरण उत्पन्न हुआ है। बल्कि भारतीय संस्कृति का अधोपतन भी हुआ है। अतः युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप वैश्विक शांति एवं वातावरण के संरक्षण के लिए मानव मूल्यों के पुनः प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है, ताकि नई पीढ़ी को भारतीय संस्कृति के उन्नयन के लिए तैयार किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रो. श्यामाचरण दुबे 5 समय और संस्कृति : भारतीयता की तलाश।
2. रचना पत्रिका लेख समकालीन चुनौतियाँ और मूल्यों का संकट – डॉ. आशा शर्मा, अंक 60–61, सन् 2006, पृ. 41
3. सिद्धेश्वर प्रसाद –विश्व आलोचना को आचार्य शुक्ल की देन , पृ. 32, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1986
4. भारतीय उपन्यास कथासार खण्ड–2, संपादक–डॉ. प्रभाकर माचवे, चतुर्थ संस्करण – 2014, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 36.
5. वर्तमान साहित्यकारों के समक्ष चुनौतियाँ, सुशील शर्मा, रचनाकार, ई पत्रिका ।
6. 21 वीं सदी की चुनौतियाँ और साहित्य सृजन, डॉ. गजादान चारण, 19 सितम्बर 2016, चारण कम्युनिटी पोर्टल।
7. हमारी सामाजिक रचनात्मकता का शोषण तो नहीं हो रहा ? जीवन सिंह ठाकुर, वेबदुनिया।
8. हिंदी का प्रवासी साहित्य, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण 2014.
9. हिंदी का प्रवासी साहित्य, कमल किशोर गोयनका, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, पृ. 300.

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 2020

दक्षिणी बिहार राज्य और भूकम्प (एक पर्यावरणीय भौगोलिक अध्ययन)

डॉ. सुरेन्द्र कुमार
सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, लालु मंडल महाविद्यालय, गया (बिहार)

परिचय :– भूकम्प का शाब्दिक अर्थ होता है पृथ्वी का हिलना। साधारण अर्थों में भूकम्प वह घटना है जिसके द्वारा भूपटल (Earth Crust) में हलचल उत्पन्न होती है तथा कम्पन होने लगती है। यह कम्पन तरंग के रूप में होती है। जैसे–जैसे वह तरंगे केन्द्र से दूर होती जाती है उनकी शक्ति तथा तीव्रता में ह्रास होता जाता है।

"An earthquake can be defined as a rapid and discernable tremer or movement caused by fracturing of the rocks in the earth's crust'.

भूकम्प का प्रभाव प्रायः दो रूपों में होता है। प्रथम प्रभाव उत्पत्ति केन्द्र से चारों तरफ तरंगों के द्वारा प्रसारित होता है। इसका प्रभाव क्षैतिज होता है। द्वितीय प्रभाव कम्पन होने पर धरातलीय भागों में ऊपर तथा नीचे की तरफ लम्बवत् रूप में धँसाव होने लगता है। भूकम्प का यह रूप अत्यन्त विनाशकारी होता है।

भूकम्प की तीव्रता (Intensity) तथा परिमाण (Magnitude) का मापन रिचर मापक के आधार पर किया जाता है। इस मापक की रचना चार्ल्स एफ0 रिचर (Charles, F. Ritcher) ने 1935 में की थी। इस मापक पर अंकित अंक, जो भूकम्प की तीव्रता या परिमाण – M को इंगित करता है, 0 से 9 के बीच होते हैं, लेकिन इस मानक की काई ऊपरी सीमा नहीं होती है। अब तक रितर मापक पर 9.3 (सुमात्रा सुनामी के समय, 2004) परिमाण वाले भूकम्प का रिकार्ड उपलब्ध है। निम्न तालिका में भूकम्प परिमाण मापक तथा भूकम्प का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है।

भूकम्प का प्रभाव प्रायः दो रूपों में होता है। प्रथम प्रभाव उत्पत्ति केन्द्र से चारों तरफ तरंगों के द्वारा प्रसारित होता है। इसका प्रभाव क्षैतिज होता है। द्वितीय प्रभाव कम्पन होने पर धरातलीय भागों में ऊपर तथा नीचे की तरफ लम्बवत् रूप में धँसाव होने लगता है। भूकम्प का यह रूप अत्यन्त विनाशकारी होता है।

अध्ययन क्षेत्र :– बिहार के मैदानी भाग को दो वर्गों में बाँटा जाता है – उत्तरी बिहार या गंगा का उत्तरी बिहार मैदान एवं दक्षिणी बिहार या गंगा का दक्षिणी बिहार का मैदान।

दक्षिणी बिहार का भाग गंगा नदी के दक्षिण स्थित है। यह पश्चिम में चौड़ा तथा पूर्व में संकीर्ण है। इसका कुल क्षेत्रफल 33,670 वर्ग कि.मी. है जो पूर्ण मैदानी भाग का 37.15 प्रतिशत है। "The South Ganga Plain popularly known as South Bihar Plain spans over greater part of Patna and Bhagalpur Divisions between the Gangaand 100 metre contour line: (Singh and Kumar, 1970, 10). यह मैदानी भाग उत्तरी बिहार के मैदान से भिन्न है। इस मैदानी भाग में कई पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। ये पहाड़ियाँ छोटानागपुर के पठार की बहिर्वत्ती (Out-lier) भाग है। यह मैदानी भाग भी गंगा नदी तथा दक्षिण में छोटानागपुर के पठारी भाग से निकलने वाली नदियों के द्वारा लायी हुई मिट्टी से निर्मित है।

शोध–कार्य का उद्देश्य (Purpose of the study) :- वर्त्तमान शोध–कार्य का उद्देश्य है दक्षिणी बिहार की आपदाओं (Disasters) का विश्लेषण कर उसका विस्तार में अध्ययन करना है। यहाँ के सूखा, बाढ़, भूकम्प के कारण, कुप्रभाव तथा उनका प्रबंधन एवं नियोजन मानव कष्टों तथा पर्यावरण असंतुलन के पृष्ठभूमि के दृष्टिकोण से करना है।

परिकल्पना (Hypotheses) :-

- दक्षिणी बिहार गहरी कॉप मिट्टी जमाव का क्षेत्र है। यह भूकम्प प्रभावित क्षेत्र (Seismic zone) के अन्तर्गत आता है। 1934 का भूकम्प सर्वविदित है।
- आपदा के संबंध में जागरूकता आवश्यक है।
- सरकार तथा स्वयं–सेवी संस्थानों द्वारा जागरूकता, बचाव कार्यों की व्यवस्था पर जोर दी जा रही है। उचित ढंग से आपदा प्रबंधन होनी चाहिए।

भूकम्प की उत्पत्ति का कारण :– भूकम्प का मूल कारण पृथ्वी की संतुलित अवस्था में अव्यवस्था का होना है। यही कारण है कि अधिकतर भूकंप प्रायः कमजोर तथा अव्यवस्थित भूपटल में आते हैं। पृथ्वी की सन्तुलित अवस्था में अव्यवस्था के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :–

1. टेक्टोनिक प्लेट संकचन (Plate Tectonic Movement) द्वारा

2. लचीला प्रतिक्षेप सिद्धान्त (Elastic rebound theory)
3. भू–सन्तुलन के अव्यवस्था (Isotatic disturbances)
4. धरातल में सिकुड़न (Contraction in the crust)
5. गैस का फैलाव (Spread of Gas)
6. ज्वालामुखी क्रिया द्वारा (Valcanicity)

प्लेट निर्वतन सिद्धान्त (Plate Tectonic Theory) :- इस सिद्धान्त के माध्यम से भूकम्पों के उत्पन्न होने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को भलीभाँति व्याख्या संभव हो गयी है। प्लेट निर्वतन सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की क्रस्ट की रचना 6 प्रमुख प्लेटों (Plates) से हुई है। (यूरेसियन प्लेट, अमेरिकन प्लेट, अफ्रीकन प्लेट, इण्डियन प्लेट, पैसेफिक प्लेट तथा अंटार्कटिक प्लेट) इनके अतिरिक्त 20 गौण प्लेट्स भी हैं। पृथ्वी के अन्तराल में उत्पन्न होने वाली तापीय संवहन तरंगों (Thermal convection current) से प्रेरित होकर ये प्लेट एक दूसरे के संदर्भ में सदा गतिशील होते रहते हैं। समस्त विवर्तनिक (Tectonic) घटनायें इन प्लेटों के किनारे के सहारे घटित होती हैं।

प्लेट सीमाओं को निम्न 3 प्रकारों में विभाजित किया जाता है :–

(क) रचनात्मक प्लेट सीमा (Constructive Plate Boundary),

(ख) विनाशी प्लेट सीमा (Destructive Plate Boundary) और

(ग) संरक्षी प्लेट सीमा (Conservative Plate Boundary)

अधिकांश भूकम्प इन्हीं प्लेट सीमाओं पर घटित होते हैं।

रचनात्मक प्लेट :– रचनात्मक प्लेट किनारों का निर्माण मध्य महासागरीय घटकों (Mid-oceanic Ridges) के सहारे होता है। ऐसे क्षेत्रों में दो प्लेट विपरीत दिशाओं में गतिशील होती है। इन प्लेटों के पृष्ठ किनारे ही रचनात्मक प्लेट होते हैं। इस स्थिति में मैगमा (Magma) मैंटल (Mantle) से कटक के सहारे प्रकट होने लगता है। इस प्रकार लावा के उपर उठने से प्लेटो के रचनात्मक किनारों पर नई क्रष्ट का निर्माण होता रहता है। साथ ही साथ अपसरण के कारण रचनात्मक किनारों पर मंशन का निर्माण भी होता है।

विनाशात्मक प्लेट :– दो विभिन्न दिशाओं में से एक दूसरे की ओर गतिशील होनेवाली प्लेट को विनाशात्मक प्लेट कहते हैं। इन दो प्लेटों के आपसी टकराहट के कारण अथवा भारी प्लेट के ऊपर हल्की प्लेट आने से उत्थान के कारण भूगर्भिक हलचल होती है जिससे भूकम्प उत्पन्न हो जाता है।

संरक्षी प्लेट :– भूगर्भिक हलचल के द्वारा जब दो गतिशील प्लेट क दूसरे के बगल से बिना किसी टकराहट से गुजर जाते हैं तो उन्हे संरक्षी प्लेट कहा जाता है। इन संरक्षी प्लेटों के किनारे विवर्तनिक धटनायें जैसे– वलन (Fold), भ्रंशन (Faulting), रगड़न (Friction) तथा ज्वालामुखी उदभेदन (Vulcanicity) की क्रियाओं के सक्रिय होने से भूकम्प आते हैं।

बिहार राज्य के प्रत्येक जोन/क्षेत्र में भूकम्प की तीव्रताएं :– भारत में भूकम्प के 5 जोन होते है जिसमें एक जोन में दक्षिणी बिहार राज्य भी भाामिल है यह क्षेत्र अधिकतम जोखिम का क्षेत्र तथा ज्यदा भूकम्प की संभावना रखता है। भारत में जो 5 जोन है वे निम्नलिखित है :–

1. **मण्डल एक** (Zone I) **:-** इसके अन्तर्गत भूकम्प द्वारा संभावित न्यूनतम क्षति के खतरे वाले स्थानों को सम्मिलित करता है। इस मण्डल के अन्तर्गत पंजाब एवं हरियाणा का कुछ भाग, उत्तर प्रदेश के मैदानी भाग का हिस्सा, गोदावरी का डेल्टाई भाग, केरल एवं महाराष्ट्र के तटीय मैदानी भाग, राजस्थान के रेगिस्तानी भाग एवं कच्छ को छोड़कर गुजरात के अधिकांश भाग आते हैं।
2. **मण्डल दो** (Zone II) **:-** न्यून क्षति जोखिम वाले क्षेत्रों को दर्शाता है। इसके अन्तर्गत दक्षिणी पंजाब एवं हरियाणा, उत्तर प्रदेश के मैदानी भाग के दक्षिणी हिस्से, पूर्वी राजस्थान, उड़ीसा के तटीय जिले, तमिलनाडु आदि आते हैं।
3. **मण्डल तीन** (Zone III) **:-** सामान्य क्षति जोखिम वाले क्षेत्रों को सम्मिलित करता है। इस मण्डल के अन्तर्गत दक्षिणी एवं दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान, अधिकांश मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के अधिकांश भाग, झारखण्ड का उत्तरी एवं उत्तरी–पच्छिमी उड़िसा आदि आते हैं।
4. **मण्डल चार** (Zone IV) **:-** के अन्तर्गत उच्च क्षति

जोखिम (High damage risk) वाले क्षेत्र सम्मिलित हैं जिसमें जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी पंजाब तथा हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड एवं बिहार का उत्तरी भाग तथा सिक्किम के क्षेत्र आते हैं।

5. **मण्डल पांच** (Zone V) **:-** यह अत्यधिक क्षति जोखिम मण्डल (Very high damage risk zone) का है जिसके अन्तर्गत जम्मू एवं काश्मीर के कुछ भाग, हिमाचल प्रदेश के कुछ भाग, उत्तराखण्ड, उत्तरी बिहार का सुदूर उत्तरी भाग (मुंगेर, दरभंगा सहित उत्तरी भाग), समस्त पूर्वोत्तर भाग, गुजरात के कच्छ वाले भाग आता है।

बिहार राज्य के प्रत्येक जोन/क्षेत्र में भूकम्प की तीव्रताएं :– सिस्मिक जोन V (Seismic zone V) :- यह क्षेत्र में अधिकतम जोखिम का जोन है तथा बड़ा भूकम्पों की संभावना रखता है। ऐसे भूकम्प जो पूरा हड़कम्प मचा सकते हैं तथा जीवन एवं संपति को भारी क्षति पहुँचा सकते हैं। बिशेष रूप से डिजाइन की गई संरचनाओं तक में उल्लेखनीय क्षति हो सकती है। इमारतें में भारी क्षति जो आंशिक रूप से या पूरी तरह ढह सकती है। रेल पटरियां मुड़ जाती हैं और सड़कों को नुकसान पहुँचती हैं। जमीन में अनेक सेंटीमीटर चौड़ी दरारें पड़ जाती हैं, भूमिगत पाइपें टूट जाती हैं, अनेक जगह भूस्खलन होता है। चट्टानें गिरती हैं तथा कीचड़ बहता है, पानी में विशाल लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। जहाँ इसकी तीवता अधिक होती है, वहाँ भूपरिदृश्य में बदलाव के साथ पूरा विनाश हो सकता है जिससे नदियों का मार्ग तक बदल सकता है।

तीव्रता 9 और उससे अधिक प्रभावित जिलें :– अररिया, दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, सुपौल।

सिस्मिक जोन IV (Seismic zone IV) **:-** यह जोन प्रबल भूकम्प की संभावना रखता है जिससे हर जगह हड़कंप मच जाता है। भारी फर्नीचर इधर–उधर हो जाता है। ऐसे भूकंप से अच्छे डिजाइन निर्माण वाली संरचनाओं की भारी क्षति हो सकती है। इसके अन्य प्रभावों में खड़ी ढालों पर भूस्खलन जमीन में कुछ सेंटीमीटर चौड़ी दरारें पड़ना तथा झीलों के पानी का गंदला होना आता है। तीव्रता 8 होती है। प्रभाव क्षेत्र – पटना समेत 24 जिले।

सिस्मिक जोन III (Seismic Zone III) **:-** इस जोन में अधिक तीव्र वाले भूकंप महसूस किये जा सकते हैं। ऐसे भूकंप जो हर किसी को डरा देते हैं, लोगों के लिए खड़ा होना कठिन हो जाता है। वाहनों में सफर कर रहे लोग भी ऐसे भूकंपों को महसूस कर सकते हैं। अच्छे डिजाइन और निर्माण वाली संरचनाओं। इमारतों में भारी क्षति होती है। तीव्रता 7.

प्रभावित जिले : भोजपुर, बक्सर, गया, जहानाबाद, कैमूर, नवादा, रोहतास।

अधिकांश बिहार (दक्षिणी बिहार) की भूकंपें नेपाल में केन्द्रित (उत्पन्न) भूकंपों का परिणाम घटित होती हैं।

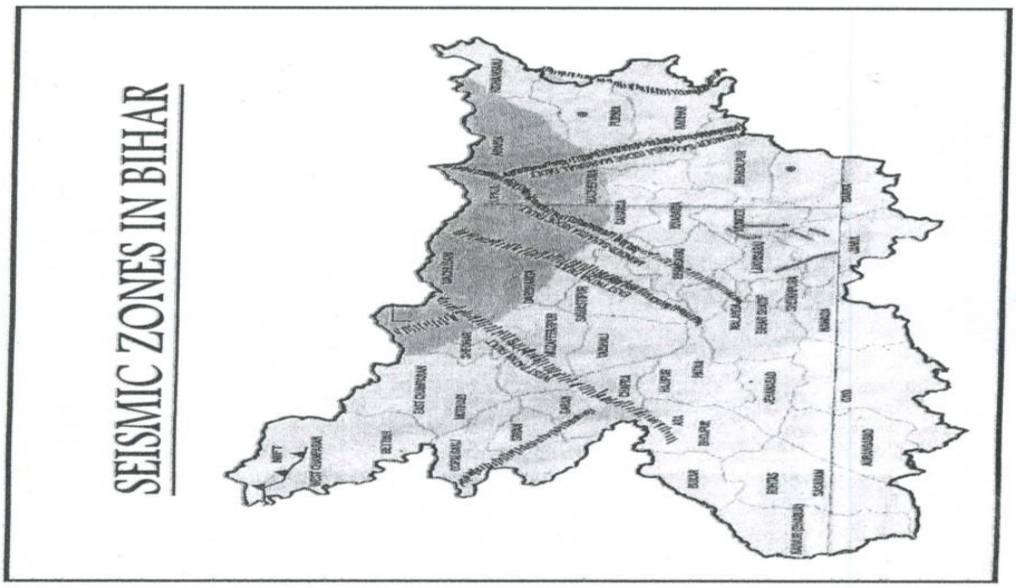

दक्षिणी बिहार की प्रमुख घटित भूकंपें :–
15 जनवरी, 1934 : नेपाल और बिहार में 8.1 की तीव्रता वाले भूकम्प में 10,700 लोगों की मौत हुई थी। जबकि इस भूकंप से नेपाल के काठमांडू, भक्तपुर और पाटन में भयंकर क्षति हुई थी। हजारों मकान जमींदोज हो गए थे। बिहार में मुंगेर जिला अति क्षतिग्रस्त हुआ था। सीतामढ़ी में कोई भी घर नहीं बचा था। मधुबनी जिले के राजनगर में कोई भी कच्चा मकान भूकंप के झटके को बर्दाश्त नहीं कर सका था। दरभंगा राज के प्रसिद्ध नौ लक्खा प्लेस की दीवारों में भी दरारें पड़ गई थी। रेलवे लाइने की पटरियां टेढ़ी–मेढ़ी हो गई थी। 1934 के भीषण भूकंप के बाद महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू सहित देश के अनेक बड़े नेतागण बिहार आये थे।

20 अगस्त, 1988 :– नेपाल में 6.8 की तीव्रता वाले भूकम्प में 721 लोगों को नेपाल में और पड़ोसी भारतीय राज्य बिहार में 270 लोग की मृत्यु हुई थी। इसमें दरभंगा तथा मधुबनी जिले में सर्वाधिक क्षति हुई थी, हजारों की संख्या में कच्चे मकान क्षतिग्रस्त हुये थे। दरभंगा में एक स्कूल और एक अस्पताल का भवन पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया था। साधारणतः सम्पूर्ण बिहार इस भूकंप से प्रभावित हुआ था।

25, अप्रैल 2015 का भूकंप :– नेपाल में 81 साल का सबसे शक्तिशाली भूकंप। एवरेस्ट का बेस कैंप तबाह। आपातकाल घोषित, हजारों फंसे। जनकपुर मंदिर को भी क्षति। इस भूकम्प का केन्द्र नेपाल स्थित पोखरा स्थान पर था।

हिमालय की गोद में बसे नेपाल में 25.4.2015 को शक्तिशाली भूकम्प के झटकों ने वर्बादी की गई इबारत लिख दी अनेक झटके आये। हर ओर तबाही का मंजर, हर चेहरे पर दहशत, आँखों में आँसू और आसमान में मलवे गुबार हैं। 7.9 की तीव्रता वाले भूकंप में 1500 लोगों की मौत हो गई (जो बाद में बढ़कर 10,000 तक पहुँच गई थी।

- हजारों घायल, सैकड़ों लापता
- धरहरा टावर के मलवे से मिला 250 शव
- लामजुंग था भूकंप का केन्द्र
- एवरेस्ट हिला
- नेपाल तबाह, भारत के 19 राज्य कांपे, 63 की मौत।
- बिहार में भूकंप से 58 की मौत
- 1988 के बाद अब तक का सबसे बड़ा इलाका प्रभावित।
- देश में 19 लाख वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में झटके।
- देर रात वायु सेना के दो विमान 155 लोगों को सुरक्षित लेकर आए।
- 3 लाख विदेशी टूरिस्ट अभी नेपाल में फंसे हैं।
- भारतीय दूतावास का मकान भी ढहा
- काठमांडू का एयरपोर्ट बंद, कई उड़ाने प्रभावित
- 183 साल पुरानी नेपाल की कुतुबमीनार ढही।

भूकम्प का कारण :– इंडियन प्लेट के कारण हर साल 5 मिलीमीटर ऊपर उठ रहा है हिमालय; इसीलिए सबसे अधिक भूकम्प आते हैं नेपाल में।

नेपाल में 25.4.15 में आए भूकम्प से भारी तबाही हुई है और 1934 के बाद सबसे बड़ा भूकम्प माना जा रहा है। नेपाल में भूकम्प आते रहते हैं और इसीलिए उसे दुनिया में सबसे ज्यादा भूकंप संभावित इलाकों में एक माना जाता है। इतने भूकंप क्यों आते हैं, ये समझने के लिए हमें हिमालय को देखना होगा। बीबीसी के अनुसार इस क्षेत्र में पृथ्वी की इंडियन प्लेट (भारतीय भूगर्भिय परत) यूरेशियन प्लेट के नीचे जा रही है और इससे हर साल हिमालय पांच मिलीमीटर ऊपर उठता जा रहा है। इससे चट्टानों के ढांचे में एक तनाव पैदा हो जाता है। जब ये तनाव चट्टानों के बर्दाश्त के बाहर हो जाता है तो वे भूकंप आता है।

अभी दुनिया में कोई भी वैज्ञानिक ये अंदाजा नहीं लगा सकता है कि दुनियां में कब, कहाँ और कितनी तीव्रता वाला भूकंप आएगा, लेकिन वैज्ञानिक इतना जरूर मानते हैं कि हिमालयी क्षेत्र (Himalayan area) में बड़ा भूकंप आने की आशंका है। वैज्ञानिक प्रयास कर रहे हैं कि कोई ऐसा तरीका तलाशा जाये जिसमें भूकंप के आने की संभावना का पता लगाया जाए, लेकिन अभी इसमें कोई सफलता नहीं मिली है। (भास्कर, 26.4.2015)

बिहार की स्थिति (Situation in Bihar) **:-** बिहार में 24 घंटे मुश्किल के। दोहरा अलर्ट। बिहार के मौसम विभाग के अनुसार इस दौरान आंधी व भूकंप के झटके महसूस किए जा सकते हैं। नेपाल से सटे मोतिहारी, सीतामढ़ी, मधुबनी, सुपौल, अररिया, किशनगंज और दरभंगा जिलों में सेकेण्डरी झटके आने की आशंका है, पर इसकी तीव्रता अधिक नहीं होगी और उत्तर–पूर्वी जिलों में तेज बारिश के साथ आंधी तूफान की आशंका बनी हुई है।

भूकंप की तीव्रता (Intensity of Earthquake) :-

25.4. 2015 को समय	भूकंप की तीव्रता
11.41	7.9
12.15	6.6
12.26	5.7
1.50	5.6
2.25	5.7
2.45	5.8
3.00	5.6
6.15	5.7

शेष झटकों की तीव्रता रिक्टर स्केल पर 5 या इससे कम मापी गई। 24 घंटे में 17 झटके आ चुके हैं।

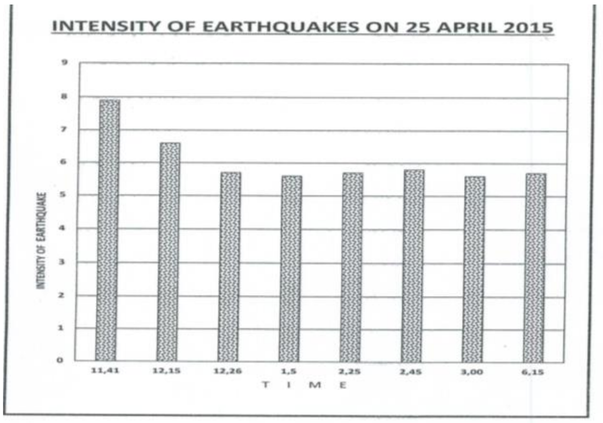

Fig. No. 21

प्रभाव एवं प्रबंधन :–

- फुलवारीशरीफ में दीवार गिरने से बच्ची व छज्जा गिरने से मजदूर की मौत
- घर से लगता है डर, लौटने को तैयार नहीं।
- नेपाल से लोगों को सुरक्षित वापस लाने के लिए रक्सौल के रास्ते पोखरा भेजी गई 50 बसें।
- काठमांडू भेजी गई 30 बसें, विदेशी नागरिकों की भी की जायेगी मदद।
- एंबुलेंस व दवाइयों के साथ 25 सदस्यीय डाक्टरों की टीम नेपाल रवाना, खाद्य पैकेट भी भेजे गये।
- नेपाल में छोटे–छोटे गाँव का अस्तित्व समाप्त होने का खतरा।

भूकंप से बचने का उपाय :– प्राकृतिक आपदाएं सार्वभौमिक सत्य है। पहले भी आती थी, आज भी आ रही हैं और आगे भी इनके आते रहने का अनुमान है। इंसानी कारस्तानियों के चलते इनकी प्रवृति और तीव्रता में आगे चलकर इजाफे के भी इंकार नहीं किया जा सकता। इनसे केवल सचेत रहकर ही जान–माल के नुकसान को कम किया जा सकता है। हाल ही में नेपाल और भारत के हिस्सों में आए जलजले (Earthquake) ने मानवता की चूलें हिला दी। त्रासदी ने अपनी अंतिम ताकत दिखाई और पुरी दुनिया को सकते में डाल दिया। अपने एक ही झटके से पूरी बस्ती को उजाड़ दिया। सबके पीछे छोड़ दिया, चित्कार, करूण क्रंदन और बेहाली और बेबसी।

हमने ऐसी आपदाओं से बचने के लिए आपदा प्रबन्धन तंत्र विकसित किए हैं। इसी के बूते कुछ दशक पहले ऐसे हादसों में मारे जाने वालों की संख्या का ग्राफ घटकर बहुत नीचे पहुँच चुका है। अब जरूरत है इस ग्राफ को शून्य करने की है। इसके लिए सरकार से लेकर, समाज तक को जागरूक होना पड़ेगा। ऐसी आपदाओं के समय जब आम लोग अपनी हिफाजत का हुनर खुद सीख जाएंगे तो सब कुछ ठीक होने में देर नहीं लगेगी। भवन निर्माण तकनीक से दुनिया के कई देशों में आपदाओं को शिकस्त देने का काम किया जा रहा है। भूकंपरोधी भवन निर्माण के पेशेवरों को इमारतों की जांच के लिए अधिकतर संपन्न करना चाहिए। निर्माण कार्यों के संबंध में कठोर प्रावधान किये जाने चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. रिसर्च जर्नल, आई. जे. आर. ई., एस.,एस., वोल्यूम–10, जनवरी 2020, पृ.150
2. एक अंश, दैनिक भास्कर, एक दैनिक सामाचार पत्र, गया से निष्कासित, 26.4.2015, पृ. 4
3. एक अंश, दैनिक जागरण, एक दैनिक समाचार पत्र, पटना से निष्कासित, 25.5.2015,पृ. 1
4. एक अंश, प्रभात खबर, एक दैनिक सामाचार पत्र, पटना से निष्कासित, 13.5.2015, पृ. 1
5. सिंह, सविन्द्र, 2015, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 387–88.
6. ज्योग्रफी और बिहार, वीकिपीडिया,

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

भारतीय संविधान में दलितों के राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ : एक विश्लेषण

डॉ. ज्ञान भारती
एम. ए. (राजनीति विज्ञान विभाग) पी.–एच. डी., मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

शोध–सार :– भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मुख्यधारा से लगभग पूर्णतः वहिष्कृत रहे दलितों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति अत्यंत दयनीय रही है तथा ये काफी लंबे समय तक अनेक निर्योग्यताओं एवं अशक्तताओं के शिकार रहे हैं। इनकी दुःस्थिति में सुधार लाने तथा इनके बीच सामाजिक राजनीतिक गतिशीलता को बनाने एवं बढ़ाने के उद्देश्य से शासन, सत्ता तथा विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक नेताओं द्वारा समय–समय पर प्रयास किए जा रहे हैं ताकि इनकी प्रस्थिति में सुधार हो सके। स्वातंत्र्योत्तर भारत में समाज की मुख्य धारा से कटे हुए इस दलित समुदाय को पूरे समाज से जोड़कर मुख्य धारा में शामिल करने तथा इनके बीच जागरुकता लाने हेतु विशेष प्रावधान किए गए। राजनीतिक चेतना को प्राप्त करके तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेकर अन्य समुदायों के साथ अपनी पहचान बना पाने में समर्थ होते हैं तथा अपनी राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थिति को भी ऊँचा करने में समर्थ होते हैं। दलितों को राजनीतिक अधिकार मिलने के साथ ही इनका लगातार सशक्तिकरण होता जा रहा है तथा समाज में इनकी पहचान बढ़ रही है।

शब्द कुंजी :– भारतीय संविधान, दलित, अधिनियम, गणराज्य, अनुच्छेद, उपबंध।

भूमिका :– उन्नीसवीं सदी के विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक सुधार आन्दोलनों एवं विशेषकर दक्षिण भारत से शुरू हुए दलित आन्दोलनों के फलस्वरूप कुछ जगहों पर दलितों के बीच थोड़ी बहुत चेतना जागृत होने लगी थी। वे धीरे–धीरे अधिकारों के प्रति सचेत होने लगे। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले द्वारा दलितों तथा पिछड़ों के लिए चलाए गए सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप वहाँ के दलितों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुयी जिसका राजनीतिक परिणाम 1923 ई. में देखने को मिलता है। इसी साल बम्बई विधान परिषद् ने एक प्रस्ताव पारित कर सभी सार्वजनिक सुविधाओं और संस्थाओं का उपयोग करने का समान रूप से अधिकार दलित वर्ग के लोगों के लिए भी प्रदान करने पर बल दिया जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया और तदनुरूप आदेश जारी कर दिया। इसी अधिकार के फलस्वरूप डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में सीधी कार्यवाही की पहली और क्रांतिकारी लड़ाई दलितों ने 1927 ई. में सार्वजनिक तालाब से पानी लेने के अधिकार को लेकर महाड़ में लड़ी और ढाई हजार अछूतों (दलित) के जत्थे ने उस तालाब से पानी पीया।[1]

देश की आजादी से पूर्व ही 'कांग्रेस' ने राष्ट्रीय स्तर पर दलितों की दयनीय हालत को महसूस किया था और उन्हें ऊपर उठाने का प्रयास किया था ताकि वे यथासंभव राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में प्रवेश कर सकें और उनकी स्थिति में सुधार हो सके। महात्मा गांधी उनकी बदतर सामाजिक–आर्थिक तथा शैक्षिक स्थिति में सुधार लाने के लिए काफी प्रयत्नशील रहे। दलित आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए कांग्रेस ने सन् 1917 ई. में ही एक प्रस्ताव पारित किया जिसके तहत् दलितों (अछूतों) पर रिवाजों द्वारा आरोपित नियोग्यताओं को दूर करने पर बल दिया गया।[2]

दलितों को सर्वप्रथम सन् 1919 के अधिनियम में एक राजनीतिक इकाई के रूप में स्वीकृति मिली जिसके तहत विधायिका में दलितवर्ग–प्रतिनिधियों के मनोनयन को मान्यता प्रदान की गई। उन दिनों दलित वर्गों के प्रतिनिधि होने के लिए स्वयं का दलित होना कोई बाध्यता नहीं थी और जो लोग दलितों के हितैषी के रूप में कार्य करते थे या उनके सुधार हेतु कार्य करते थे वे उन दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में मनोनित हो सकते थे। इस अधिनियम के तहत् तत्कालीन द्वितीय बिहार और उड़ीसा विधान परिषद् (1921–24) में दलित वर्ग के दो प्रतिनिधि पहली बार मनोनित किए गए इमानुएल सुख और विश्वनाथ कर। ये दोनों ही गैर–दलित वर्ग से आते थे। इसके बाद 1922 ई. में गणेशदत्त सिंह ने बिहार और उड़ीसा विधान परिषद् में एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें यह अनुशंसा की कि तमाम जिला बोर्डों एवं नगरपालिकाओं में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक सदस्य सरकार मनोनित करे। वे दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में दलित समुदाय के सदस्य को ही चाहते थे। उन्होंने अपने प्रस्ताव में कहा कि अगर नगरपालिकाएँ और जिला बोर्ड लोकप्रिय संस्था होना चाहती हैं तो दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व जरूरी है। प्रस्ताव पर वाद–विवाद में सदस्यों ने विभिन्न मत प्रकट किए और गणेशदत्त सिंह का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

गया।[3] बिहार में जिला बोर्डों और नगरपालिकाओं में दलित वर्गों के प्रतिनिधियों के मनोनयन की प्रक्रिया यहीं से शुरू होती है। हालांकि व्यवहारिक रूप में दलित वर्ग के लोगों की संख्या इन जगहों पर नाम मात्र की ही रही। इसके बाद भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत् गठित होने वाली बिहार विधानसभा में 'पूना पैक्ट' के अनुरूप दलितों के लिए 15 सीटें आरक्षित की गई। सन् 1937 के प्रथम बिहार विधानसभा चुनाव में इन आरक्षित सीटों से 15 दलित सदस्य निर्वाचित हुए। ये निर्वाचित दलित विधायक थे–श्री जगलाल चौधरी, जगजीवन राम, डॉ. रघुनंदन प्रसाद, बूँदी राम, रामबसावन रविदास, बालगोविंद भगत, शिवनंदन राम, कारू दुसाध, श्रीराम भगत, सुखाड़ी राम मधुव्रत, केश्वर राम, सुंदर महतो, राम बरस दास तथा जीतू राम।[4] 1937 ई. में डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में बने मंत्रिमंडल में दलितों के बीच से श्री जगलाल चौधरी को कैबिनेट मंत्री तथा श्री जगजीवन राम को संसदीय सचिव बनाया गया जो उस समय तक के इतिहास में दलितों का राजनीति में सबसे उच्च पद प्राप्त करने की घटना को परिलक्षित करता है। इसी तरह सन् 1946 ई. में गठित मंत्रिमंडल में भी दलितों के बीच से श्री जगलाल चौधरी को कैबिनेट मंत्री तथा भोला पासवान शास्त्री को संसदीय सचिव बनाया गया। इस तरह हम पाते हैं कि जैसे–जैसे भारत स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहा था वैसे–वैसे अल्प मात्रा में ही सही किन्तु दलितों को समाज तथा राजनीति से जोड़ने के कवायद धीरे–धीरे तेज हो रही थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग एक दशक पूर्व से दलितों को राजनीतिक रूप से विशेष अधिकार मिलने शुरू हो गए थे। और इनका प्रतिनिधित्व विधानसभा एवं मंत्रिमंडल में देखने को मिलने लगा था। विधानसभा में इनके लिए आरक्षित सीटों के चलते मंत्रिमंडल में भी इनका पदार्पन स्वाभाविक ही था। चूँकि स्वतंत्रता के पूर्व काल में सभी लोगों को मताधिकार प्राप्त नहीं था इसलिए चुनावों के दरम्यान सभी लोग हिस्सा नहीं ले पाते थे और आम आदमी उसमें भी दलितों की भागीदारी नगण्य ही रहती थी अतः सामान्य दलितों के बीच राजनीतिक चेतना न के बराबर थी या फिर काफी कम थी।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलितों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को बेहतर बनाने तथा राष्ट्र की मुख्य धारा से इन्हें जोड़ने के उद्देश्य से कई प्रावधानों का निर्माण किया गया। विकासशील देशों में संस्थागत सत्ता का मुख्य दायित्व संस्कृति संचरण हेतु समाज का संकल्पित रूप से तीव्रीकरण करना होता है।[5] स्वतंत्र भारत की ऐसी ही राजव्यवस्था है जिसका काम जनसमुदाय के प्रत्येक वर्ग को राजनीतिक–सांस्कृतिक रूप से उत्कृष्ट करना तथा राजनीतिक सहभागिता बढ़ाने हेतु करना है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में देश के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय; अभिव्यक्ति, विश्वास, धारणा, उपासना तथा सोचने की स्वतंत्रता एवं पद एवं अवसर की समानता की बात कही गई है तथा उसके द्वारा राष्ट्र की एकता तथा व्यक्ति की गरिमा को सुरक्षित रखने हेतु भारतवासियों के बीच भ्रातृत्व को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया गया है। स्पष्ट है कि न्याय, स्वतंत्रता एवं समता के बिना न तो बन्धुता आ सकती है और न ही भारत लोकतांत्रिक गणराज्य हो सकता है। भारतीय संविधान के शिल्पकारों ने सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक न्याय के लिए इसमें स्पष्ट प्रावधान किए हैं। जहाँ कोई भी लामबंद दल–संरचना विकसित नहीं हुई हो वहाँ वैकल्पिक रूप से संविधान साधन को काफी हद तक मजबूती से जोर दिया जाना चाहिए।[6] भारत में राजनैतिक रूप से काफी पिछड़े हुए दलितों को गतिशील करने की दृष्टि से संवैधानिक साधनों को भी अपनाया गया है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने ऐसे कार्यक्रमों की अपरिहार्यता को महसूस किया जो कि विशेष रूप से कमजोर एवं दलित वर्गों के विकास में सहायक हो सके। दलितों के लिए क्षतिपूरक कार्यक्रमों को आवश्यक समझा गया ताकि सदियों से वंचित उनकी संचित असक्तताओं की क्षतिपूर्ति की जा सके; परिणामस्वरूप इनकी सामाजिक–आर्थिक दशाओं को सुधारने हेतु भी विशिष्ट प्रावधानों का उल्लेख किया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के सभी नागरिकों को समान दृष्टि से देखने तथा सबों के सम्यक विकास पर बल दिया तथा 26 जनवरी 1950 को स्वतंत्र भारत में नया संविधान लागू किया गया। जाति, सम्पत्ति, शिक्षा आदि के आधार पर बिना भेदभाव किए भारत के सभी वयस्क नागरिकों को चुनाव में भाग लेने तथा मताधिकार का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त हुआ। दलितों के लिए मतदान के अधिकार के साथ–साथ लोकसभा तथा विधान सभाओं की सीटों में उनकी संख्या के अनुरूप आरक्षण की व्यवस्था की गई। इस तरह दलितों को राजनीतिक समता हासिल करने के अवसर प्राप्त हुए। उन्हें अपने उन मनचाहे राजनीतिक

दलों एवं उम्मीदवारों को वोट देने के अधिकार मिले जो उनकी समस्याओं को दूर करने के प्रयास कर सकें। सड़क से लेकर संसद तक में दलितों को आवाज उठाने के वे सारे अधिकार प्राप्त हो गए जो कि समाज के अन्य वर्ग के लोगों को प्राप्त हुए। इसके बावजूद चूँकि सभी क्षेत्रों में दलितों की स्थिति निम्न थी, अतः इनका विकास क्रमिक रूप से ही होता दिखता है।

दलितों के हितों की रक्षा करने तथा इन्हें प्रोत्साहन देने के लिए भारतीय संविधान में अनेक पूर्वोपायों का प्रावधान किया गया है जिन्हें निम्न तरह वर्गीकृत किया जा सकता है–

सुरक्षात्मक पूर्वोपाय :–

(क) शैक्षणिक पूर्वोपाय : अनुच्छेद–15 (4), 29
(ख) नियोजनात्मक पूर्वोपाय : अनुच्छेद–16 (4), 320(4), 335
(ग) सामाजिक पूर्वोपाय : अनुच्छेद 17, 25
(घ) बलकृत श्रम का उन्मूलन : अनुच्छेद–23
(ङ) सामाजिक न्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से सुरक्षा : अनुच्छेद–46
(च) अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन : अनुच्छेद–244, 339

राजनीतिक पूर्वोपाय :–

(क) लोकसभा एवं विधान सभाओं में दलितों के लिए स्थान का आरक्षण : अनुच्छेद–330, 332, 334
(ख) पंचायती संस्थाओं में दलितों एवं महिलाओं के लिए आरक्षण : अनुच्छेद–243 डी

विकासात्मक पूर्वोपाय :–

(क) दलितों का शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को उन्नत करने हेतु : अनुच्छेद–46
(ख) निःशुल्क कानूनी सहायता का प्रावधान : अनुच्छेद–39ए

भारतीय संविधान के भाग–III में मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है। इन अधिकारों को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी 'राज्य' को दी गई है। इन प्रावधानों के तहत सभी नागरिकों को यह आश्वासन दिया गया है कि धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकेगा। (अनुच्छेद–15)। यह प्रावधान विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि जाति संबंध के कारण पूर्व में दलित प्रदूषित तथा अधिकारों से वंचित माने जाते थे। इसी तरह, अनुच्छेद–16 सरकार के नियोजन के मामले में अवसर की समानता का आश्वासन देता है तथा अनुच्छेद–17 अस्पृश्यता का उन्मूलन करता है। अनुच्छेद–19 भाषण, अभिव्यक्ति, निवास, सम्पत्ति का अर्जन तथा विक्रय, व्यवसाय चुनने, स्वतंत्र साहचर्य एवं स्वतंत्र रूप से घूमने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद–25 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार देता है। अनुच्छेद–29 सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक अधिकारों की रक्षा करता है।

भाग–IV के अनुच्छेद–46 के अनुसार, राज्य द्वारा कमजोर वर्ग के लोगों विशेषकर दलितों तथा आदिवासियों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों को उन्नत करने एवं सामाजिक न्याय तथा सभी प्रकार के शोषणों से उन्हें संरक्षित करने के लिए विशेष ध्यान देने की बात है।

संविधान के भाग X का अनुच्छेद–244, संविधान में पाँचवीं अनुसूचित सम्मिलित करने जिसके तहत विभिन्न राज्यों (असम को छोड़कर) के अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातियों के प्रशासन का प्रावधान शामिल हो, के लिए प्रावधान करता है।

धारा XV के अनुच्छेद–325 के अनुसार किसी व्यक्ति के धर्म, जाति, लिंग के आधार पर उसके मत देने के अधिकार को नकारा नहीं जा सकता। इस तरह दलितों को अन्य सभी भारतीय नागरिकों के समान माना गया तथा चुनावी प्रक्रियाओं में खुलकर भाग लेने तथा अपने मनपसंद उम्मीदवार को मत देने की उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

संविधान के भाग XVI, अनुच्छेद–330 एवं 332 के तहत दलितों एवं आदिवासियों के लिए लोकसभा एवं राज्य की विधान सभाओं में उनकी जनसंख्या के अनुरूप स्थान आरक्षित किया गया है। इसी तरह, संविधान के तिहतरवें संशोधन के तहत अनुच्छेद–243 डी के अन्तर्गत पंचायती संस्थाओं में दलितों तथा आदिवासियों के लिए स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था की गई है।[7] अनुच्छेद–338 दलितों एवं आदिवासियों के लिए एक विशेष पदाधिकारी का प्रावधान करता है जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होगा। इस विशेष पदाधिकारी को 'अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का कमिश्नर' कहा गया है।

दलितों की संविधान प्रदत्त सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक विकास और सेवाओं में यथेष्ट भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए जो अनुसूचित

जाति–जनजाति आयुक्त के पद का सृजन किया गया था, वह पूरी तरह प्रभावी नहीं हो सका। 1978 ई. में बहुसदस्यीय अनुसूचित जाति–जनजाति आयोग का गठन किया गया। आयुक्त एवं आयोग का काम था आरक्षित समुदाय के कल्याणार्थ संचालित योजनाओं एवं सेवाओं में उनकी भागीदारी की समीक्षा, अनुश्रवण करना और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना।यह व्यवस्था अच्छी तरह कारगर सिद्ध नहीं हो सकी अतः अनुच्छेद–338 में संविधान के 41वें संशोधन के द्वारा 'अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का राष्ट्रीय आयोग' का गठन सन् 1990 ई. में किया गया। इस आयोग को जाँच करने तथा गवाहों का बयान लेने के लिए सिविल न्यायालय का अधिकार दिया गया है।[8]

उपर्युक्त संवैधानिक उपबन्धों के द्वारा दलितों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु विशेष कार्य किए जाने पर बल दिया जाता है। ये संवैधानिक उपबंध दलितों को विशेष रूप से सुविधा प्रदान करने के लिए अभिकल्पित हैं ताकि सरकारी नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों तथा विधायी निकायों में उनके लिए स्थान आरक्षित किए जा सकें। दलितों के बीच गतिशीलता की प्रक्रिया की परिचालन करने की संरक्षात्मक नीति स्वतंत्र प्राप्त में अनिवार्य हो गयी है। इस नीति ने दलितों में परिवर्तन की गति को काफी प्रभावित किया। पदच्युत समुदायों की दशा में सुधार लाने का यह एक प्रमुख कदम रहा है। इस संरक्षात्मक नीति के माध्यम से ही ऐतिहासिक रूप से वंचित एवं शोषित दलित जनसमुदायों को उदग्र गतिशीलता हेतु प्रोत्साहित किया गया है। वस्तुतः दलितों के ऊपर उठने का मुख्य कारण उनका शिक्षा, नौकरी आदि विभिन्न क्षेत्रों में तरक्की ही है।

आरक्षण की नीति के तहत पारम्परिक रूप से असुविधा प्राप्त तथा शोषित जन समुदायों की बेहतर जिन्दगी बनाने का ख्याल रखा गया है।[9] इस नीति में वंचितों एवं दलितों के विरुद्ध समाज के नकारात्मक भेदभाव को सुधारने और ठीक करने का प्रयास किया गया है। जन्म के आधार पर सामाजिक अशक्तता को मिटाने की दिशा में यह एक व्यापक उपाय है। सिद्धान्ततः संरक्षात्मक जाति मानदण्डों का उपयोग निम्न जातियों के लोगों को उन्नत करने के लिए शक्ति और अवसर प्रदान करने में किया गया है।[10] इस तरह, भारत में दलित वर्गों के लिए क्षतिपूरक कार्यक्रम संयुक्त राज्य जैसे पारम्परिक रूप से समानतावादी पाश्चात्य समाजों से भी आगे बढ़कर है।[11] यद्यपि सरकारी नौकरियों में दलितों के लिए आरक्षित सीटों के अनुरूप अभी भी नियुक्तियाँ नहीं हो पायी हैं, और विभिन्न संवर्गों एवं विभागों में 'बैक लॉग' देखने को मिलते हैं फिर भी तुलनात्मक रूप से इनकी भागीदारी काफी बढ़ी है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग के चतुर्थ प्रतिवेदन 1996–97 तथा 1997–98, खण्ड–1 के अनुसार जहाँ सन् 1965 ई. में केन्द्रीय सरकार की सेवाओं के प्रथम श्रेणी में 1.64 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी में 2082 प्रतिशत, तृतीय श्रेणी में 8.88 प्रतिशत तथा चतुर्थ श्रेणी में 17.75 प्रतिशत दलित प्रतिनियुक्त थे, वहीं 1995 ई. मेंइनकी भागीदारी बढ़कर प्रथम श्रेणी में 10.12 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी में 12.67 प्रतिशत, तृतीय श्रेणी में 16.15 प्रतिशत तथा चतुर्थ श्रेणी में (स्वीपर के अतिरिक्त) 21.26 प्रतिशत हो गयी है।[12] केन्द्र एवं राज्य सरकार की सेवाओं में आरक्षण के चलते दलितों की भागीदारी दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है और इनके बीच एक मध्य वर्ग उभर रहा है तथा ये लोग जागरूक होकर अन्य दलितों को भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ने में अपना योगदान दे रहे हैं। आरक्षण की सुविधा के बदौलत आज देश एवं प्रदेश के दलितों की स्थिति बदली है तथा वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए हैं तथा उनमें संघर्ष करने की शक्ति का भी संचार हुआ है।

लोक सभा तथा विधान सभाओं की सीटों में आरक्षण की व्यवस्था ने भी दलितों की राजनीतिक अभिरुचि को विशेष रूप से जागृत करने का काम किया है। जगजीवन राम, रामबिलास पासवान, मायावती आदि दिग्गज दलित नेता आरक्षित सीटों से ही विजयी होते रहे हैं तथा राष्ट्रीय स्तर के सशक्त नेता बन सके हैं। वर्तमान राजनीति में रामविलास पासवान तथा मायावती के नेतृत्व को उच्च वर्ग के लोग भी स्वेच्छापूर्वक स्वीकारने लगे हैं जिससे दलितों के आत्मसम्मान में वृद्धि हुयी है। इसी तरह विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं एवं स्थानीय निकायों के चुनाव में सुरक्षित सीटों से काफी संख्या में दलित प्रत्याशी विजयी हुए हैं और वे समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इससे विभिन्न वर्ग के लोगों के बीच सामाजिक, राजनीतिक अन्तर्क्रिया विकसित हुयी है। दूसरी ओर, राज्य सभा तथा विधान परिषद् में भी दलित नेता विजयी हो रहे हैं जहाँ उनके लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है। वर्तमान में बिहार से राज्यसभा सदस्य के रूप में डॉ. फगुनी राम (कांग्रेस) तथा विधान परिषद् सदस्य के रूप में राजेश राम (निर्दलीय), परमात्मा राम (निर्दलीय), कामेश्वर चौपाल (भाजपा), डॉ. ज्योति (कांग्रेस), गीता कुमारी (राजद)

आदि दलित जातियों के लोग निर्वाचित होकर प्रतिनिधित्व कर रहे हैं लेकिन इस जगहों पर संख्या के अनुरूप इनका प्रतिनिधित्व नहीं दिखता है।[13]

निष्कर्ष :— संक्षेप में कहा जा सकता है कि आरक्षण की सुविधा सहित अन्य संरक्षात्मक नीतियों एवं राजनीतिक अधिकारों के फलस्वरूप दलितों की स्थिति बदली है तथा वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए हैं तथा उनमें संघर्ष की शक्ति का भी संचार हुआ है। साथ ही, वर्तमान में दलित भारतीय सामाजिक—राजनीतिक व्यवस्था के अभिन्न अंग बन गए हैं तथा इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में क्रमिक रूप से वृद्धि हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :—

1. कँवल भारती—'दलित विमर्श की भूमिका', इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृ.—59—60
2. बी. कुप्पुस्वामी— 'सोशल चेंज इन इंडिया', वाणी एजुकेशनल बुक्स; साहिबाबाद, 1972, पृ.—208
3. बिहार एण्ड उड़ीसा लेजिस्लेटिव काउन्सिल—31 जनवरी, 1922, खण्ड—IV, पृ.—422—33 (प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत की पुस्तक स्पर्ग पर धावा : बिहार में दलित आन्दोलन से उद्धृत)
4. राधानंदन झा — 'बिहार विधानमंडल : उद्भव और विकास; शारदा प्रकाशन, पटना—1998
5. जे. पी. नेट्ल—पॉलिटिकल मोबिलाईजेशन : ए सोशियोलॉजिकल एनालिसिस ऑफ मेथड्स एण्ड कॉन्सेण्ट्स'; फेबर एण्ड फेबर लिमिटेड, लंदन—1967, पृ.—70
6. पूर्वोक्त, पृ.—232
7. 'ग्रास रूट डेमोक्रेसी इनकारनेट—ए रिपोर्ट ऑन इलेक्शन टू द पंचायत्स एण्ड म्यूनसपलिटीज इन बिहार', राज्य चुनाव आयोग, बिहार, दिसम्बर, 2002, पृ.—63
8. जियालाल आर्य—'आरक्षण और राज्य का दायित्व', प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली—2000; पृ.—23
9. एम. एन. श्रीनिवास—'नेशनल बिल्डिंग इन इंडिपेंडेंट इंडिया', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1976
10. लीलाह दुश्किल—शिड्यूल्ड कास्ट पॉलिटिक्स, महार', जे. माइकल (सं.), 'द अनटचेबुल्स इन कंटेपोरेरी इण्डिया', द युनिवर्सिटी ऑफ अरिजोना प्रेस, ट्यूसकॉन, 1972
11. एम. ग्लेन एण्ड एस. बी. जॉनसन—'सोशल मोबिलिटी एमंग अनटचेबुल्स', गिरीराज गुप्ता (संपादित), 'कोहेनन एण्ड कंफ्लिक्ट इन मॉडर्न इंडिया', विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली—1978
12. 'नेशनल कमिश्नर फॉर शिड्युल्ड कास्ट्स एण्ड शिड्यूल्ड ट्राईब्स', फोर्थ रिपोर्ट, 1996—97 एवं 1997—98 (वॉल्यूम—1), पृ.—14
13. पूर्व केन्द्रीय मंत्री डॉ. संजय पासवान के अनौपचारिक बातचीत पर आधारित, पृ.—9

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 2020

कजरी गीतों में साहित्कारों का विचार एवं विभिन्न भाषाओं में रचनाकार के कजरी गीत

डॉ. बीणा पाण्डेय
ति. मां. भागलपुर वि., भागलपुर, बिहार

कीवर्ड :— साहित्यु, साहितिक कजरी गीत, निर्गुण रचित कजरी गीत, कजरी की ककहरा, अमीर खुसरो रचित कजरी गीत।

सारांश :— विश्व की सबसे पुरानी संस्कृति सनातन संस्कृति है। जब हम भारतीय सभ्यता की बात करते है तो कजरी का साहित्य का विश्लेषण एक महत्वपूर्ण विषय है। जैसा कि साहित्य नाम से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा से साहित्य का जन्म हुआ है। अर्थात् साहित्य शब्द का साधारण अर्थ है सहित होना।

कजरी साहित्य का विषय साहित्यकारों की रचनाओं से रहित है। कजरी गीत लोक गीत के अन्तर्गत होती है, लोक गीत साहित्य में ''कजरी'' को मुक्तक गीतों के अन्तर्गत रखा गया है। कजरी गीतों के साथ एवं लोक गीतों के अन्तर्गत झूला, सावन, बारहमासा, चौमासा, मलार आदि गीत भी आते है, किन्तु कजरी गीतों का महत्व निर्विवाद है। मात्र लोक साहित्य ही नहीं, संत साहित्य, वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य या अन्य भाषाओं का कोई भी साहित्य पावस की फुहारों से अछूता नहीं रहा है। कजरी गीतों में जो रचना होती है उसके संवाद में प्रेमलीला, रासलीला, श्रृंगार भावना, विरह भावना, धार्मिक भावना, राष्ट्रीय भावना, श्रम जीवियों की दशा पर कजरी हांस—परिहास पर कजरी, सामाजिक कुरीतियों पर कजरी, कजरी गीतों में ननद—भावज का संबंध, भाई—बहन के प्रेम पर कजरी एवं राधा—कृष्ण पर आधारित कजरी।

प्रस्तावना :— कजरी में जैसी भावनात्मक अभिव्यक्ति थी, सुन्दर शब्दों का चयन था और लोकप्रियता थी, इसी कारण उसकी ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ था, किन्तु शनैः—शनैः इसका श्रृंगार वर्णन छिछला होकर अशलील होने लगा। तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी मण्डली के अन्य कवियों ने श्रृंगार की उच्छश्रृंखला अभिव्यक्ति पर नियंत्रण किया और इसे स्वस्थ्य दिशा देने के लिए शिष्ट कजरी गायन आयोजित करने के साथ स्वंय भी कजरी लिखना आरंभ किया। इस साहित्यिक परम्परा के साथ साहित्य, संगीत एवं सुसंस्कृत समाज में कजरी को पुनः प्रतिष्ठा मिली।[1]

अखरावट या ककहरा शैली में कजरी :— कजरी साहित्य में अखरावटी (अक्षरावृत्ति) कविता का रूप हमें कबीर की चौतीसी रमैनी एवं जायसी के अखरावट में देखने को मिलता है। बहुत सी श्रेष्ठ कजरियाँ इस शैली में उपलब्ध है —

कहा सुयोधन ने दुशासन लावों द्रुपदी की चीर
खौफ किया न लगा खींचने साड़ी को बेपीर
गयी सहम रानी बोली क्या तेरा गया विचार
घोर पापी कर रहें दुशासन नारी को मक्कार

उक्त पंक्तिँ क्रमशः क, ख, ग, घ व्यंजनों से आरम्भ होकर म वर्ण तक जा सकती है। अनुनासिक वर्ण छूट जाते हैं।[2]

'ककहरा' कजली, जिसमें 'क' से 'ज्ञ' तक प्रत्येक अक्षर पर पंक्तियाँ लिखी गई है, से लेकर 'अधर' कजली तक लिखी गई है, जिसमें प वर्ग वर्णों का प्रयोग नही किया जाता।[3]

कजरी में अनुप्रास :— कहीं कहीं पूरा ककहरा अनुप्रास अंलकार में लिखा गया है। ककहरा के जिस अक्षर से पंक्ति का आरंभ होता है पूरी पंक्ति में उसी अक्षर का अनुप्रास होता है—

करत किलकिला कंदर से कहँ—कहाँ के अस लश्कर
खड़े खरारी लखे लखन खनखन सेना खर खर।
गगन जाम गर्जते ग्राह गिर गहे अंग आगर
घहर घहर घनघोर घटा घाटी घाटत जाहार।

इन पंक्तियों के आरंभ में क वर्ग का अनुप्रास है, अन्त में भी कर, खर, गर, घर में क, ख, ग, घ, अक्षरों के प्रयोग का चमत्कार है। अ, श और ह वर्णों का अनुप्रास बहुत कम देखा जाता है। किन्तु कजरी में यह भी देखने को मिलता है—

अस्ति अक्षर आख्य आभा आप्त आकर्षक रहैं
ले ललित लालित्य लखि लखि मोद मन श्रोता लहैं।
शब्द शुचि शैली सुशिक्षक जानि जन शिक्षा गहैं
हुवा हरि हिव का सेहर हुल्लड़ से खाली दिल रहैं।

इन कजरियाँ में एक अक्षर का अनुप्रास देर तक चलता है, जिसे ककहरा से बंद किया जाता है —

नीक निपुन नूतन नरतत आनन में छुटी अलकन की छटा
निखरि नवीन निरूपन शोभा को निज मन परखन

की छटा
नगद निरखि भृकुटिन नयनन से धनु सूना उगै गगन की छटा
निघटे नीरज नयन खंजन वकुर जन कृषि सघन की छटा।

उक्त पद में 'न' के अनुप्रास के अलावा आरंभ तथा अन्त में ककहरा का बन्द है– नीक (न + क), निखरि (न + ख), नगद (न + ग), निघटे (न + घ), और अंत में अलकन (क + न), परखन (ख + न), गगन (ग + न), सघन (घ + न)। अनुप्रास की यह छटा निश्चय ही बड़े कवियों की काव्य–कला की समानता कर सकती है।[4]

कजरी गीतों में साहित्यकारों में अमीर खुसरों ने भी कजरी गीतों की रचना की है। अमीर खुसरो ने .फ़ारसी और हिन्दी को मिलाकर रेख़ता में रचना की है। अभी तक कोई

भी एक रचना अनेक भाषाओं में पूरी नही की गई है, परन्तु कुछ एक कजरियाँ ऐसी भी है जिनमें एक साथ अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, चीनी, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी अनेक भाषाओं का रोचक और चमत्कारिक प्रयोग है। इस सब में कुछ अरबी भाषाओं के विद्वान ने शब्दों की संख्या द्वारा व्यंजित करने की पद्धति भी दिखलाई है। अमीर खुसरो की एक कजरी गीत प्रस्तुत है[5] –

''अम्मा मेरे बाबुल को भेजो जी की सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुढ़ा री कि सावन आया।
अम्मा मेरे भैया को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया।
अम्मा तेरे मामा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा मामा तो बाँका री कि सावन आया''।।[6]

कजरी की रचनाओं में साहित्यकार के जो भाव लिखे होते हैं वे बड़े मनमोहक होते हैं। इन कजरी गीतों में निर्गुण, सगुणोंपासना गंभीर भाव, रस, साहित्यिक काव्य सौन्दर्य, यमक श्लेष, उपमा और अनुप्रास प्रधान होती है।

कजरी गीतों की रचना भारत के विभिन्न जगहों पर है एवं अनेक भाषाओं में भी कजरी गीत गायी जाती है। जैसे–पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, सिन्ध, काश्मीर, चम्बा, कांगड़ा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, गुजरात, बंगाल, नेपाल, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि। इन जगहों की अलग–अलग भाषाओं में कजरी गीत होते है। साहित्यकारों ने इन कजरियों गीतों की रचनाएँ की है। राजस्थान में हाड़ौती लोकगीत है। मध्य प्रदेश में बुन्देली एवं बघेली, बिहार में भोजपुरी, खड़ीबोली, मगही, मैथिली, अंगीका एवं वज्जिका। मगध में मगही भाषा में कजरी, उत्तर प्रदेश में अवधी, गढ़वाली, ब्रजभूमि, कुमाँऊ, बनारसी एवं मिर्जापूरी कजरी मिलते है तथा कजरी गीतों के विभिन्न साहित्यकार एवं रचनाकार है, जैसे– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अमीर खुसरो, बदरी नारायण 'प्रेमधन', भर्त्तृहरि, लक्ष्मी सखी, अम्बिकादत्त व्यास 'सुकवि', भैरो कवि, भगेलू कवि, रूपन कवि, बुद्धू कवि, द्विज बलदेव, श्रीधर पाठक, रसिक किशोरी, सैयद अली मोहम्मद 'शाद', बहादुर शाह ज़फर आदि।

कुछ रचनाकार के साहितियक कजरी प्रस्तुत है–

लक्ष्मीसखी :– ये कबीर के शिष्य थे। आध्यात्मिक एवं निर्गुण रचनाओं के रूप में इन्होंने चौमासा एवं झूला गीत लिखे हैः–

''लागेला हिंडोलवा से अमरपुर में
झूलेला सन्त सुजान।
चलु सखियन सुन्दर वर देखे
खोलि लेहु गगन पेहान।

भैरोकवि :– ये निर्गुण–पंथी संतकवि है। इन्होंने भी निर्गुण कजरियों की रचना की हैः–

नैहरे मे रहलू खेललू गुड़ही मउनिया
मउजिया मारे ताना रे साँवलिया।

रूपन कवि :– रूपन कवि की एक निर्गुण रचना इस प्रकार हैः–

सुगना बहुत रहे होसियार
बिलइया बोलता बाटे ना।[7]

बुन्देली लोकगीत कजरी :–

अंधेरी घिर आई धीरे–धीरे कांसे आई वर्षा कां से आये
साजन धीरे–धीरे अंधेरी पूरब से आये बादर
पश्चिम से आई वर्षा उत्तर से आये साजन धीरे–धीरे............
अंधेरी घिर आई धीरे–धीरे कांसे आई वर्षा का से आये
कैसे आये बादर हो कैसे आई वर्षा
हाँ कैसे आये साजन धीरे–धीरे।
अंधेरी घिर आई धीरे–धीरे कांसे आई वर्षा का से आये

गरज के बादर बरस के आई वर्षा
हँसत आये साजन धीरे–धीरे।
अंधेरी घिर आई धीरे–धीरे कांसे आई वर्षा का से आये[8]

रसिक किशोरी रचित खड़ी बोली लोकगीत कजरी :–

देखो सावन में हिन्डोला झूलै मंदिर में गोपाल
सोना रूपा बना हिंडोला, पलना लाल निहार।
जंगाली रंग, सजा हिंडोला, हरियाली गुलज़ार।।
भीड़ भई है भारी, दौड़े, आवै, नर और नार।
सीस महल का अजब हिंडोला, हरियाली गुलज़ार।।
फूल काँच मेहराब जु लागी पत्तन बांधी डार।
श्रसिक किशोरी कहै सब दरसन करते खूब बहार।।[9]

द्विज बलदेव द्वारा रचित सावन कजरी गीत :–

आई सावन की बहार मोरे बारे बलमू
छाई घटा घनघोर बन में, बोलन लागे मोर।
रिमझिम पनियां बरसे जारे मोरे प्यारे बलमू।।
धानी चदर सिंआव, सारी सबज रंगाव।
वामें गांटवा टकवा, मोरे बारे बलमू।।
बलदेव क्यों उदास पुनि अइहों तोरे पास।
मानों मोरा विसवास, मोरे बारे बलमू।।

बदरी नारायण 'प्रेमधन' द्वारा रचित सावन कजरी गीत :–

अजहू न आयल तोहार छोटी ननदी
बरसत सावन तरसत बीता, कजरी के आइन बहार। छोटी ननदी०।।
सब सखि झूला–झूलन सावन मां गावत कजरी मलार। छोटी ननदी०।।
पी–पी रटत पपीहा नाचत मोर किए किलकार। छोटी ननदी०।।
प्रिया प्रेमधन बिन एको छन लागैला जियरा हमार। छोटी ननदी०।।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र द्वारा रचित सावन कजरी गीत :–

हरि बिन जियरा मोरा तरसे, सावन बरसें घनाघोर।
रूम झूम नभ बादर आए, चहुँ दिसी बोले मोर।
रैन अंधेरी रिमझिम बरसै, डरवे जियरा मोरा।।
बैठ रैन बिहाय सोच में तड़प तड़प हो भोर।
पावस बीत्यौ जात, श्याम अब आओ भवन बहोर।।
आओ श्याम उर सोच मिटाऔ, लागौं पैया तोर।
हरिजन हरिहिं मनाय 'हरिश्चन्द्र' विनय करत कर जोर।।

श्रीधर पाठक द्वारा रचित सावन कजरी गीत :–

हरि संग डारि–डारि गल बहियाँ झूलत बरसाने की नारि।
प्रेमानन्द मगनमतवारी सुधि बुधि सकल बिसारी।
करि आलिंग प्रेमरस भीजत अंचल अलक उधारी।
टूटे बोल हिंडोल उठवति रुकि–रुकि अंग संवारि।।
श्रीधर ललित जुगल छबि उपर डारत तन–मन वारि
हरि संग डाल–डाल गल बहियाँ, झूलत बरसाने की नारि।।[10]

सावन ऋतु पर आधारित हरिचन्द्र द्वारा लिखित एक सावनी गीतः–

सावन गीत
घेरि घेरि घन आए छाय रहे चहुँ ओर,
कौन हेत प्राननाथ सुरति बिसारी है।
दामिनी दमक जैसी जुगनूं चमक तैसी,
नभ में विशाल बग पंगति सँवारी है।
ऐसी समै 'हरिचन्द' धीर न धरत नेकु,
बिरह बिथा तै होत व्याकुल पियारी है।
प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह,
सावन की रात किधो द्रौपदी की सारी है।। 2।।

अवधी भाषा पर आधारित कजली गीत :–

हरे रामा बने कन्हैया बैद नंद के लाला रे हरि।
दवा बटोरी भरि कै झोरी, घूमै बिरिज की खोरी रामा,
हरे रामा कोई सखी बीमार, बिरिज की बाला रे हरि।
सुनी गुहारी बिरिन की नारी, बैद को लीन पुकारी रामा,
हरे रामा परी सखी बीमार, हाल बेहाला रे हरि।
पकरि कलाई, कुँवर कन्हाई, जतन से दियो दबाई रामा,
हरे रामा चौंकि परी राधा प्यारी, हँसे ब्रिज बाला रे हरि।[11]

कजरी गीतों की मनमोहक झलक ब्रज की भूमि में देखने को मिलती है। ब्रजभाषा में बोली जाने वाली यहाँ की कजरी गीतों में मधुर स्वरों की धारा बहती है। मानों की साक्षात् भगवान हमारे सामने हैं। बुन्देली क्षेत्र में भी कजरी गीतों का संगम है। बुन्देली क्षेत्र की भाषा की कजरी गीत अत्यंत मनमोहक है।

कजरी गीतों के लिए कई प्रकार के संग्रह चर्चित है, जिनमें मिर्जापुरी कजरी, मिर्जापुरी घटा, सावन–फटाका, झूला–प्रमोद, सकीर्त्तन, कजली कौमुदी, सावन–दर्पण, सावन का गुलदस्ता, सावन का सवाल आदि उल्लेखनीय है।

कुछ कजरी गीतों में साहित्यिक शब्दों का परिचय मिलता है जो ब्रज भाषा में रचित है और इसमें राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन रचनाकार ने बखूबी किया है:–

ब्रज के लोक गीत :– वर्षा गीत

मेघ मालनु ते कहयौं ललकारि,
ब्रज पै बरसै पनियां ढार।
उमड़ि घुमड़ि ब्रज घेरिकें, उठी घटा घनघोर।
चमचम चमकै बीजुरी, चौंके ब्रज के मोर।
मुसकधार जलु रेला के संग सुरपति बरसायौ।
धरि नख पै गिर्राज नामु गिरधारि है पायौ।[12]

सावन गीत :–

मोई नागिन बनि के डसि गई, मोहन तेरी बाँसुरिया।
मैं अपने महल में सोय रही, वो बाजी बाँसुरिया।
मेरे लगी करेजा में तीर, जिगर में चुभि गई बाँसुरिया।
रिमझिम रिमझिम मेघ बरसे चमके बीजुरिया।
मैं कैसे आऊँ स्याम, हमारी भीजै चुँदरिया।
सासउ सोवै ससरऊ सोवै, जागै ननदुलिया।
मैं कैसे आँऊ स्याम, हमारी बाजै पाइलिया।[13]

मल्हार गीत

अरी बहना झूला तौ झूले घनस्याम
वृन्दावन झूला पड़ि गयौ।
शोभा तौ कैसी बहना बनि रही,
एजी कोई देख रही है ब्रजबाम।
कान्हा के सिर पे मोर मुकुट है,
मेरी बहना–नुपुर राधा के नाम[14]

गोकुल कवि की रचना पर आधारित यह वर्षा गीतः–

घूमि घटा घन की गरजै चमकै चपला क्षिति छवै फिटै फेरि।
शोर करै चहुँ ओर ते मोर जुरि करै क्वैलिया कूक घनेरी।।
गोकूल सीरौ समीर लगै केहि भांति सो धीर रहेंगे धरेरी।
मोहि बिना यह सावन की निशि भावन कैसे बिताय है एरी।।

यह कजरी गीत का उल्लेख यह है कि एक ओर निराशा के ऐसे भाव जहाँ विरही के मानस को झकझोरते हैं, वहाँ दूसरी ओर कोई प्रिय के प्रेम में अनंत विश्वास रखता हुआ; पावस के मादक वातावरण में वे कैसे बिताते होंगे इसकी सोच करता है। एक नायिका अपनी सखी से कहती है :–

प्राणप्रिया मिलि है मन तू न तरस न तरस न तरस न तरस।
छिन एक क्षमा कर मैन हिये न सरस न सरस न सरस न सरस।
रसिकेश अरे विरहा अब तो न दरस न दसर न दरस न दरस।
इत आवहि प्यारी घटा तब लौ न बरस न बरस न बरस न बरस।[15]

कालिदास की कवि की रचित कजरी गीत :–

सावन की रैन मन भावन गोविन्द बिन देत दुख झारन में
झिलमिल के शोर हैं।
कालिदास प्यारी अँधियारी में चकित होत
उमड़ि–उमड़ि घन घहरत घोर है।
सूने कुंज मंदिर में सुंदरि बिसूरै बैठि
दादुर ये दहक सी लेत चहूँ ओर है।
हिय में वियोगिन के विरह हूक उठी
कूक उठी कोयल कुहूक उठै मोर है।

इन गीतों में विरह की भावना झलकती है। दादूर कोकिल व मोर का शब्द उसकी वेदना को तिव्रतर करना है, हृदय में अग्नि सी जलने लगती है।[16]

निष्कर्ष :– अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इस प्रकार के साहित्यिक एवं रचनाओं से रचित कजरी गीतों में प्रेम, वियोग, नोंक–झोंक एवं हास–परिहास आदि। सभी भावों से भरी कजरी गीतों की एक लम्बी श्रृंखला है। शायद ही ऐसा विषय बचा होगा, जिस पर कजरी न लिखी गई हो।

अस्तु वैसे तो कजरी का साहित्य में अनेक रचनाए हुए, परन्तु इन रचनाओं में एक बात साफ है कि सावन का वर्णन आवश्यक ही है क्योंकि कजरी गान, सावन (ऋतुगीत) बादल, वर्षा आदि से होगा।

वस्तुत कजरी गीतों का वर्ण्य विषय प्रेम है। इन गीतों में श्रृंगार रस की अजस्त्र धारा प्रवाहित है।

संदर्भ–सूची :–

1. ''कजरी'', डॉ0 शांति जैन, पृष्ठ संख्या–76
2. ''कजरी'', डॉ0 शांति जैन, पृष्ठ संख्या–66
3. ''पापुलर मास्टर गाइड'', आर0 गुप्ता, पृष्ठ संख्या–68
4. ''कजरी'', डॉ0 शांति जैन, पृष्ठ संख्या–68
5. ''कजरी'', डॉ0 शांति जैन, पृष्ठ संख्या–68
6. ''कजरी'', डॉ0 शांति जैन, पृष्ठ संख्या–119
7. ''कजरी'', डॉ0 शांति जैन, पृष्ठ संख्या–80
8. ''संगीत मैनुअल'', डॉ0 मृत्युंजय शर्मा, पृष्ठ संख्या–290
9. ''स्वर वाद्यों के वादन में ठुमरी और धुन प्रचलन एवं महत्व'', डॉ0 सीमा रानी वालिया, पृष्ठ संख्या–223
10. ''कजली कौमुदी'' पत्रिका संग्रहकर्त्ता–श्री कमलनाथ अग्रवाल, सम्पादक– काका हाथरस जुलाई–1945 के अंक में
11. ''भोजपुरी लोक गीतों में संस्कार'', श्री अखिलेश्वर सिन्हा, पृष्ठ संख्या–98
12. ''रीतिकाव्य संग्रह'', डॉ0 जगदीश गुप्त, पृष्ठ संख्या–380
13. ''अवधी लोकगीत'', डॉ0 विद्यया सिंह, पृष्ठ संख्या–59
14. ''ब्रज और बुन्देली लोकगीत में कृष्ण कथा'', डॉ0 शालीग्राम गुप्त, पृष्ठ संख्या–22
15. ''ब्रज और बुन्देली लोकगीत में कृष्ण कथा'', डॉ0 शालीग्राम गुप्त, पृष्ठ संख्या–258
16. ''ब्रज और बुन्देली लोकगीत में कृष्ण कथा'', डॉ0 शालीग्राम गुप्त, पृष्ठ संख्या–267

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

उच्च शिक्षा में संलग्न महिला एवं पुरुष खिलाड़ियों की समस्याओ का तुलनात्मक अध्यन, बैतूल जिले के सन्दर्भ में

नीरज खंडागले
रिसर्च स्कॉलर रविंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.)
डॉ. मनोज पाठक
रविंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.)

परिचय :– लिंग समानता समाज में शुरू से ही एक मुद्दा रहा है। इतिहास में, महिलाओं को रिश्तों, उनके करियर, शिक्षा और एथलेटिक अवसरों में समानता के मुद्दों का सामना करने के कई उद्धरण मिल सकते हैं। आज खेल में महिलाओं के सामने आने वाले मौजूदा मुद्दे, संबंधित मुद्दों के आसपास के शोध खेल में लिंग समानता, और इस क्षेत्र में आगे के शोध के लिए निष्कर्षों और वर्तमान सिफारिशों पर चर्चा करने के लिए।

खेल एक युवा व्यक्ति के जीवन के सबसे महत्वपूर्ण समय के दौरान शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं। खेल के भौतिक लाभों पर कई अध्ययन किए गए हैं, और आश्चर्य की बात नहीं है कि परिणाम काफी हद तक सकारात्मक हैं। उदाहरण के लिए, सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन के यूथ रिस्क बिहेवियर सर्वे के शोधकर्ताओं ने पाया कि उच्च शिक्षा में खेलों में भाग लेने वाले छात्रों के उन गतिविधियों में शामिल होने की संभावना कम होती है जो उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं, जैसे धूम्रपान और शराब पीना। इसके अलावा, उन्होंने पाया कि खेल भागीदारी मोटापे या टाइप 2 मधुमेह की संभावना को कम करती है, जो आमतौर पर शारीरिक गतिविधि की कमी से जुड़ी होती है। शारीरिक स्वास्थ्य के अलावा खेलकूद में भाग लेने से मानसिक स्वास्थ्य को भी बढ़ावा मिलता है। अकादमिक और सामाजिक दोनों रूप से अच्छा प्रदर्शन करने का तनाव छात्रों के लिए भारी बोझ हो सकता है। हालांकि, खेलों में भाग लेने से, छात्रों को न केवल उस तनाव को दूर करने के लिए एक आउटलेट मिलता है, बल्कि उनके मानसिक स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।

शारीरिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी का सकारात्मक प्रभाव खेल की भूमिका को हमेशा स्वीकार किया गया है, क्योंकि खेल में भागीदारी और इसके लाभों की प्राप्ति की भूमिका में भिन्नता है। खेल की भूमिका के बारे में सामान्य समझ सकारात्मक रही है और इसे रोजमर्रा की जिंदगी में मानव के अनुकूल जुड़ाव माना जाता है। खेल और शारीरिक गतिविधियों में भाग लेना महाविद्यालय स्तर पर प्रतिभागियों की शैक्षणिक और सामाजिक क्षमता में सुधार के लिए बहुत उपयोगी है।एक खिलाड़ी होने के नाते, कई खिलाड़ियों ने विशेष रूप से महाविद्यालय स्तर पर सर्वश्रेष्ठ शैक्षिक परिणाम दिखाए हैं६। कई संस्थानों के प्रमुख खेल गतिविधियों को समय और वित्तीय संसाधनों की बर्बादी मानते हैं, इसलिए वे हमेशा इस संबंध में असहयोग या बहुत कम रुचि दिखाते हैं।

शोध प्रक्रिया :– विषयो का चयन

शोधकर्ता ने “simple random technique का इस्तेमाल किया, बैतूल जिले के शाश्कीय एवं अशाश्कीय महाविद्यालयों से १८० छात्रों का चयन किया गया है। १८० छात्रों को ६० महिला छात्र एवं ६० पुरुष छात्रों के २ चरो में विभाजित किया गया है।

यंत्र :– शोधकर्ता द्वारा उच्च शिक्षा में उच्च षिक्षा में संलग्न खिलाड़ियों की वास्तविक समस्यायों पर आधारित एक प्रश्नावली विकसित की और डेटा संग्रह के लिए उपयोग किया। प्रश्नपत्र में 10 प्रश्न थे। प्रश्नावली आरडीवीवी विश्वविद्यालय जबलपुर के विशेषज्ञों द्वारा सत्यापित की गई । इस प्रश्नावली की विश्वसनीयता 0.89 पाई गई।

साधन का प्रशासन :– उत्तरदाताओं को प्रश्नावली वितरित करने के उपरांत एवं दिए गए समय के बाद, उत्तरदाताओं से भरे हुए प्रश्नावली एकत्र किए गए , प्रश्नावली प्रतियों के वितरण के दौरान शोधकर्ता उत्तरदाताओं को प्रश्नों को पूरी तरह से समझाया गया है ।

विश्लेषण :– डेटा विश्लेषण के उद्देश्य के लिए अनुसंधान सांख्यिकी माध्य, मानक विचलन, ज–सांख्यिकी। टी–सांख्यिकी का उपयोग दो साधनों के बीच के अंतर को जांचने के लिए किया जाता है जैसे

कि पुरुष और महिला के मामले में। डेटा की प्रस्तुति और विश्लेषण किया गया है।

परिणाम

तालिका 1 उच्च शिक्षा में संलग्न महिला एवं पुरुष खिलाडियों की समस्याओं का तुलनात्मक अध्यन n=178

Gender	Mean	SD	t	p
Male	6.31	0.91	0.8	>0.9
Female	5.93	0.83		

उपरोक्त तालिका में प्रस्तुत आंकड़ों में समूहों के बीच सार्थक अंतर नहीं देखा गया। प्राप्त आंकड़ों से ज्ञात होता है कि पुरुष खिलाड़ी का औसत स्कोर 6.31 मानक विचलन = 0.91 है, जबकि महिला खिलाड़ियों का औसत स्कोर 5.93 और मानक विचलन = 0.83 है। ‘श्जश परीक्षण के परिणामों ने श्जश = 0.80, ‘श्चश 0.05 को 0.05 स्तर पर कम पाया जो दर्शाता है की दोनों चरो में कोई भी सार्थक अंतर नहीं है।

निष्कर्ष :– अध्ययन मुख्य समस्यांओ का आकलन करने के लिए किया गया था जो बैतूल जिले के महाविद्यालयों स्तर पर खेल गतिविधियों में खिलाडियों की समस्याओ पर आधारित था अध्ययन से पता चला कि कुछ प्रमुख समस्यें खेल गतिविधियों में छात्राओं की भागीदारी को प्रभावित करते हैं। दुर्भाग्य से महाविद्यालय के समय के दौरान लगातार कक्षाओं के कारण खेलों में भाग लेने का मौका नहीं मिलता है। सत्रीय कार्य और परीक्षा का भार विद्यार्थी का अधिकांश समय विद्यालयों में तैयारी में लगता है, परीक्षा और सत्रीय कार्य की तैयारी खेल गतिविधियों में भाग लेने के लिए एक प्रमुख समस्या है । कई महाविद्यालयों में पाया गया है की शिक्षक भी खेल गतिविधियों में छात्रों की भागीदारी को पसंद नहीं करते हैं, वे सोचते हैं कि खेल गतिविधियाँ केवल अवकाश के समय की गतिविधियाँ हैं और समय की बर्बादी हैं और छात्र शैक्षणिक गतिविधियों और खेल गतिविधियों के बीच संतुलन नहीं बना सकते हैं। शोध में पाया गया कि जहां मौजूदा स्तिथि में उच्च षिक्षा में संलग्न महिला एवं पुरुष खिलाड़ियों की समस्याओ में कोई सार्थक अंतर नहीं देखा गया है जोकि दर्शाता है की बैतूल जिले के महिला एवं पुरुष छात्रों को समान्तर समस्यायों का सामना करना पड़ रहा है समस्याओं को दूर करने में महाविद्यालयों की सबसे बड़ी भूमिका है, वहीं यह परिवार, व्यक्तिगत, संस्कृति और शिक्षा का एक संयोजन है जो भागीदारी के लिए सबसे बड़ी चुनौतियां हैं।

सदर्भ ग्रन्थ सूची :–

- अब्दुल गनी भट्ट –ए फिजिकल एनालाइसिस आफ डेब्लपमेंट आफ फिजिकल एजूकेशन और स्पोर्टस इन कश्मीर (अनपब्लिशड मास्टर्स थीसीस जिवाजी यूनिवर्सिटी) 1993
- रावत सिंह रतन, ''सर्वे ऑफ फिजिकल एजुकेशन प्रोग्राम फेसिलेटिव एंड लीडरशिप इन गर्वमेंट हायर सेकेण्डरी स्कूल इन हिमाचल प्रदेश'', (अनपब्लिशड मास्टर्स थीसीस जिवाजी यूनिवर्सिटी) 1998
- मेजर कृष्ण– फिजिकल एजूकेशन फैसिलिटिज इन दा मद्रास सिटी'' व्यायाम (7 नवम्बर 1994 26
- Patel, Hrishikesh. (2014). A study of built in and existing sports facilities in engineering colleges of chhattisgarh.3(10); 1-5
- Robert, Lindsey (2012). Impact of Campus Recreational Sports Facilities and Programs on Recruitment and Retention Among African American Students: A Pilot Study. Recreational Sports Journal,33(1). 25-34
- Walia, N., (1971) Survey of Physical Activities and Sports for the students of Higher Secondary Schools of Delhi State. M.P.Ed. Dissertation, Punjabi University, Patiala, 1971.

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

महाविद्यालयीन क्रिकेट प.रूष और महिला खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का तुलनात्मक अध्ययन

Ajay Singh Thakur
Sports Officer, Rajmata Sindiya Govt. P.G. Girls College, Chinndwara (M.P.)
Manoj Pathak
Ravindra Nath Tagore University, Bhopal

सारांश :– इस अनुसंधान का ऊद्देश्य महाविद्यालयीन क्रिकेट पुरूष और महिला खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का तुलनात्मक अध्ययन। इस शोधकार्य के ऊद्देश्य को हासिल करने के लिए छिंदवाडा जिलें के चार महाविद्यालयों के क्रिकेट खिलाड़ियों चयन विषय के रूप में किया गया था। इस अध्ययन में कुल 80 खिलाड़ियों का चयन किया गया जिसमें 40 पुरूष खिलाड़ी और 40 महिला खिलाड़ियों का समावेश था। विषयों का चुनाव करने के लिए ऊद्देश्य पूर्ण न्यादर्श पध्दति का प्रयोग किया। मानसिक मजबूती का मापन करणे के लिए डॉ. एलेन द्वारा निर्मित मेन्टल टफनेस प्रश्नावली का उपयोग किया गया था। परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण छात्र 'टी' परिक्षण द्वारा किया गया तथा इसके आधार पर मानसिक मजबूती की तुलना की गई और 0.05 इस महत्वपूर्ण स्तर पर परिकल्पना की जांच की गई। सांख्यिकीय विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरूष खिलाड़ियों की तुलना में महिला क्रिकेट खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती कम है।

प्रस्तावना :– क्रिकेट खेलते समय या कोई भी खेल खेलते समय मानसिक मजबूती की बहुत अधिक आवश्यकता होती है, जिससे खिलाड़ी अपनी हार को सकारात्मक रूप से स्विकार कर पाता है और भविष्य में प्रतिस्पर्धी के दौरान आने वाली असफलताओं से बचाव कर सकता है। मानसिक मजबूती को इसी तरह से संदर्भित किया जा सकता है कि असफलताओं को मात करने में सक्षम होने की क्षमता ही मानसिक मजबूती है। इसमें प्रशिक्षण और खुद को तैयार करने के लिए मानसिक रूप से तैयार होना भी शामिल है, जो हमारे लिए चुनौती है। मानसिक रूप से मजबूत बने रहने से हमें न केवल अपनी गलतियॉ तथा प्रदर्शन में सुधार करने की शक्ति प्राप्त होती है, साथ ही हर स्थिती में सकारात्मक प्रदर्शन करने की क्षमता प्राप्त होती है। हम खेल के दौरान जिस तरह से चाहते है उस तरह प्रदर्शन नहीं कर पाते है एसे समय मानसिक रूप से मजबूत व्यक्ति नई रननिती बनाकर रास्ता निकाल लेते है। कई बार हम निरिक्षण करते है की पेशेवर एथलीट हजारों घंटे के भीषण शारीरिक प्रशिक्षण के माध्यम से सफलता प्राप्त करते हैं। लेकिन खेल प्रदर्शन करते समय शारीरिक क्षमता ही हमेशा पेशेवर एथलिटों को सफलता प्रदान नहीं कराती बल्कि वास्तव में उन्हे उनकी मानसिक मजबूती के करण सफलता प्राप्त होते रहती है। अनुसंधानकर्ता द्वारा कई बार ऐसी स्थितीयों को देखा की पुरूष और महिला खिलाड़ियों को समान प्रशिक्षण अवधि देने के बावजूद दोनों समूह के खेल प्रदर्शन में भिन्नता पाई गई इसी भिन्नता को उजागर करने के लिए अनुसंधानकर्ता द्वारा इस विषय का चयन किया था।

समस्या का कथन :– महाविद्यालयीन क्रिकेट पुरूष और महिला खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध पध्दति :– इस शोधकार्य के ऊद्देश्य को हासिल करने के लिए छिंदवाडा जिलें के चार महाविद्यालयों के क्रिकेट खिलाड़ियों चयन विषय के रूप में किया गया था। इस अध्ययन में कुल 80 खिलाड़ियों का चयन किया गया जिसमें 40 पुरूष खिलाड़ी और 40 महिला खिलाड़ियों का समावेश था। विषयों का चुनाव करने के लिए ऊद्देश्य पूर्ण न्यादर्श पध्दति का प्रयोग किया। मानसिक मजबूती का मापन करणे के लिए डॉ. एलेन द्वारा निर्मित मेन्टल टफनेस प्रश्नावली का उपयोग किया गया था। क्रिकेट संघों से ई–मेल या टेलीफोन द्वारा संपर्क किया गया और उन्हें भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। इस अध्ययन में 18 से 20 वर्ष के बीच उम्र के प्रतिभागियों को लिया गया था।

प्रश्नावली :– मानसिक मजबूती का मापन करने के लिए डॉ. एलेन द्वारा निर्मित मेन्टल टफनेस प्रश्नावली (Mental Toughness Questionnaire) का प्रयोग किया गया जो कि उनके द्वारा 2004 में निर्माण किया गया था। इस प्रश्नावली में कुल 30 प्रश्नों का समावेश है। इस प्रश्नावली में 'हा' तथा 'नही' ये दो विकल्प

दिये है। इस प्रश्नावली में कुल पॉच घटकों को मापा गया है जिसमें 1. प्रतिगामी क्षमता, 2. दबाव को संभालने की क्षमता, 3. एकाग्रता, 4. विश्वास तथा 5. प्रेरणा इनका समावेश है।

सांख्यिकीय विश्लेषण :– क्रिकेट पुरूष और महिला खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती के बीच तुलना करने के लिए छात्र 'टी' टेस्ट का उपयोग किया गया और महत्वपूर्ण स्तर 0.05 पर निर्धारित किया गया था।

तालिका क. –1ः पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का घटक प्रतिगामी क्षमता की तुलना दर्शानेवाली सारणी

Group	N	Mean	SD	SE	MD	Ot	df	Tt
पुरूष	40	4.08	0.86	0.25	1.00	4.00*	78	1.99
महिला	40	3.08	1.33					

तालिका –1 में पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों का गणितिय 'टी' मूल्य (4.00) इतना है जोकि आवृत्ति अंश (78) 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी 'टी' मूल्य (1.99) से अधिक है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरूष खिलाड़ियों की तुलना में क्रिकेट महिला खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती का घटक प्रतिगामी क्षमता कम है।

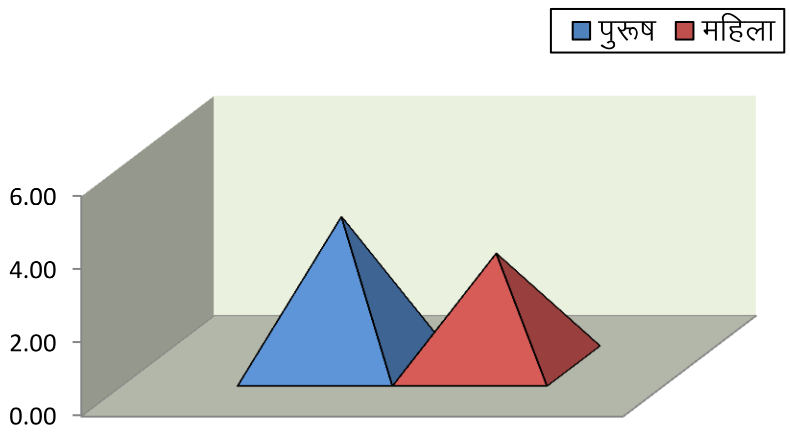

आलेख क्र.1

पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के प्रतिगामी क्षमता के मध्यमानों की तुलना

तालिका क. –2ः पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का घटक दबाव को संभालने की क्षमता की तुलना दर्शानेवाली सारणी

Group	N	Mean	SD	SE	MD	Ot	df	Tt
पुरूष	40	4.93	1.05	0.33	0.45	1.35	78	1.99
महिला	40	4.48	1.83					

तालिका –2 में पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों का गणितिय 'टी' मूल्य (1.35) इतना है जोकि आवृत्ति अंश (78) 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी 'टी' मूल्य (1.99) से कम है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरूष और महिला खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती का घटक दबाव को संभालने की क्षमता में अंतर तो है लेकिन वह सांख्यिकीय रूप से सार्थक नहीं है।

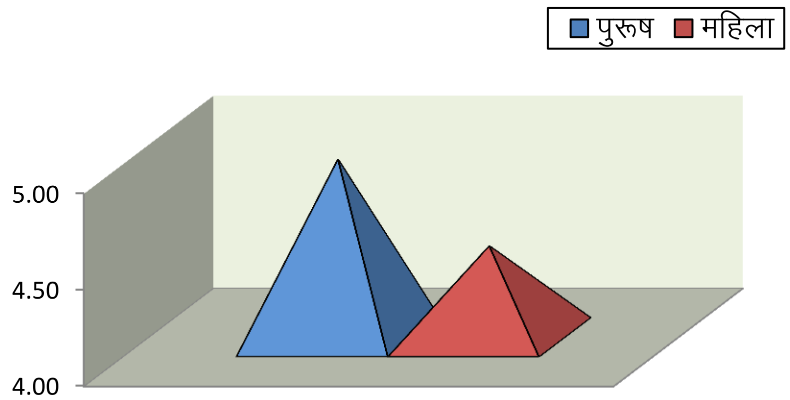

आलेख क्र.2

पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के दबाव को संभालने क्षमता के मध्यमानों की तुलना दर्शानेवाला आलेख

तालिका क. –3: पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का घटक एकाग्रता की तुलना दर्शानेवाली सारणी

Group	N	Mean	SD	SE	MD	Ot	df	Tt
पुरूष	40	4.80	0.99	0.30	0.35	1.16	78	1.99
महिला	40	4.45	1.63					

तालिका–3 में पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों का गणितिय 'टी' मूल्य (1.16) इतना है जोकि आवृत्ति अंश (78) 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी 'टी' मूल्य (1.99) से कम है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरूष और महिला खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती का घटक एकाग्रता में अंतर तो है लेकिन वह सांख्यिकीय रूप से सार्थक नहीं है।

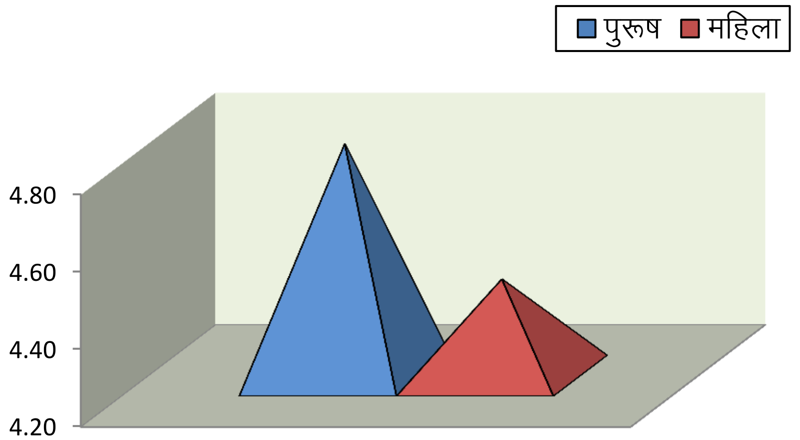

आलेख क्र.3

पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के एकाग्रता के मध्यमानों की तुलना

तालिका क. –4: पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का घटक विश्वास की तुलना दर्शानेवाली सारणी

Group	N	Mean	SD	SE	MD	Ot	df	Tt
पुरूष	40	4.78	1.07	0.33	0.50	1.52	78	1.99
महिला	40	4.28	1.78					

तालिका–4 में पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों का गणितिय 'टी' मूल्य (1.52) इतना है जोकि आवृत्ति अंश (78) 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी 'टी' मूल्य (1.99) से कम है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरूष और महिला खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती का घटक विश्वास में अंतर तो है लेकिन वह सांख्यिकीय रूप से सार्थक नहीं है।

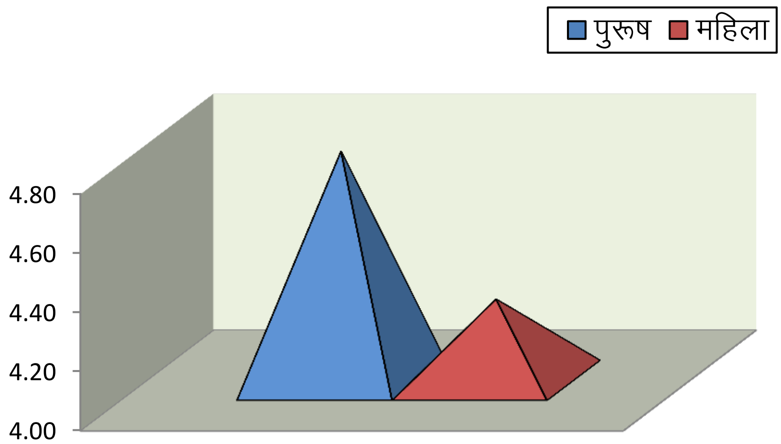

आलेख क्र.4

पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के विश्वास के मध्यमानों की तुलना

तालिका क. –5: पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का घटक प्रेरणा की तुलना दर्शानेवाली सारणी

Group	N	Mean	SD	SE	MD	Ot	df	Tt
पुरूष	40	3.43	1.52	0.30	0.68	2.23*	78	1.99
महिला	40	2.75	1.17					

तालिका–5 में पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों का गणितिय 'टी' मूल्य (2.23) इतना है जोकि आवृत्ति अंश (78) 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी 'टी' मूल्य (1.99) से अधिक है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरूष खिलाड़ियों की तुलना में क्रिकेट महिला खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती का घटक प्रेरणा कम है।

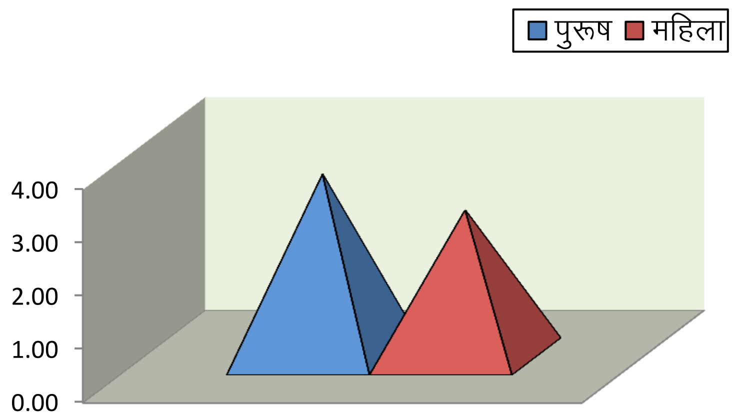

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 **2020**

आलेख क्र.5

पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के प्रेरणा के मध्यमानों की तुलना

तालिका क. –6: पुरुष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती का घटक प्रेरणा की तुलना दर्शानेवाली सारणी

Group	N	Mean	SD	SE	MD	Ot	df	Tt
पुरूष	40	22.00	2.77	0.84	2.98	3.53*	78	1.99
महिला	40	19.03	4.54					

तालिका–6 में पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों का गणितिय 'टी' मूल्य (3.53) इतना है जोकि आवृत्ति अंश (78) 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी 'टी' मूल्य (1.99) से अधिक है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला की, क्रिकेट पुरुष खिलाड़ियों की तुलना में क्रिकेट महिला खिलाड़ियों में मानसिक मजबूती कम है।

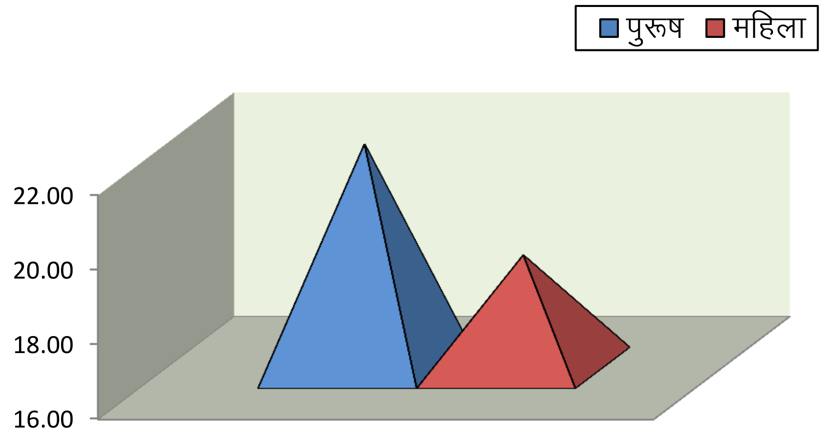

आलेख क्र.6

पुरूष और महिला क्रिकेट खिलाड़ियों के मानसिक मजबूती के मध्यमानों की तुलना दर्शानेवाला आलेख

निष्कर्ष :– इस अध्ययन से पता चलता है कि पुरुष क्रिकेट खिलाड़ियों में महिला क्रिकेट खिलाड़ियों की तुलना में अधिक मानसिक मजबूती पाई गई। पुरुष क्रिकेट खिलाड़ियों में महिला क्रिकेट खिलाड़ियों की तुलना में मानसिक मजबूती के घटक प्रतिगामी क्षमता और प्रेरणा में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Cotterill, Stewart & Barker, Jamie. (2013). Psychology of Cricket: Developing Mental Toughness.
2. Sudan, Madhu Hazra & Biswas, Sudarsan. (2018). A study on mental skill ability of different age level cricket players. International Journal of Physiology, Nutrition and Physical Education, 3 (1), 1177-1180.
3. Wieser, Rainer & Thiel, Haymo. (2014). A survey of 'mental hardiness' and 'mental toughness' in professional male football players. Wieser and Thiel Chiropractic & Manual Therapies, 22:17.
4. Imran Abbas Khan, Jamshaid Ahmad, Aqsa Shamim, Amir Latif (2017). Mental Toughness and Athletic Performance: A Gender Analysis of Corporate Cricket Players in Pakistan. The Spark, 2 (1). 91-101.

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020
2020

बैतूल जिले के उच्चतर माध्यमिक शालाओं में खेल नीति का मूल्यांकन

राधा आशीष पांडेय
शोधार्थी, रविंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, भोपाल (म प्र)
डॉ. मनोज पाठक
रविंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, भोपाल (म प्र)

परिचय :– खेलकूद से छात्रों में शारीरिक के साथ–साथ मानसिक शक्ति का विकास होता है। छात्रों के लिए दैनिक शारीरिक व्यायाम आवश्यक है क्योंकि व्यायाम न केवल छात्रों को स्वस्थ रहने में मदद करता है, बल्कि यह उनकी भावनात्मक फिटनेस को बेहतर बनाने में भी मदद करता है।

खेल स्कूली पाठ्यक्रम का एक प्रमुख हिस्सा होना चाहिए क्योंकि यदि छात्र भावनात्मक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रहते हैं, तो वे आसानी से अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। छात्रों को आत्मविश्वास, मानसिक सतर्कता और आत्म–सम्मान बढ़ाने के लिए स्कूली खेलों में भाग लेना होगा। स्कूलों में खेल महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह छात्रों को नेतृत्व, धैर्य, धैर्य, टीम प्रयास और सामाजिक कौशल जैसे विभिन्न कौशल सिखाने में मदद करता है। यहां हम स्कूलों में खेल के महत्व के कुछ लाभों पर चर्चा कर रहे हैं।

खेल, कई नियमों एवं रिवाजों द्वारा संचालित होने वाली एक प्रतियोगी गतिविधि है। खेल सामान्य अर्थ में उन गतिविधियों को कहा जाता है, जहाँ प्रतियोगी की शारीरिक क्षमता खेल के परिणाम (जीत या हार) का एकमात्र अथवा प्राथमिक निर्धारक होती है, लेकिन यह शब्द दिमागी खेल (कुछ कार्ड खेलों और बोर्ड खेलों का सामान्य नाम, जिनमें भाग्य का तत्व बहुत थोड़ा या नहीं के बराबर होता है) और मशीनी खेल जैसी गतिविधियों के लिए भी प्रयोग किया जाता है, जिसमें मानसिक तीक्ष्णता एवं उपकरण संबंधी गुणवत्ता बड़े तत्त्व होते हैं। सामान्यतः खेल को एक संगठित, प्रतिस्पर्धात्मक और प्रशिक्षित शारीरिक गतिविधि के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें प्रतिबद्धता तथा निष्पक्षता होती है। कुछ देखे जाने वाले खेल इस तरह के गेम से अलग होते है, क्योंकि खेल में उच्च संगठनात्मक स्तर एवं लाभ (जरूरी नहीं कि वह मौद्रिक ही हो) शामिल होता है। उच्चतम स्तर पर अधिकतर खेलों का सही विवरण रखा जाता है और साथ ही उनका अद्यतन भी किया जाता है, जबकि खेल खबरों में विफलताओं और उपलब्धियों की व्यापक रूप से घोषणा की जाती है।

अनुसंधान प्रश्न :– वर्त्तमान में बैतूल जिले के उच्चतर माध्यमिक शालाओ में खेल नीतियों की स्तिथि

विधि :– अध्यन की योजना एक वर्णनात्मक तरीके से बनाई गई है। शोध के प्रतिदर्श के निर्धारण में सार्वभौम प्रतिचयन पद्धति का प्रयोग किया गया है। क्योंकि व्यापकता अज्ञात है, घटना की आवृत्ति 50: है, नमूना की गणना 150 व्यक्तियों के रूप में की गई है। सर्वेक्षण १६–18 उम्र के 150 एथलीटों के साथ आमने–सामने साक्षात्कार के साथ आयोजित किया गया था। डेटा एकत्र करने मेंय सामाजिक–जनसांख्यिकीय जानकारी एवं शालाओ की खेल नीतियों का मूल्यांकन करने वाले प्रश्नो का उपयोग किया गया है।

परिणाम

तालिका क्र 1

शालाओं द्वारा खेल नीतियों का अध्ययन

खेल नीति	सहमत		सहमत		सहमत	
	आवर्ती	प्रतिशत	आवर्ती	प्रतिशत	आवर्ती	प्रतिशत
आपकी शाला में खेल आधारित संरचना बनाई गई है	121	80.67	18	12.00	11	7.33
आपकी शाला वॉलीबाल खेल के प्रचार और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है	73	48.67	45	30.00	32	21.33

आपको लगता है की आपकी शाला द्वारा खेल के प्रचार योजनाओ को केवल कागजो पर लागू किया जाता है	41	27.33	13	8.67	66	44.00
वॉलीबाल के विकास के लिए आपकी शाला एक प्रभावी संस्था है	93	62.00	12	8.00	45	30.00
वॉलीबाल के विकास के लिए आपकी शाला नवीनतम योजनाए बनता है	110	73.33	16	10.67	24	16.00
क्या आपका स्कूल स्वदेशी और आधुनिक खेलो को बढ़ावा देने के लिए उपयोगी है	58	38.67	24	16.00	68	45.33
क्या आपको लगता है की प्रतियोगिता आयोजित करने के लिए निष्पक्ष अधिकारियो की नियुक्ति की जाती है	66	44.00	9	6.00	75	50.00

तालिका क्रमांक एक से यह ज्ञात है की ८०. ६७% विद्यार्थियों ने माना की अध्यन छेत्र की शालाओ में खेल आधारित संरचनाये बनाई जाती है १२.००%, सर्वाधिक ४८.६७% विध्यार्तीयो ने मन की कहल के प्रचार और विकास में शलए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। अधिकतर विद्यार्थियों (४४.००%)ने नाकारा अध्यन छेत्र की शाला देवरा खेल क प्रचार योजना को केवल काजगो पे लागू किया जाता है जबकि २७.३३% विद्यार्थी मानते है की खेल के प्रचार योजनारो को केवल कागजो पे लागू किया जाता है। ६२.०० % विद्यार्थियों का मानना है की उनकी शाला वॉलीबाल के विकास के लिए एक प्रभावी संस्था है। ७३.३३ % विद्यार्थी मानते है की वॉलीबाल के विकास के लिए उनकी शाला नवीनतम योजनाए बनाती है।

सर्वाधिक ४५.३३% विद्यार्थी मानते है की उनकी स्कूल आधुनिक एवं स्वदेशी खेलो को बढ़जावा देने के लिए उपयोगी है। जबकि ५०% विधयर्थी को लगता है की प्रतियोगिता प्रायोजित करने के लिए निष्पक्ष अधिकारियो की नियुकित की नही जाती है, ४४. ००% प्रतिशत विद्यार्थी मानते है की इस काम के लिए निष्पक्ष अधिकारियो की नियुक्ति की जाती है।

निष्कर्ष :— किसी भी बच्चे के जीवन में स्कूल एक अहम भूमिका अदा करते हैं। अगर खेलों की बात की जाए तो स्कूल स्तर से ही इसके लिए प्रयास होने चाहिए, क्योंकि खिलाड़ी की प्रतिभा तभी निखर सकती है, जब उसकी नींव मजबूती से रखी जाए। इसके लिए स्कूल से बेहतर प्लेटफार्म कोई नहीं हो सकता। बैतूल जिले के विद्यालयी खेलों में अच्छा प्रदर्शन करने वाले खिलाड़ियों को अंतरराज्यीय और राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग का अवसर मिलता है, लेकिन स्कूल स्तर पर खेलों की स्थिति सही नहीं है। बैतूल जिले की शालाओ में स्वदेशी और आधुनिक खेलो को बढ़ावा देने के लिए उपयोगी साबित नहीं हो पाए है। तथा ऐसा भी पाया गया है की शाला द्वारा खेल के प्रचार योजनाओ को केवल कागजो पर लागू किया जाता है। इन कारणों के पीछे स्कूल प्रबंधन बजट का बहाना बनाकर अपने हाथ खड़े कर देते हैं। इसलिए सरकार को इस दिशा में पहल करते हुए खेलों के लिए अलग से बजट जारी करना चाहिए, ताकि स्कूल में खेलों के संस्थान की कमी न हो। साथ ही स्कूलों को खिलाड़ियों को तैयार करना का लक्ष्य दिया जाए। जिससे स्कूल प्रबंधन इस दिशा में गंभीरता से काम करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :—

- Shirotriya, A.K. (2015). Corporate Social Responsibility: A Sustainable Approach for the Sports Development. International Research Journal of Physical Education and Sports Sciences (Online). 1 (2).
- Sports as a tool for development and peace: Towards achieving the United development millennium goals. (2019). Retrieved from https://www.un.org/sport2005/resources/task_force.pdf
- Sports Policy Factors leading to International Sports Success. (2008). Retrieved from

http://www.vub.ac.be/SBMA/sites/default/files/file/Docs%20SBMA/About%20SPLISS.pdf

- Status of implementation of National Sports Policy. (2015). Retrieved from http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=119962 Target Olympic Podium Scheme. Available at: http://www.sportsauthorityofindia.nic.in/index1.asp?ls_id=3812 [Accessed 21 Feb. 2019].
- Zheng, J., Chen, S., Tan, T., & Lau, P. (2018). Sports policy in China (Mainland). International Journal of Sports Policy and Politics, 10(3), 469-491. doi: 10.1080/19406940.2017.1413585

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020 | 2020

मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालय स्तरीय व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति का मैदानी अवस्थिति के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

जी. सत्यनारायण राव नायडू
क्रीड़ा अधिकारी, शासकीय महाविद्यालय उमरानाला, जिला–छिंदवाड़ा (म.प्र.)
डॉ. मनोज कुमार पाठक
रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

संक्षेपिका :– इस अध्ययन का उद्देश्य मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालय स्तरीय व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति का मैदानी अवस्थिति के आधार पर तुलना करना था। विभिन्न महाविद्यालयों में अध्ययन करने वाले विश्वविद्यालय स्तर के कुल 115 पुरूष व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों का चयन इस अध्ययन के लिए विषयों के रूप में किया गया था। जिनकी उम्र 20.5 ± 2.6 बर्ष थी। चरो के रुप में विस्फोटक पैर शक्ति एवं विभिन्न मैदानी अवस्थिति का चयन किया गयाथा। जिनमें अटैकर, ब्लॉकर, सैटर एवं लिवरो को शामिल किया गया था। विस्फोटक पैर शक्ति के आँकड़े स्टैंडिंग ब्रॉड जंप परीक्षण के माध्यम से सेंटीमीटर में दर्जकिए गए थे। हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की मैदानी अवस्थिति के आधार पर तुलना करने के लिए एक दिश प्रसरण विश्लेषण (One way ANOVA) तकनीक एवं वर्णनात्मक सांख्यिकी का प्रयोग किया गया था। महत्व का स्तर 0.05 पर निर्धारित किया गया था। विभिन्न मैदानी अवस्थिति के आधार पर व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्तिकी तुलना करने पर पाया गया कि व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटकपैर शक्ति में अटैकर एवं ब्लॉकर, अटैकर एवं लिवरो, ब्लॉकर एवं सैटर, ब्लॉकर एवं लिवरो, तथा सैटर एवं लिवरो के मध्य महत्वपूर्ण अंतर था।जबकि अटैकर एवंसैटर के मध्य कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था। व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की क्षमता सबसे अधिक क्रमशः ब्लॉकर, अटैकर व सैटर एवंलिवरो की पाई गई। अन्य मैदानी अवस्थिति की तुलना में ब्लॉकर खिलाड़ी के लिए विस्फोटक पैर शक्तिमें अधिक होना बहुत महत्वपूर्ण है।

सांकेतिकशब्द :– व्हॉलीबॉल, मैदानी अवस्थिति, विस्फोटक पैर शक्ति।

परिचय :– आज हर खेल को वैज्ञानिक तकनीक के आधार पर खेला जा रहा है। परिणाम की अपेक्षा भी हमें तभी करना चाहिए जब खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता के साथ–साथ खेल की अवस्थिति एवं उनकी वैशेषिक खेल स्थिति का भी शारीरिक और मानव शास्त्रीय अध्ययन किया जाए।

व्हॉलीबॉल खेल तकनीक के आधार पर शरीर के सर्वांगीण विकास में विशेष महत्व रखताहै। शारीरिक रचना के आधार पर शारीरिक गठन लंबाई एवं हाथों का समन्वय स्ट्रेच से संबंधित कौशल यह खिलाड़ी की गुणवत्ताको निर्धारित करने के नियत मापदण्ड हैं। शारीरिक सुदृढ़ता आपकी प्रत्युत्पन्नगति (Reflexes) एवं टीम भावना का समन्वय खेल की श्रेष्ठता को परिभाषित करते हैं।

जैसे–जैसे यह खेल विकसित होता जा रहा है, वैसे–वैसे खेल के कौशल, तकनीक और प्रारूप का भी विकास करना होता है। प्रत्येक टीमें व खिलाड़ी जीतने का प्रयास करते हैं।इसलिए वह नई–नई तकनीकों का प्रयोग करता है, तथा पिनये शोध के माध्यम से सफलताप्राप्तकरने के नये तरीकों को खोजा जाता है।

उच्चस्तरीय व्हॉलीबॉल खेल में कुछ महत्वपूर्ण मैदानी अवस्थितियाँ वताई गई हैं, जैसे–सैटर, आउट साइड या लैफ्ट साइड, अपोसिट या राइट साइड हिटर, मिडल हिटर और लिवरो जोकि रक्षात्मक कौशल में विशेषज्ञ होता है। यह सभी स्थितियाँ किसी मैच को जीतने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ब्लॉक कौशल भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह सीधे अंक अर्जित करने की क्षमता रखते हैं।

विस्फोटक शक्ति, शक्ति योग्यता और चाल योग्यताओं का संयुक्त रूपहै। इसे उच्चचाल के साथ प्रतिरोध को हटाने या उसके विरूद्व कार्य करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य :– इस अध्ययन का उद्देश्य मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालय स्तरीय व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति का मैदानी

अवस्थिति के आधार पर तुलना करना था।

शोधप्रक्रिया :–

- **विषयों का चयन** : म.प्र. के विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले विश्वविद्यालय स्तर के कुल 115 पुरूष व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों का चयनइस अध्ययन के लिए विषयों के रूप में किया गया था।इनमें अटैकर,ब्लॉकर,सैटर और लिवरो शामिल थे।जिनकी उम्र 20.5±2.6 बर्ष थी।
- **निदर्शनविधि** : विषयों का चयनकरने के लिए उद्देश्यपूर्ण नमूना तकनीक का प्रयोग किया गया था।
- **चरों का चयन एवं परीक्षण** : इस अध्ययन के लिए विस्फोटक पैर शक्ति का चयन किया गया था।जिसके आँकड़े स्टैंडिंग ब्रॉड जंप परीक्षण के माध्यम से सेंटीमीटर में दर्ज किए गए थे।चरो के रुप में विभिन्न मैदानी अवस्थिति को चुना गया था।जिनमें अटैकर, ब्लॉकर,सैटर एवं लिवरो को शामिल किया गया था।
- **सांख्यिकीय तकनीकें** : व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की मैदानी अवस्थिति के आधार पर तुलना करने के लिए एक दिश प्रसरण विश्लेषण(One way ANOVA) तकनीक एवं वर्णनात्मक सांख्यिकी का प्रयोग किया गया था।महत्व का स्तर 0.05 पर निर्धारित किया गया था।

अध्ययन का परिणाम

तालिका 1 :व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की वर्णनात्मक सांख्यिकी

मैदानीअवस्थिति	संख्या	माध्य	मानकविचलन
अटैकर	35	60.828	6.52
ब्लॉकर	30	67.8	6.13
सैटर	28	59.392	6.32
लिवरो	22	43.181	6.01

तलिका 1 में व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की वर्णनात्मक सांख्यिकी को दर्शाया गया है। अध्ययन मे शामिल 35 अटैकर की विस्फोटक पैर शक्ति का माध्य 60.828 ± 6.52 सेंटीमीटर था। 30 ब्लॉकर की विस्फोटक पैर शक्ति का माध्य 67.8± 6.13 सेंटीमीटर था। 28सैटरकी विस्फोटक पैर शक्ति का माध्य 59.392± 6.32 सेंटीमीटर था। 22 लिवरोकी विस्फोटक पैर शक्ति का माध्य 43.181± 6.01 सेंटीमीटर था।

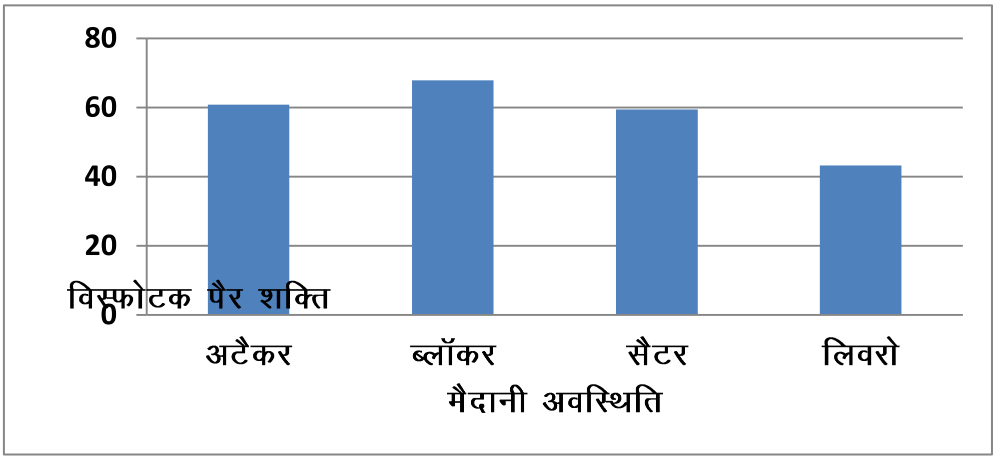

चित्र 1 : व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति का माध्य

तालिका 2 : विभिन्नमैदानी अवस्थिति के आधार पर व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति के लिए एक दिशा प्रसरण विश्लेषण (One way ANOVA)

Sources	df	SS	MSS	F	p-value
Between groups	3	7948.572	2649.524	59.513*	.000
Within groups	111	4941.724	44.520		
Total	114	12890.296			

*** Significant at .05 level**

तालिका 2 मेंप्रदर्शित आंकड़ों के अनुसार ज्ञात किया गया एफ (F-value)का मान 59.513 था जिसके लिए प्राप्तपी (p-value)का मान 0.000 ($p<0.05$)था, यह दर्शाता है कि विभिन्न मैदानी अवस्थिति के आधार पर व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति के मध्य महत्वपूर्ण अंतरथा।

क्योंकि एफ (F-value)का मान Significant पाया गया था इसलिए सैफी पोस्ट हॉक परीक्षण (Scheffe test)विधि द्वारा विभिन्न मैदानी अवस्थिति के आधार पर व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की जोड़ी अनुसार तुलना की गई।

तालिका 3 : व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की जोड़ी अनुसार तुलना करने के लिए सैफी पोस्टहॉक परीक्षण(SCHEFFE'S POST-HOC TEST)

मैदानीअवस्थिति				माध्य अंतर	p-value
अटैकर	ब्लॉकर	सैटर	लिवरो		
60.828	67.8			-6.972*	.000
60.828		59.392		1.436	.914
60.828			43.181	17.647*	.000
	67.8	59.392		8.408*	.000
	67.8		43.181	24.619*	.000
		59.392	43.181	16.211*	.000

*** Significant at .05 level**

तालिका3के आंकड़ेप्र दर्शितकरते हैं कि व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटकपैर शक्ति में अटैकर एवं ब्लॉकर($p = 0.000$), अटैकर एवंलिवरो ($p = 0.000$), ब्लॉकर एवंसैटर($p = 0.000$), ब्लॉकर एवं लिवरो ($p = 0.000$), तथा सैटर एवं लिवरो ($p = 0.000$)के मध्य महत्वपूर्ण अंतर था क्योंकि इनके प्राप्त पी(p-value)का मान 0.05 से कम था।जबकि अटैकर एवं सैटर($p = 0.914$)के मध्य कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था। क्योंकि इनके प्राप्त पी (p-value) का मान0.05 से अधिक था।

निष्कर्ष एवं निष्कर्षों की चर्चाई :— विभिन्न मैदानी अवस्थिति के आधार पर व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की तुलना करने पर पाया गया कि व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति में अटैकर एवं ब्लॉकर, अटैकर एवंलिवरो, ब्लॉकर एवं सैटर, ब्लॉकर एवं लिवरो, तथा सैटर एवं लिवरो के मध्य महत्वपूर्ण अंतर था। जबकि अटैकर एवं सैटर के मध्य कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था।

व्हॉलीबॉल खिलाड़ियों की विस्फोटक पैर शक्ति की क्षमता सब से अधिक क्रमशः ब्लॉकर, अटैकर व सैटर एवंलिवरो की पाई गई। अन्य मैदानी अवस्थिति

की तुलना में ब्लॉकर खिलाड़ी के लिए विस्फोटक पैर शक्ति में अधिक होना वहुत महत्वपूर्ण है। मार्क्स और अन्य (2009) द्वारा किए गए अध्ययन का निष्कर्ष भी यही दर्शाता है। ब्लॉकर खिलाड़ी के बॉल को रोकने के लिए लगातार कूद करने के करण उनकी विस्फोटक पैर शक्ति की क्षमताअन्य खिलाड़ियों की तुलना में अधिक है। फट्टाही, अमेली और सदेही (2013) द्वारा किए गए अध्ययन में भी यही निष्कर्ष प्राप्त हुआ था। अन्य मैदानी अवस्थिति की तुलना में ब्लॉकर खिलाड़ी के लिए विस्फोटक पैर शक्तिमें अधिक होना वहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ :–

- गुप्ता, अनन्तकुमार (2013)। मानव शरीररचना एव क्रिया विज्ञान। सुमित प्रकाशन, आगरा।
- शर्मा, आर. के. (2000)। खेल ट्रेनिंग के वैज्ञानिक सिद्वांत। क्रीड़ा साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
- शर्मा, आर. के. (1999)। व्यायाम क्रिया विज्ञान एवं खेलचिकित्सा शास्त्र। क्रीड़ा साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, सुरेंद्र(2019)। वॉलीबॉल : खेल और नियम। प्रभात प्रकाशन।
- Fattahi, A., Ameli, M.S.& Sadeghi,H. (2013). Relationship between Anthropometric Parameters with Vertical Jump in Male Elite Volleyball Players Due to Game's Position. Middle-East Journal of Scientific Research, 13 (8), 1016-1023.
- Marques, Tillaar, Gabbett& González-Badillo (2009). Physical fitness qualities of professional volleyball players: determination of positional differences. Journal of Strength & Conditioning Research, 23 (4), 1106-1111.
- Chauhan, M.S. and Chauhan, D.S. (2005). The relationship between Anthropometric variables and explosive arms strength of volleyball players. Journal of Sports and Sports Science, 28(2) 5-13.
- L., Mohan & Sharma, Y.P. (2007). Selected motor fitness variables of male Volleyball players in relation to their performance. Journal of Sports and Sports Sciences; SAI, NSNIS Patiala, Publication, 30(3), 30-34.
- Puhl, J., Case, S., Fleck, S. and Handel, P. V. (1982) Physical and physiological characteristics of elite volleyball players. Research Quarterly, 5(3), 257-262.
- Viitasalo J.T. (1982). Anthropometric and Physical Performance Characteristics of Male Volleyball Players, Journal of Applied Sports and Science, 7 (3), 182-188.

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020
2020

आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शारीरिक संरचना के साथ सहसंबंध का अध्ययन

Sushil Kumar Patwa
Govt. Autonomus P.G. College, Chhindwara (M.P.)
Dr. Manoj Kumar Pathak
Rabindranath Tagore University, Bhopal (M.P.)

सारांश :– इस अनुसंधान का ऊद्देश्य आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शारीरिक संरचना के साथ सहसंबंध ज्ञात करना था। इस अनुसंधान में जबलपुर विश्वविद्यालय के क्षेत्रांतर्गत आने वाले महाविद्यालयों से आदिवासी खिलाड़ियों का चयन किया जिसमें में कुश्ती, बालीवॉल एवं खो–खो खेल के 18 से 25 वर्ष इस आयुवर्ग के खिलाड़ियों को लिया गया था। इस अध्ययन में कुल 30 खिलाड़ियों का चयन प्रत्येक खेल से 10 इस तरह से किया गया था । विषयों का चयन सामन्य न्यादर्श पध्दति द्वारा किया गया था। आदिवासी खिलाड़ियों के शारीरिक संरचना का खेल प्रदर्शन के साथ सहसंबंध ज्ञात करने के लिए पियर्सन सहसंबंध गणना विधी को लागू किया गया था। 0.05 इस महत्वपूर्ण स्तर पर परिणामों की जॉच की गई थी। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी खिलाड़ियों के शारीरिक संरचना का खेल प्रदर्शन के साथ सार्थक सहसबंध है। शारीरिक संरचना में शरीर वसा, निरपेक्ष शरीर वसा, दुबला शरीर द्रव्यमान और शरीर वजन का खेल प्रदर्शन से सार्थक सबंध पाया गया। आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शारीरिक संरचना के साथं अत्यधिक महत्वपूर्ण संबंध है।

शोध शब्द कुंजी :– आदिवासी, खेल प्रदर्शन, शारीरिक संरचना

प्रस्तावना :– खिलाड़ियों को अपने उच्च प्रदर्शन के लिए, शरीर को उचित अनुपात बनाए रखना होता है। खिलाड़ियों की शारीरिक संरचना यह बहुत अहम विषय है जो कि खेल प्रदर्शन को प्रभावित कर सकती है। जीन खिलाड़ी में वसा प्रमाण अत्यधिक होता है वह अपना प्रदर्शन ठीक नहीं दे पाते। वसा का अधिक होने के परिणामस्वरूप गतिविधि का निम्न स्तर होता है। आज के इस युग में युवा पिढ़ी के असंतुलीत आहर पध्दति के कारण आज की पिढ़ी मोटापे का शिकार हो रहीं है शरीर की संरचना और शरीर का वजन कई कारकों में से एक है जो बीमारियों को आंमत्रित करता है। अधिक मोटे होने के कारण मधुमेह, हृदय विकार, श्वसन संबंधित रोगों का सामाना करना पड़ता है, हम खेल की बात करे तो खेलों में भी शारीरिक संरचना प्रदर्शन में योगदान देती है। खिलाड़ियों की सफलता उनके शारीरिक संरचना पर निर्भर करती है। एक खिलाड़ी के लिए शारीरिक क्षमता और मानसिक क्षमता दोनों ही आवश्यक होती है, उच्चतम खेल प्रदर्शन के लिए। शारीरिक क्षमता यह शरीर संरचना पर निर्भर करती है, जिसमें खिलाड़ी की गति, लचीलापन, सहनशिलता और शक्ति जैसे घटकों को शारीरिक संचना प्रभावित करती है। अधिक मांसपेशियों वाला और कम वसा युक्त शरीर खिलाड़ियों के लिए बहुत ही फायदेमंद होता है। आदिवासी खिलाड़ियों का खान–पान एवं रहन–सहन यह सामन्य खिलाड़ियों के मुकाबले भिन्न होता है इसी कारण अनुसंधानकर्ता ने इस शोध कार्य को किया है।

शोध पध्दति :– इस अनुसंधान में जबलपुर विश्वविद्यालय के क्षेत्रांतर्गत आने वाले महाविद्यालयों से आदिवासी खिलाड़ियों का चयन किया जिसमें में कुश्ती, बालीवॉल एवं खो–खो खेल के 18 से 25 वर्ष इस आयुवर्ग के खिलाड़ियों को लिया गया था। इस अध्ययन में कुल 30 खिलाड़ियों का चयन प्रत्येक खेल से 10 इस तरह से किया गया था। विषयों का चयन सामन्य न्यादर्श पध्दति द्वारा किया गया था। खेल प्रदर्शन का मापन करने के लिए तीन विशेषज्ञों को नियुक्त किया गया था और उन्हे 1 से 10 अंक के बीच खेल प्रदर्शन पर अंक देने को कहा गया था। शारीरिक संरचना का परिक्षण करने के लिए शरीर वसा प्रतिशत, दुबला शरीर द्रव्यमान और निरपेक्ष शारीरिक वसा का मापन जे. वी. जी. ए. डुरनीन और जे. वोमर्सले द्वारा (1974) में निर्मित परीक्षण पध्दति का उपयोग करके किया गया था।

सांख्यिकीय विश्लेषण:– आदिवासी खिलाड़ियों के शारीरिक संरचना का खेल प्रदर्शन के साथ सहसंबंध ज्ञात करने के लिए पियर्सन सहसंबंध गणना विधी को लागू किया गया था। 0.05 इस महत्वपूर्ण स्तर पर परिणामों की जॉच की गई थी।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact Factor - 4.8, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 2, No. : 5, June - 2020

सारणी क्र. –1: आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन और शारीरिक संरचना का वर्णनात्मक विश्लेषण दर्शाने वाली तालिका

चर	**मध्यमान**	**मानक विचलन**
खेल प्रदर्शन	6.03	1.20
शरीर वसा प्रतिशत	15.47	2.00
निरपेक्ष शरीर वसा	10.65	2.24
दुबला शरीर द्रव्यमान	57.62	3.89
शरीर वजन	68.27	5.75

सारणी क्र. 1 में आदिवासी खिलाड़ियों के शारीरिक संरचना और खेल प्रदर्शन का डेटा विश्लेषण दर्शाया गया है । आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का औसत ± मानक विचलन (6.03 ± 1.20), शरीर वसा प्रतिशत (15.47 ± 2.00), निरपेक्ष शरीर वसा (10.65 ± 2.24), दुबला शरीर द्रव्यमान (57.62 ± 3.89) और शरीर वजन (68.27 ± 5.75) है ।

सारणी क्र. –2: आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शारीरिक संरचना के साथ सहसंबंध दर्शाने वाली सारणी

चर	**सहसंबंध गुणांक**
शरीर वसा प्रतिशत	-0.849*
निरपेक्ष शरीर वसा	-0.817*
दुबला शरीर द्रव्यमान	-0.493*
शरीर वजन	-0.652*

महत्वपूर्ण स्तर .05 पर 'r' (28) 0.361

सारणी क्र.–2 में दिखाए गए विश्लेषण से संकेत मिलता है कि आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शरीर वसा प्रतिशत का संहसंबध गुणांक (आर = –0.849) है, जो कि सांख्यिकीय रूप से सार्थक है, क्योंकि प्राप्त मूल्य 0.05 महत्वपूर्ण स्तर पर सारणीबद्ध मूल्य (0.361) की तुलना में बहुत अधिक है।

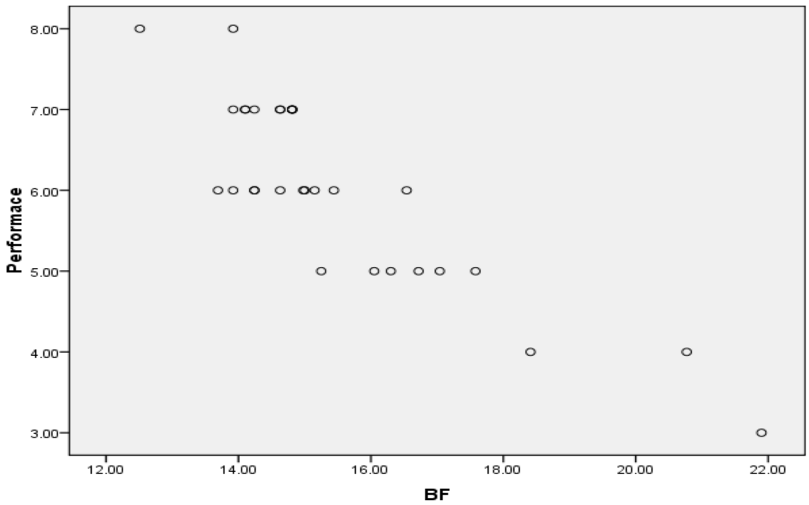

आलेख क्र.1 आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शरीर वसा से सहसंबंध दर्शाने वाला आलेख

सारणी क्र. –2 में आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का निरपेक्ष शरीर वसा का संहसंबध गुणांक (आर = –0.817) है, जो कि सांख्यिकीय रूप से सार्थक है, क्योंकि प्राप्त मूल्य 0.05 महत्वपूर्ण स्तर पर सारणीबद्ध मूल्य (0. 361) की तुलना में बहुत अधिक है।

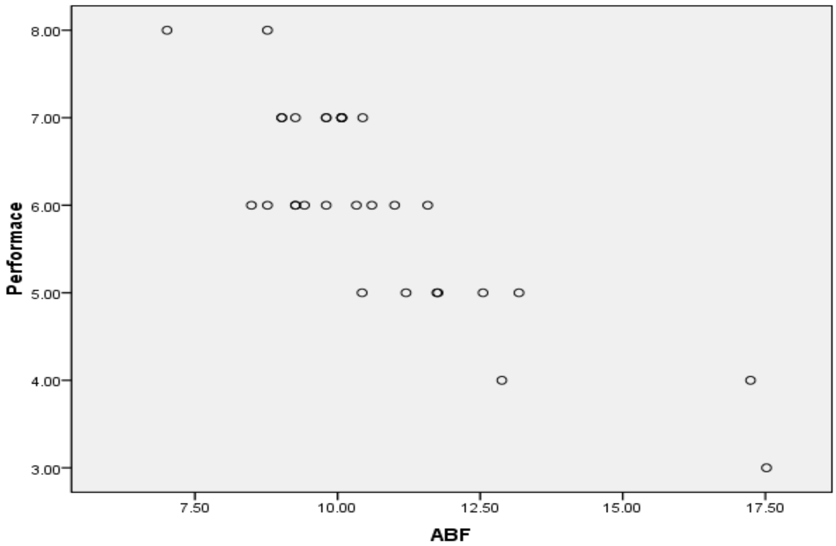

आलेख क्र.2 आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का निरपेक्ष शरीर वसा से सहसंबंध दर्शाने वाला आलेख

सारणी क्र. –2 में आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का दुबला शरीर द्रव्यमान का संहसंबध गुणांक (आर = –0.493) है, जो कि सांख्यिकीय रूप से सार्थक है, क्योंकि प्राप्त मूल्य 0.05 महत्वपूर्ण स्तर पर सारणीबद्ध मूल्य (0. 361) की तुलना में बहुत अधिक है।

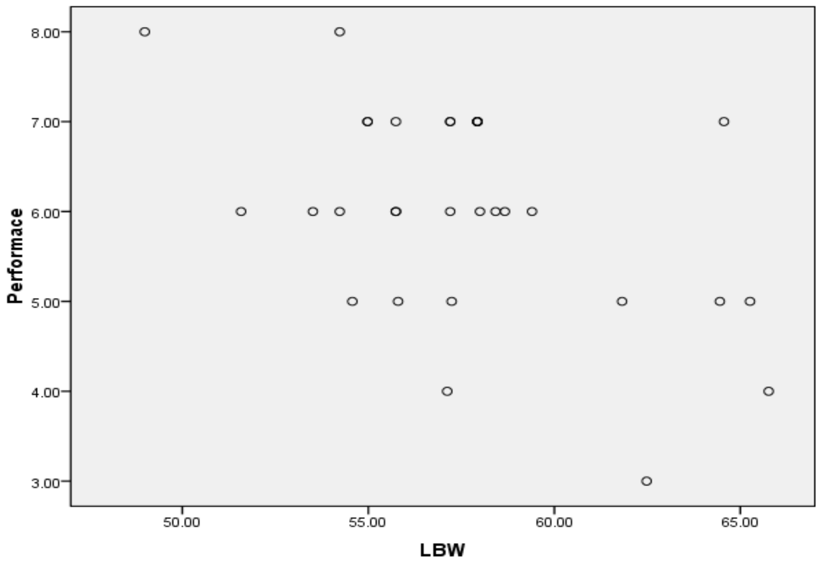

आलेख क्र.3 आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का दुबला शरीर द्रव्यमान से सहसंबंध दर्शाने वाला आलेख

सारणी क्र. –2 में आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शरीर वजन का संहसंबध गुणांक (आर = –0.652) है, जो कि सांख्यिकीय रूप से सार्थक है, क्योंकि प्राप्त मूल्य 0.05 महत्वपूर्ण स्तर पर सारणीबद्ध मूल्य (0.361) की तुलना में बहुत अधिक है।

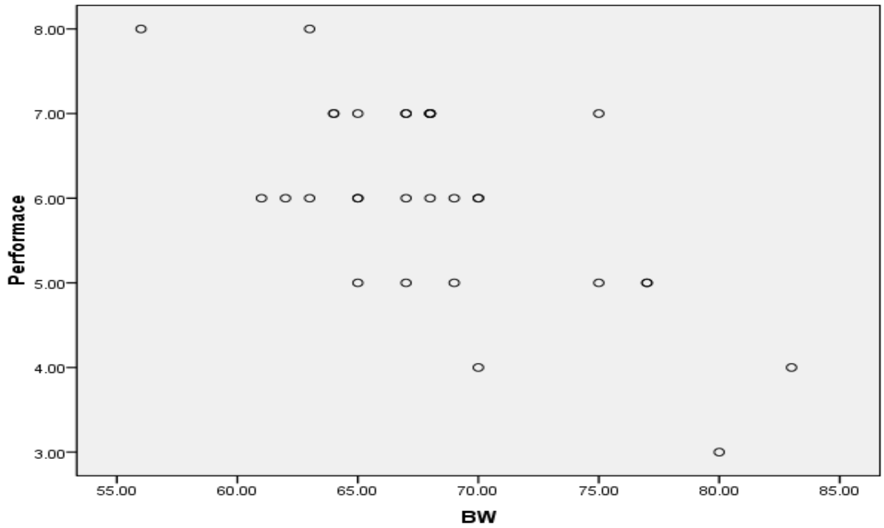

आलख क्र.4 आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शरीर वजन से सहसंबंध दर्शाने वाला आलेख

निष्कर्ष :– प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी खिलाड़ियों के शारीरिक संरचना का खेल प्रदर्शन के साथ सार्थक सहसबंध है। शारीरिक संरचना में शरीर वसा, निरपेक्ष शरीर वसा, दुबला शरीर द्रव्यमान और शरीर वजन का खेल प्रदर्शन से सार्थक सबंध पाया गया। आदिवासी खिलाड़ियों के खेल प्रदर्शन का शारीरिक संरचना के साथं अत्यधिक महत्वपूर्ण संबंध है। इस अध्ययन से यह पता चला कि खेल में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए खिलाड़ियों के शारीरिक संरचना महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Cavedon V, Zancanaro C and Milanese C., "Anthropometry, Body Composition, and Performance in Sport-Specific Field Test in Female Wheelchair Basketball Players", Front. Physiol., 9, 568, 2018.
2. Shilpi Saha & Samir Kumar Sil, "A Comparative Study on Fat Pattern between Tribal and Non-tribal Girls of Tripura, North-East India", The Indian Journal of Pediatrics, 86, 508–514, 2019.
3. Arnulfo Ramos-Jiménez et. al., "Body Shape, Image, and Composition as Predictors of Athlete's Performance", Fitness Medicine, Hasan Sozen, IntechOpen, (October 26th 2016).
4. Hogstrom, Gabriel M. et. al., "Body Composition and Performance: Influence of Sport and Gender Among Adolescents", 26, (7), 1799-1804, 2012.
5. Carly L. Houska et. al., "Comparison of Body Composition Measurements in Lean Female Athletes", International Journal of Exercise Science, 11(4), 417-424, 2018.
6. Shih-Wei Huang et.al., "Correlation between Body Composition and Physical Performance in Aged People", International Journal of Gerontology, 12, (3), 186-190, September 2018.

July to September 2020
E-Journal
Volume I, Issue XXXI

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 5.610 (2018)

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

24. सत्ता हस्तान्तरण में 1857 की भूमिका (डॉ. कुन्दन कुमार) 74

25. मध्यकालीन बीकानेर राज्य में विवाह संस्कार के स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन 76
(शिवरतन सिंह यादव, अजय गोदारा)

26. यशपाल की कहानियों में चित्रित रूपाजीवा (दीपक सिंह) 78

27. भारत चीन सम्बन्धों का बदलता परिदृश्य (डॉ. श्रीकांत दुबे) 80

28. कोविड-19 के भावी सकारात्मक सामाजिक प्रभाव (डॉ. विभा वासुदेव) 83

29. भारत में लोकतन्त्र : सबल और दुर्बल पक्ष (डॉ. विनीता भालसे, डॉ.गिरधारीलाल भालसे) 85

30. ठाकुर प्रसाद सिंह के व्यक्ति व्यंजक निबन्ध-अवधारण एवं विश्लेषण (डॉ. हरि नारायण राम) 87

31. भारत में औद्योगिक विवाद: एक अध्ययन (डॉ. संदीप कुमार अग्रवाल) 89

32. उपरोक्त संरक्षण: जागरूकता की एक पहल (डॉ. विवेक कुमार मिश्र) 92

33. योग विज्ञान में रोजगार के अवसर (डॉ. जी. एल. मालवीय, डॉ. खुमेश सिंह ठाकुर) 95

34. लॉक डाउन और बढ़ती हुई घरेलू हिंसा (डॉ. फरहत मंसूरी) 98

35. नई शिक्षा नीति : प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा तथा वर्तमान परिदृश्य में चुनौतियाँ 100
(डॉ. आर.के. अरोरा, डॉ. अंजना पाटनवाला)

36. 'हो' भाषा लोक जीवन में साहित्य का अध्ययन (सेवित देवगम) 103

37. भारतीय समकालीन कला में न्यू मीडिया आर्ट (सूरज सोनी, डॉ. सुरेश शर्मा) 105

38. The Study on Speed and Agility Fitness Varrable Between Resiedential and Non 108
Residential School Players in the Madhya Pradesh (Punit Gupta, Dr. Jogendra Singh Khangharot,
Dr. Hemant Pandey)

39. Yield, Growth and Development of Rapeseed Mustard and Other Field Crops With 111
Different Saline Water (Harish Kumar)

40. Ethnobotanical Investigation of some economic gums plants are used by Tribals of 114
Dhar district, Madhya Pradesh, India (Dr. Kamal Singh Alawa)

41. Khajuraho: A Socio Political story carved on Historical stones by Literary words 116
(Dr. Archana Kashyap, Prof. Ojaswee Shirole, Dr. Sehba Jafri, Dr. Veena Kurre)

42. GMO's Applications uses, advantages and dis-advantages (Sharad Kumar Singhariya) 120

43. मकान की समस्या (कुलदीप) 123

44. कला और संस्कृति (डॉ. मन्जू गर्ग) 125

45. वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में भ्रष्टाचार का प्रभाव (डॉ. रामजी वर्मा) 128

16. पद्माकर के काव्य में युग-बोध (डॉ. रंजना मिश्रा) 130

47. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के कार्यों से हो रहे ग्रामीण विकास का : एक विश्लेषण 133
(डॉ. संजय कुमार साकेत)

48. गांधीजी की शिक्षा नीति की प्रासंगिकता : वर्क्तमान परिप्रेक्ष्य में (डॉ. विद्या चौधरी) 135

49. कोविड-19 महामारी के कालखण्ड में, भारतीय न्यायपालिका की भूमिका का सहकारी संघवाद पर प्रभाव 138
(डॉ. विकास कुमार दीक्षित)

लॉक डाउन और बढ़ती हुई घरेलू हिंसा

डॉ. फरहत मंसूरी*

मुख्य शब्द – समाज, लॉक डाउन, घरेलू हिंसा, निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, उच्च वर्ग, परिवार।

प्रस्तावना – प्रस्तुत शोध पत्र में लॉकडाउन और बढ़ती हुई घरेलू हिंसा का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। वर्तमान समय में पूरे विश्व में महामारी का दौर चल रहा है, इस महामारी को आम जनता नोवेल कोरोना वायरस के नाम से जानती है तथा डब्ल्यू.एच.ओ. ने इसमहामारी को कोविड–19 का नाम दिया है। भारत में कोरोना वायरस का पहला मामला केरल में सामने आया और इस बिमारी ने धीरे–धीरे पूरे भारत में भी संक्रमण फैला दिया जिसके कारण संपूर्ण भारत में 22 मार्च 2020 को जनता कर्फ्यू और उसके बाद लॉकडाउन कर दिया गया था। यह लॉकडाउन चार चरणों में किया गया था। इस लॉकडाउन ने समाज को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से प्रभावित किया है। हमने इस शोधपत्र में लॉकडाउन का बढ़ती हुई घरेलु हिंसा पर प्रभाव का एक समाजषास्त्रीय अध्ययन किया है। लॉकडाउन ने जहां एक ओर संपूर्ण परिवार को एक साथ समय व्यतीत करने का अवसर प्रदान किया वहीं पर कुछ परिवारों में कलह, मारपीट देखने को मिली और घरेलू हिंसा के मामलों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

प्रस्तुत शोध पत्र में सबसे पहले घरेलू हिंसा के बारे में बताना चाहूंगी। घरेलू हिंसा एक ऐसा कृत्य है जिसमें किसी भी महिला एवं बच्चे (जो 18 वर्ष से भी कम आयु के बालक एवं बालिका) के साथ मारपीट, गाली गलोच, घुरना, अपमान, घर के किसी हिस्से के प्रयोग पर पाबंदी लगाना, उनके स्वास्थ्य की सुरक्षा न करना, जीवन पर संकट, आर्थिक क्षति, महिला और बच्चे को दुख पहुंचाना, इन सभी को घरेलू हिंसा के दायरें में रखा जाता है। इस शोध पत्र के माध्यम से बताना चाहूंगी कि भारत में घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, के अनुसार घरेलू हिंसा में महिलाओं के विरूद्ध, पुरूषों के विरूद्ध घरेलू हिंसा, बच्चों और बुजुर्गों के विरूद्ध हिंसा भी शामिल है। शोधपत्र में लॉकडाउन और बढ़ती हुई घरेलू हिंसा के बारे में बताया गया है।

शोध की अध्ययन पद्धति – प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन से संबंधित तथ्यों को एकत्र करने के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति का उपयोग करते हुए 60 उत्तरदाताओं से संपर्क कर फोन के माध्यम से साक्षात्कार लिया गया एवं साथ ही गूगल फार्म का उपयोग करते हुए तथ्यों को एकत्र किया गया है।

शोध की उपकल्पना – लॉकडाउन के दरमियान महिलाओं में घरेलू हिंसा का प्रभाव बढ़ा है।

शोध के उद्देश्य :

1. घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की जानकारी प्राप्त करना।
2. लॉकडाउन के दौरान घरेलू हिंसा की जानकारी प्राप्त करना।
3. महिलाओं में घरेलू हिंसा कानून के प्रति जागरूकता की जानकारी प्राप्त करना।

घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की जानकारी प्राप्त करना –

क्र.	विवरण	हां	नहीं	योग
1	क्या आप घरेलू हिंसा का शिकार हुई है?	80%	20%	100%

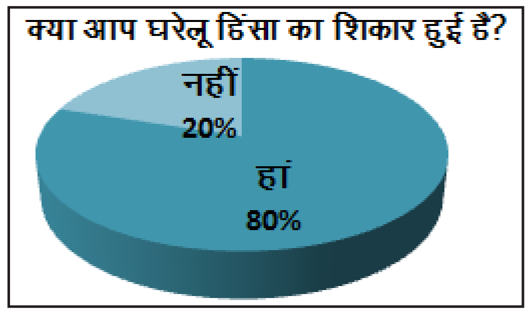

अध्ययन के दौरान फोन के माध्यम से साक्षात्कार लिया गया एवं साथ ही गूगल फॉर्म के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई है कि 80 प्रतिशत महिलायें घरेलू हिंसा का शिकार हुई हैं। अध्ययन के माध्यम से पता चला है कि इस 80 प्रतिशत में पढ़ी–लिखी और नौकरी पेशा महिलायें भी घरेलू हिंसा का सामना कर रही हैं। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं में निम्न वर्गीय परिवार के साथ साथ उच्च और मध्यम वर्गीय परिवार की महिलायें भी शामिल हैं।

लॉकडाउन के दौरान घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की जानकारी प्राप्त करना

क्र.	विवरण	हां	नहीं	योग
1	घरेलू हिंसा की शिकार महिलायें	80%	20%	100%
अ.	घरेलू हिंसा की शिकार निम्न वर्गीय महिलायें	40%	60%	100%
ब.	घरेलू हिंसा की शिकार मध्यम वर्गीय महिलायें	25%	75%	100%
स.	घरेलू हिंसा की शिकार उच्च वर्गीय महिलायें	15%	85%	100%
2	केवल लॉकडाउन में घरेलू हिंसा की शिकार महिलायें	70%	30%	100%

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

October to December 2020
E-Journal
Volume I, Issue XXXII

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 5.610 (2018)

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

Index/अनुक्रमणिका

01. Index/ अनुक्रमणिका 02

02. Regional Editor Board / Editorial Advisory Board 06/07

03. Referee Board 08

04. Spokesperson 10

05. Floristic Analysis of Weed Apecies in Crops Fields of Tribal District Dhar, M.P. India (SL Muwel, SC Mehta) 12

06. Trends in Indian Food Processing Industry: Issues, Challenges and Ways Forward (Dr. Kiran Kumar P) 19

07. Synthesis and Biological Evaluation of some new Acid Hydrazones derived from 5 -Aldehydo Salicylic Acid (Malti Dubey (Rawat)) 26

08. Uncertain Historiography of Ajivakas (Dr. Ashish Kumar Chachondia) 29

09. Significance of SAARC (Dr. Shrikant Dubey) 32

10. Analysis of Women Empowerment in India (Dr. Indresh Pachauri) 34

11. Awareness and Attitude on Effects of Substance Abuse Among Adolescents (Dr. Usharani B.) 37

12. Zinc Oxie Nanoparticles in Cosmetic Products (Renuka Thakur, Dr. S.K. Udaipure) 40

13. Effects of COVID 19 on Indian Agriculture (Dr. Savita Gupta) 44

14. Linear, Instantaneous and Compound Growth Rates of Major Food-Grain Crops in India (Suresh Kumar,Sanjeev Kumar) 47

15. Dalchini and Its Benefits (Dr. Rajesh Masatkar) 51

16. Fixed Point Theorems for Quasi- Ontraction with Applications (Dhansingh Bamniya, Basanti Muzalda) 53

17. Study of Zooplankton density and physico-chemical parameters in Man dam district Dhar (M.P.) India (Dr. D. S. Waskel, Dr. K.S. Alawa) 55

18. चम्बल संभाग में बाल लिंगानुपात – एक तुलनात्मक विश्लेषण (पूनम वासनिक) 59

19. महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन (कोरोना वायरस के विशेष संदर्भ में) (डॉ. फरहत मंसूरी) 61

20. वर्तमान समय में हिन्दी नाटक (एन.आर. साव, डॉ. (श्रीमती) बसंत नाग) 64

21. आधुनिक पुस्तकालय प्रबंधन में गुणवत्ता : अवधारणा, उपादेयता एवं महत्व (ओमप्रकाश चौरे) 69

22. शिक्षित जनजाति राजनीतिक चेतना का आकलन (डॉ. भूरेसिंग सोलंकी) 71

23. पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी एवं चुनौतियां (धार जिले के कुक्षी तहसील के विशेष सन्दर्भ में) (डॉ. रेशम बघेल) 73

24. मध्यस्थम् एवम् सुलह अधिनियम, 1996 के अन्तर्गत विवाद समाधान (रतन सिंह तोमर) 76

25. भारत में तृतीय लिंग की प्रस्थिती (डॉ.पूजा तिवारी) 78

26. कोरोना काल में मानव मुक्ति के मसीहा – गांधी जी (डॉ. वसुधा अग्रवाल) 80

महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन (कोरोना वायरस के विशेष संदर्भ में)

डॉ. फरहत मंसूरी*

शब्द कुंजी – अधिकारी, कर्मचारी, मनोवैज्ञानिक स्थिति, कोरोना वायरस, मानसिक स्वास्थ्य, तनाव।

प्रस्तावना – प्रस्तुत शोध पत्र में महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन, कोरोना वायरस के विशेष संदर्भ में किया गया है। कोविड-19 ने वर्तमान समय में पूरे विश्व में महामारी का रूप धरा हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा पूरे विश्व के लिए समय-समय पर गाइडलाइन जारी की गई। कोरोना वायरस ने पूरे विश्व के साथ-साथ भारत में भी अपनी जड़े मजबूत कर ली हैं। भारत में कोरोना वायरस का पहला केस केरल में सामने आया और इस बिमारी ने धीरे-धीरे पूरे भारत में भी संक्रमण फैला दिया। कोरोना वायरस का अभी तक कोई इलाज नहीं है। केवल सावधानी ही बचाव है। इसी वजह से आम जनता में कोविड-19 को लेकर भय की स्थिति है। कोरोना वायरस ने महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डाला है।

प्रस्तुत शोध पत्र में सबसे पहले मनोविज्ञान के बारे में बताना चाहूंगी। मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार (observation behavior) का अध्ययन करता है तथा मानव के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं जैसे चिंतन, भाव, वातावरण की घटनाओं के साथ उनका संबंध जोड़कर अध्ययन करता है। शोधपत्र में महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति के बारे में बताया गया है।

शोध अध्ययन पद्धति – प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन से संबंधित तथ्यों को एकत्र करने के लिए छिंदवाड़ा जिले के 06 महाविद्यालयों में से 60 अधिकारी, कर्मचारियों का चयन दैव निदर्षन पद्धति का उपयोग करते हुए किया गया। तथ्यों के संकलन के लिए फोन के माध्यम से संपर्क कर साक्षात्कार लिया गया।

शोध की उपकल्पना – कोराना वायरस ने महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डाला है।

शोध के उद्देश्य :

1. कोरोना वायरस के चलते महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की कार्यशैली की जानकारी प्राप्त करना।
2. कोरोना वायरस के चलते महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों के व्यवहार की जानकारी प्राप्त करना।
3. कोविड-19 से सुरक्षा के लिए महाविद्यालय में किए गए उपायों की जानकारी प्राप्त करना।
4. कोविड-19 के कारण महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों में तनाव की स्थिति की जानकारी प्राप्त करना।

कोरोना वायरस के चलते महाविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारियों की कार्यशैली की जानकारी प्राप्त करना

क्र.	विवरण	हाँ	नहीं	योग
1	क्या रोज महाविद्यालय आने से आपको संक्रमित होने का डर है?	85%	15%	100%
2	क्या आपको छात्र-छात्राओं के संपर्क में आने से संक्रमित होने का डर है?	90%	10%	100%
3	क्या आप महाविद्यालय का कार्य कोविड-19 के चलते सहजता से कर पा रहे हैं?	20%	80%	100%

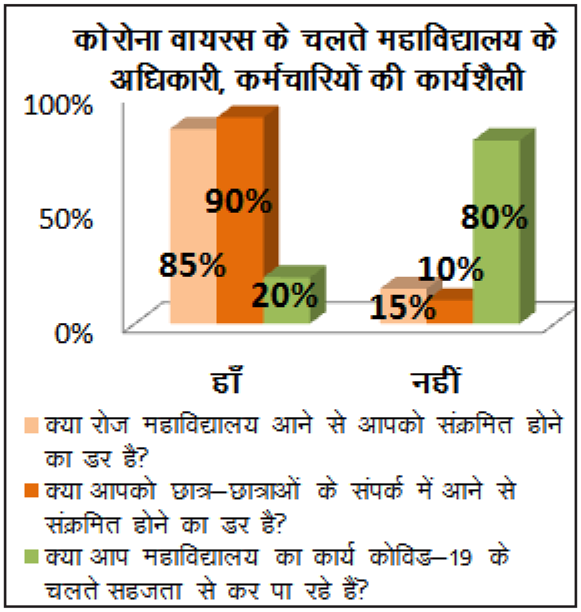

अध्ययन के दौरान फोन के माध्यम से साक्षात्कार लिया गया तथा साक्षात्कार में यह जानकारी प्राप्त हुई है कि 85 प्रतिशत अधिकारी, कर्मचारियों का यह मानना है कि हम रोज महाविद्यालय आते हैं तो संक्रमित होने का खतरा बढ़ जाता है, उनका मानना है कि रोटेशन में आने से संक्रमण में आने का खतरा काफी कम हो जाएगा तथा साथ ही 90 प्रतिशत अधिकारी, कर्मचारियों का मानना है कि छात्र-छात्राओं के संपर्क में आने से संक्रमित होने की अधिक संभावना है क्योंकि छात्र-छात्राओं में कोरोना वायरस को लेकर गंभीरता की कमी है। वह सही तरह से सावधानी नहीं बरतते हैं। 80 प्रतिशत अधिकारी, कर्मचारियों का मानना है कि वह महाविद्यालय का कोविड-19 के चलते सहजता से कार्य नहीं कर पा रहे हैं, उन्हें कार्य के

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

July to September 2020
E-Journal
Volume I, Issue XXI

ISSN 2394-3807
E-ISSN 2394-3513
Impact Factor - 5.190 (2017)

Divya Shodh Samiksha

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

दिव्य शोध समीक्षा

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email :** dssresearchjournal@gmail.com, **Website :** www.dssresearchjournal.com

Index/अनुक्रमणिका

01. Index/ अनुक्रमणिका 02

02. Regional Editor Board / Editorial Advisory Board 07/08

03. Referee Board 09

04. Spokesperson's 11

05. Novel Strategy for Synthesis of ZnO Microparticles Loaded Cotton Fabrics and Investigation of their Antibacterial Properties (Renuka Thakur, Dr. S.K. Udaipure) 13

06. Indian Rural Market: A Potential To Heel GDP (Dr. Sandeep Kumar Agrawal) 15

07. Consumer Behaviour And Sustainable Devlopment In Tourism Industries (Dr. Vivek Kumar Mishra) 17

08. वैश्वीकरण – श्रम एवं रोजगार पर प्रभाव (डॉ. ए. के. पाण्डेय) 19

09. भारतीय समाज के सन्दर्भ में उपेक्षित बालक की सकंल्पना – आधारभुत समस्याए व सुझाव (श्रीमती ज्योति पांचाल मिस्त्री) 22

10. नशे की प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन (मोहित पांचाल) 25

11. परंपरावादी शिक्षा व्यवस्था बनाम डिजिटल शिक्षा व्यवस्था (श्रीमती नीतिनिपुणा सक्सेना) 29

12. स्नातक एवं स्नातकोत्तार स्तर की छात्राओं में साइबर अपराध एवं कानून के प्रति जागरूकता : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन (छिन्दवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में) (डॉ.पूजा तिवारी) 31

13. 15 वीं सदी से 1857 ई0 तक मुद्रण का राष्ट्रवाद के विकास में योगदान (प्रेमिका पंत) 33

14. भारत चीन संबंध वर्तमान परिदृश्य में (डॉ. रजनी दुबे) 34

15. देश के लोग स्वस्थ तो देश स्वस्थ (डॉ. सोनाली सिंह) 36

16. मुगलकालीन उद्योग एवं व्यवसाय (डॉ. सुनीता शुक्ला) 38

17. देश में बढ़ती बेराजगारी एवं भ्रष्टाचार (कुलदीप) 40

18. भिखारी ठाकुर, जीवन और रंग विमर्श: एक अनुशीलन (अमित रंजन) 43

19. भारतीय संस्कृति (डॉ. सुनीता शुक्ला) 46

20. भारत में ग्रामीण विकास योजनाओं का स्वरूप एवं क्रियान्वयन (डॉ. विनिता भालसे, डॉ. गिरधारीलाल भालसे) 47

21. संवेदना के आदिम स्रोतों के बीच नये गीत स्वर का प्रस्फुटन (डॉ. हरि नारायण राम) 49

DSS Divya Shodh Samiksha (An International Refereed/ Peer Review Research Journal) ISSN 2394-3807, E-ISSN 2394-3513, Impact Factor - 5.190 (2017) July to Sept. 2020, E-Journal, Vol. I, Issue XXI

स्नातक एवं स्नातकोत्तार स्तर की छात्राओं में साइबर अपराध एवं कानून के प्रति जागरूकता : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन (छिन्दवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. पूजा तिवारी *

शोध सारांश – साइबर अपराध एक ऐसा अपराध है जिसमें कम्प्यूटर और नेटवर्क शामिल है जब अवैध गतिविधियां एक कम्प्यूटर और इंटरनेट के उपयोग के माध्यम से की जाती है ,साइबर अपराध माना जाता है। किसी को निजी जानकारी प्राप्त करके उसका गलत उपयोग करना, कम्प्यूटर से डाटा चोरी करना,जानकारी मिटाना ,जानकारी में फेरबदल कर देना, या नष्ट करना आदि साइबर अपराध है। सूचना प्रौद्योगिक अधिनियम 2000 से कम्प्यूटर का दुरूपयोग एवं नये अपराध को साइबर अपराध में शामिल किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में स्नातक एवं स्नातकोत्तार स्तर की छात्राओं में साइबर अपराध एवं कानून के प्रति जागरूकता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस विषय में प्रश्नोत्तार प्रणाली से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

शब्द कुंजी – साइबर, छात्राएं,इंटरनेट,कम्प्यूटर, अपराध।

प्रस्तावना – वर्तमान समय में महिलाओं के विरूद्ध अपराध एक अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना हुआ है। विश्व में महिलाओं से संबंधित अपराधों का आंकड़ा दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों के लिए पुरूष प्रधान समाज एवं पुरूष मानसिकता तो जिम्मेदार है ही साथ ही इसके लिए जिम्मेदार है महिलाओं में जागरूकता की कमी, आत्मविश्वास की कमी तथा 'बेचारी अबला' वाली मानसिकता. आज तकनीकी उन्नति के साथ ही महिलाओं को सायबर अपराध का सामना भी करना पड रहा हैं, वर्तमान में महिलाएं सोशल मीडिया पर सक्रिय नजर आती है,किंतु जानकारी एवं जागरूकता के अभाव के कारण वो साइबर अपराध का शिकार बन जाती है।

शोध का क्षेत्र एवं अध्ययन पद्धति – प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन से संबंधित तथ्यों को एकत्र करने के लिए छिन्दवाड़ा जिले के 14 शासकीय एवं 19 अशासकीय महाविद्यालयों में से छात्राओं की संख्या के आधार पर 3 महाविद्यालयों का चयन करके 300 उत्तरदाताओं का चयन स्तरीकृत दैव निर्देशन पद्धति द्वारा किया गया है तथा साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से जानकारी प्राप्त की गई हैं।

शोध के उद्देश्य :

1. साइबर अपराध से तात्पर्य
2. साइबर अपराध के प्रकार
3. स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की छात्राओं से सायबर अपराध के प्रति जागरूकता संबंधी जानकारी प्राप्त करना।
4. छात्राओं में मोबाइल ,कम्प्यूटर के प्रति रूझान की जानकारी प्राप्त करना।

साइबर अपराध से तात्पर्य – जिस गति से तकनीक ने उन्नति की है,उसी गति से मनुष्य की इंटरनेट पर निर्भरता भी बढ़ी है। एक ही जगह पर बैठकर ,इंटरनेट के जरिए मनुष्य की पहुंच, विश्व के हर कोने तक आसान हुई है। आज के समय में मनुष्य जिस चीज के विरूद्ध में सोच सकता है हर वो चीज उसकी पहुंच इंटरनेट के माध्यम से हो सकती है,जैसे सोशल नेटवर्किंग, ऑनलाइन शॉपिंग ,डेटा स्टोर करना ,गेमिंग आनलाइन स्टडी ,ऑनलाइन जॉब, आनलाइन बिजनेस आदि। इंटरनेट के विकास और इसके लाभों के साथ ही सायबर अपराधों की अवधारणा भी विकसित हुई है जो इसका काला पक्ष है या हानिकारक पक्ष है। साइबर अपराध से तात्पर्य इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न प्रकार के गलत कार्य करने से है ,यह एक आपराधिक गतिविधि है, जिसे कम्प्यूटर और इंटरनेट द्वारा अंजाम दिया जाता है। साइबर अपराध जिसे 'इसे इलेक्ट्रॉनिक अपराध' के रूप में भी जाना जाता है ,जिसमें किसी भी अपराध को करने के लिए कम्प्यूटर,नेटवर्क डिवाइस या नेटवर्क,का उपयोग एक वस्तु या उपकरण के रूप में किया जाता है।

साइबर अपराध के प्रकार – साइबर अपराध को दो तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. वे अपराध जिनमें कम्प्यूटर पर हमला किया जाता है, अर्थात एक लक्ष्य के रूप में कम्प्यूटर जैसे हैकिंग ,वायरस हमले ,Dos हमले आदि।
2. वे अपराध जिनमें कम्प्यूटर को एक हथियार/उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है जैसे साइबर आतंकवाद,आई.पी.आर उल्लंघन ,क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी ई.एफ.टी.धोखाधड़ी पोर्नोग्राफी,अश्लीलता आदि।

कम्प्यूटर अपराध के प्रकार – जानकारी चोरी करना ,जानकारी मिटाना,फेरबदल करना,बाहरी नुकसान आदि।

साईबर अपराध के प्रकार – स्पैम ई मेल ,हैंकिग ,सायबर फिशिंग ,वायरस फैलाना, साफ्टवेयर पाइरेसी ,फर्जी बैंक काल ,ई.मेल बम डिनायल ऑफ सर्विस अटैक (Dos) ,डिस्ट्रीब्युटेड डिनायल आफ सर्विस (D Dos) ,साइबर आतंकवाद ,अश्लील साहित्य ,ई कॉमर्स /निवेश ,धोखाधड़ी ,बैंकिग /क्रेडिट कार्ड से संबंधित अपराध, मानहानि ,पहचान की चोरी ,गोपनीयता का उल्लंघन, ऑनलाइन चोरी ,जालसाजी ,कापीराइट, पेटेंट, ट्रैडमार्क ,डिजायन ,भौगोलिक संकेत आदि से संबंधित अपराध।

* सहप्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला – छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

तालिका क्रमांक -1 :छात्राओं में साइबर अपराध एवं उसके प्रकार संबंधी जानकारी

क्र.	तथ्य	स्नातक स्तर		स्नातकोत्तर स्तर	
		हॉ	नहीं	हॉ	नहीं
1	सइबर अपराध क्या होते हैं इसकी जानकारी है या नहीं	20%	80%	70%	30%
2	सइबर अपराध के पॉच प्रकार की जानकारी है या नहीं	16%	84%	60%	40%

तालिका क्र.1 से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर छात्राओं में से मात्र 20 प्रतिशत उपरोक्त जानकारी रखती है जबकि 80 प्रतिशत नहीं रखती है ,इसी प्रकार मात्र 16 प्रतिशत छात्राओं को साइबर अपराध के नाम मालूम है जबकि 84 प्रतिशत अनभिज्ञ हैं ,वहीं स्नातकोत्तर स्तर पर 70 प्रतिशत छात्राओं को साइबर अपराध के विषय में जानकारी है 30 प्रतिशत छात्राओं को जानकारी नहीं है ,इसी प्रकार 60 प्रतिशत छात्राएं पांच प्रकार में साइबर अपराध के नाम से परिचित है जबकि 40 प्रतिशत अनभिज्ञ है।

तालिका क्रमांक -2 : सोशल साइटस के उपयोग संबंधी जानकारी

क्र.	तथ्य (सोशल साइटस)	स्नातक स्तर		स्नातकोत्तर स्तर	
		हॉ	नहीं	हॉ	नहीं
1	फेसबुक	70%	30%	86%	14%
2	व्हाट्सअप	96%	04%	94%	06%
3	टिवटर	10%	90%	22%	78%
4	इंस्ट्रा ग्राम	40%	60%	56%	44%
5	ऑन लाईन शॉपिंग	20%	80%	26%	74%
6	ई मेल का उपयोग	52%	48%	66%	34%

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर की 70 प्रतिशत छात्राएं फेसबुक का उपयोग करती है जबकि 30 प्रतिशत नहीं करती है ,जबकि स्नातकोत्तर स्तर पर फेसबुक 86 प्रतिशत छात्राएं उपयोग करती है केवल 14 प्रतिशत नहीं करती है ,व्हाटसएप का उपयोग स्नातक स्तर की छात्राएं 96 प्रतिशत तथा स्नातकोत्तर की 94 प्रतिशत करती है ,जबकि 04 प्रतिशत एवं 06 प्रतिशत क्रमश : स्नातक एवं स्नातकोत्तार की छात्राओं को रूचि नहीं है। इसी प्रकार से टिवटर का उपयोग मात्र 10 प्रतिशत छात्राएं ही करती है ,इंस्टाग्राम 40 प्रतिशत छात्राएं रूचि कर है ,स्नातक स्तर पर करीब 90 प्रतिशत छात्राएं टिवटर तथा 60 प्रतिशत छात्राएं इंस्ट्राग्राम में रूचि नहीं लेती है। स्नातकोत्तर की छात्राओं के टिवटर मात्र 22 प्रतिशत एवं इंस्ट्राग्राम 56%का उपयोग करती है जबकि 78% टवीटर 44%इन्टाग्राम का उपयोग नही करती है। आनलाइन शॉपिंग करने में स्नातक स्तर की मात्र 20 प्रतिशत छात्राओं ने रूचि ली जबकि 80 प्रतिशत इसके खिलाफ रही ,स्नातकोत्तार की 26 प्रतिशत छात्राएं आनलाइन शॉपिंग कर लेती है ,जबकि 74 प्रतिशत नहीं करती हैं।

स्नातक स्तर की 52 प्रतिशत छात्राएं ईमेल का उपयोग करना जानती है जबकि 48 प्रतिशत छात्राओं को जानकारी नहीं है। इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर की 66 प्रतिशत छात्राएं ई-मेल से परिचित है उपयोग करना जानती है, जबकि 34 प्रतिशत छात्राएं नहीं जानती हैं।

तालिका क्रमांक -3 : साइबर कानून के प्रति जागरूकता संबंधी जानकारी

क्र.	तथ्य	स्नातक स्तर		स्नातकोत्तर स्तर	
		हॉ	नहीं	हॉ	नहीं
1	सइबर कानून की जानकारी है या नहीं	10%	90%	40%	60%

तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर छात्राओं में जागरूकता का प्रतिशत केवल 10 प्रतिशत है जबकि 90 प्रतिशत छात्राएं अभी भी अनभिज्ञ हैं, इसी प्रकार स्नातकोत्तर स्तर पर 40 प्रतिशत छात्राएं जागरूकता दर्शा रही है जबकि 60 छात्राओं को जानकारी या जागरूकता नहीं हैं।

गौरतलब है कि केन्द्र सरकार ने साइबर अपराधों को रोकने हेतू जागरूकता फैलाने अलर्ट करने ,सलाह जारी करने ,कानून प्रवर्तन ,अभियोजन प्रशिक्षण ,जांच में तेजी लाने हेतू साइबर फोरेन्सिक सुविधाओं में सुधार आदि के कदम उठाए है। तथा केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने बच्चों एवं महिलाओं के विरूद्ध साईबर अपराध रोकथाम पोर्टल (www.cybercrime .gov. in) लांच किया है। लेकिन सरकार के साथ -साथ एन.जी.ओ. महाविघालयों के द्वारा भी साइबर अपराध एवं साइबर कानून के प्रति जागरूकता फैलाना होगा तथा छात्राओं एवं महिलाओं को स्वयं भी कुछ सावधानियां बरतना होगा यथा सोशल साइट पर निजी तस्वीरें डालने से बचे, फेसबुक पर अपना प्रोफाइल लॉक करके रखे,फेसबुक पर अंजान लोगों से दोस्ती न करे ,टिवटर पर आपकी अनुमति के बिना कोई फालों न कर पाये ऐसी व्यवस्था करें। अपने एकांऊट ,ए.टी.एम. की जानकारी किसी से साझा न करें। तथा किसी भी तरह की आपराधिक घटना की जानकारी तुरंत पुलिस को दें।

सोशल स्पेस पर महिलाओं के साथ अपराध की घटनाओं पर क्रिमिनल साइकोलाजिस्ट अनुझा त्रेहन कपूर का कहना है कि 'महिलाएं लाइक्स' की चाह में वर्चुअल दुनिया में आती है ,जो एक सोचनीय तथ्य है। अंत में

अंत में निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि अभी भी जिला स्तर के अन्तर्गत आने वाले महाविघालय की छात्राओं में साइबर अपराध एवं साइबर कानून के प्रति जागरूकता का अभाव ही देखा जा सकता है उन्हें जागरूक करने की महती आवश्यकता है ,जिसकी जिम्मेदारी सरकार के साथ -साथ अभिभावकों की भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ.फातिमा तलत - इंटरनेट विधि एवं साइबर अपराध
2. जैदी ,सिंह ,अमिताभ - साइबर क्राइम
3. साहनी राजेश - साइबर संसार एक परिचय
4. उपाध्याय स्पर्श - इंटरनेट ब्लॉग 18 नवम्बर 2019
5. डॉ.बघेल डी.एस.- अपराधशास्त्र

****

International Journal of Geography, Geology and Environment

P-ISSN: 2706-7483
E-ISSN: 2706-7491
IJGGE 2021; 3(1): 26-28
Received: 11-11-2020
Accepted: 16-12-2020

Meena Thakre
Assistant Professor,
Department of Geography,
Gove College Bichhua,
Chhindwara, Madhya Pradesh,
India

Manita Kaur Virdi
Assistant Professor,
Department of Political
Science, Government College
Bichhua, Chhindwara,
Madhya Pradesh, India

Corresponding Author:
Meena Thakre
Assistant Professor,
Department of Geography,
Gove College Bichhua,
Chhindwara, Madhya Pradesh,
India

Role on Panchayti Raj institutions in environmental balance: Special study with reference to the state of Madhya Pradesh

Meena Thakre and Manita Kaur Virdi

DOI: https://doi.org/10.22271/27067483.2021.v3.i1a.48

Abstract
Environmental Degradation or Environmental imbalance is becoming a serious problem of the world. In earlier times human population and technology knowledge were less due to which ecological exploitation was less. Hence the human environment relationship was balanced. But today due to increase in population technology efficiency, indoctrination, urbanization, rural-urban transfer, natural resources have been heavily exploited. As a result, many environmental problems such as the problem of pure water, forest destruction, exploitation of mining, smoke from transportation, industrial pollution etc.

Have adversely affected human health bio-diversity, climate change, and agricultural productivity. In such a situation, the contribution of Panchayti Raj Institution, the lowest level of administration for environmental protection, has been presented by researchers in this paper. The concept and development of Panchayti raj is ruled by five public representatives it is five representatives Brahmin, Kshatriya, Vishay, shudra and the fifth God. The 73rd constitution amendment act of the Indian constitution provides Panchayti Raj institutions a wide right. Therefor the research paper presented has field study of environment related program in Madhya Pradesh. A vivid example of this can be seen as a contribution made by the Bhopal municipal corporation as a result of the 2december 1984 leak of methyl Isocyanine gas in Bhopal Madhya Pradesh.

Keywords: Environmental, Panchayti Raj

Introduction

Environment refers to a transition that affects the animal and plant community. The materialistic culture arising out of the Industrial revolution has created a crisis not only for the human community but also for the wild life, straying the human society. The threats posed by ecological imbalance are warning the entire human community for a movement. The factors responsible for this are urbanization, industrialization, expansion of means of transport, increase in population, competition of western civilization, biological destruction, jhuming farming, poverty and illiteracy, misuse of resource etc. presently, Panchayti in Madhya Pradesh state are discharging their role in planning and implementing development works by example, the Panchayti get information about the geographical location of the village under and prepare a plot of wasteland to prevent soil erosion by planting tree there. Several schemes and programs have been implemented in the Panchayti committees of Madhya Pradesh to balance the environment. Such as MNREGA Schemes, Swatch Bharat Abhiyan, Green Ganesh Scheme, Mukhyamantri Jal Swavalamban Abhiyan, Micro Irrigation Scheme, promotion of organic farming, Ujjwala Scheme etc. The researchers have also taken interviews of public representatives based on the data collected from various offices. During the interview, public representatives said that pollution in rural areas is caused by open defection, use of plastic, household fumes, dirty water, use of chemical fertilizers in agriculture, deforestation etc. So, these causes of environmental pollution are being solved by local institution.

Study area

The study area of the presented research paper is based on analysis of the role of Panchayti Raj Institution in environmental protection.

Objectives of the study

1. Ensuring the need for environmental education and public awareness.
2. Promotion of forest protection and social forestry.
3. To motivate the villagers to plant trees around the vacant sites and fields of the village.
4. Panchayti Raj Institutions to increase per capita income by planting useful tree.
5. Proper exploitation and conservation of natural resources.
6. Promote the use of environmental friendly.
7. Providing incentives and protection to small and cottage industries.
8. Ensuring the role of local bodies for public participation.

Methodology

The library study method has been used in the research paper.

Collection of data

The research paper presented is based on primary and secondary data. The paper included facts from interviews of public representatives, information received from event arising out of changing geographical conditions, internet and news, current affairs of newspapers and magazines, library studies, publications of various institutions in India publications of state government etc. has gone.

Analysis

Local institutions have a huge role in resolving ecological imbalances. Today the whole earth is struggling with water scarcity. On the one hand, water use has intensified due to population growth and rapid industrialization, on the other hand these has been a decrease in rain water and an increase in excessive exploitation of ground water. In such a situation, judicious use of available water in the earth's surface has become extremely necessary. In this direction, the role of public institutions and public participation is very important. Bhind (Ater) is the district of Madhya Pradesh, which receives the least rainfall. The western part of Madhya Pradesh receives 31% more rainfall than the average while the 12 districts of the Chhindwara districts has received the lowest 54% rainfall so for, on the other hand, Asia's largest solar plant in Rewa of Madhya Pradesh was washed away due to floods. To deal with similar situations, a movement should be launched with local public support for water conservation. These ancient traditions of water conservation have to be revived by constructing ponds, step wells, jhalras, river-streams, lakes etc.

According to the report of the center for science and environment, if even half of the country's average rainwater is collected in the 1.12 hectares of land in each village, then there will be no water shortage in any village in the country. Different soil is found in different regions in terms of geographical division in Madhya Pradesh, in reaches the inner surface and some soil accumulates water in the upper surface only so that irrigation can work. Water from the roofs of house, water collected during the rainy period in ponds and rivers can be collected from the people of the village in deep pits by providing the employment. Apart from this, there is a need for movement for public awareness forwards environment protection so that rural people can get pure drinking water.

There is great need for forest protection and social forestry in the context of environment. Forest affects soil, climate, temperature, water level etc. In the atmosphere, while on the other hand they are helpful in keeping the air pure, raining preventing desertification, controlling floods. Social Forestry Program was adopted in the sixth five year plan under which emphasis was laid on wastelands, re- plantation and development of green belt/safety belt. Shady trees were planted in public places and along the roads.

Fig 1: If the number of organisms and biomass is in a proper proportion at different trophic levels in a region, the environment in that region is said to be balanced. This balance can get disturbed due to natural hazards or by human intervention. Favorable ecosystem ensures that each organism thrive and multiply as expected. They get enough food to keep them alive. Ecological balance is also important because it leads to the continuous existence of the organisms. It ensures that no particular species is exploited or overused.

It is necessary to pay attention to the presence of nutrients in the land by running a soil conservation program in land development. The fertility of land has been reduced due to the use of chemical fertilizers and pesticides, human health is also weakened. If farmer's use organic fertilizer, agricultural productivity will increase along with fertility. For this, earthworm fertilizer plants in rural areas can be prepared at a reasonable price, which will also provide employment to rural people. There is a great need for environmental protection, whose basis is the individual. Person, family, society, country, world are all part of nature. Man is incomplete without nature and without man is incomplete. Therefore, environmental management is necessary to improve the human-relationship. The "Narmada Bachao Andolan" of Medha Patkar, "Chipko Andolan" by Amrita Devi to protect the Khejri tree. Therefore, before starting the work globally, some work for environmental protection should be started at the local level. Instead to big irrigation projects, small irrigation projects should be developed, which will not harm the environment and will also provide irrigation facilities to the farmers. Presently, to tackle the energy crisis arising out of increasing energy consumption due to industrialization, socio-economic progress and traditional energy sources should be explored and used to conserve and renew energy sources. Currently Biogas plant should be used, which can be used as domestic fuel in rural areas. It is also environmental friendly.

Conclusion*:* for the protection and promotion of environmental, the local institutions should formulate policies for conservation of forest, water, wildlife and land

implement them honesty with the co-operation of the local people. Local institution will also have to make necessary efforts for sustainable development of society. In a country like India, it is necessary to expand the role of local institutions for the development of environmental management. Through these institutions, the process of environmental protection can be speeded up but health problems can also be eliminated. Therefore, the new Panchayati Raj system is playing an important role in making the environment clean, pollution and green, under the responsibility of round development of the society.

Suggestion

1. Waste discharged from industries in villages and semi-urban areas should be properly disposed of.
2. There should be proper exploitation of natural resources for sustainable socio-economic development.
3. Use of eco-friendly technology in consumer, commodity production.
4. Anti-pollution devices must be installed in factories.
5. The elderly, youth, children, woman should all be made aware of the environment.

Reference

1. Sharma Shrikamal. Geography of M.P., Madhya Pradesh Hindi Granth Academy.
2. Gurjer Ramkumar, Jat BC. Man and Environment. Panchsheel Prakashan, Jaipur 2002.
3. Narain Sunita. Parivartan Ki Ranjeet.
4. Bangda Parmeshwar. Environment Conservation and Panchayati Raj, Pratik Publication Jaipur.